क्तूबर 2003

मूल्य : पंद्रह रुपये

कुरुक्षेत्र

वार्षिकांक

ग्रामीण विकास को समर्पित

ग्रामीण भारत के परिदृश्य में संचार

सूचना प्रौद्योगिकी की ओर बढ़ते कदम

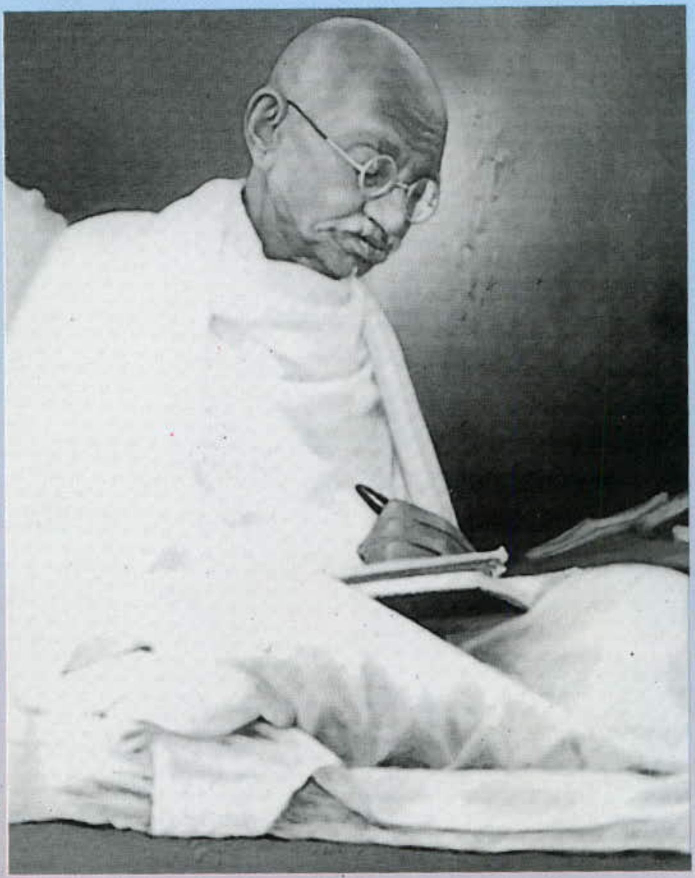

"देहातवालों में ऐसी कला और कारीगरी का विकास होना चाहिए जिससे बाहर उनकी पैदा की हुई चीजों की कीमत की जा सके। जब गांवों का पूरा-पूरा विकास हो जाएगा, तो देहातियों की बुद्धि और आत्मा को संतुष्ट करने वाली कला-कारीगरी के धनी स्त्री-पुरुषों की गांवों में कमी नहीं रहेगी। गांव में कवि होंगे, चित्रकार होंगे, शिल्पी होंगे, भाषा के पंडित और शोध करने वाले लोग भी होंगे। थोड़े में, जिंदगी की ऐसी कोई चीज न होगी जो गांव में न मिले। आज हमारे देहात उजड़े हुए और कूड़े-कचरे के ढेर बने हुए हैं। कल वही सुंदर बगीचे होंगे और ग्रामवासियों को ठगना या उनका शोषण करना असंभव हो जाएगा। इस तरह के गांवों की पुनर्रचना का काम आज से ही शुरू हो जाना चाहिए। गांवों की पुनर्रचना का काम कामचलाऊ नहीं बल्कि स्थायी होना चाहिए।"

महात्मा गांधी

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास मंत्रालय की प्रमुख मासिक पत्रिका

वर्ष : 48 ● अंक : 12

आश्विन–कार्तिक 1925

अक्तूबर 2003

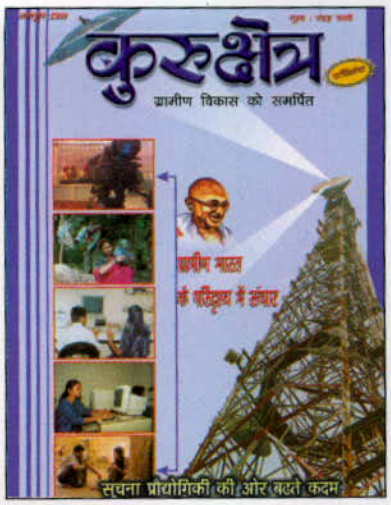

प्रधान संपादक
विश्वनाथ रामशेष

सहायक संपादक
ललिता खुराना

उप संपादक
जयसिंह

संपादकीय पत्र–व्यवहार
संपादक, कुरुक्षेत्र
कमरा नं. 655/661, 'ए' विंग,
गेट नं. 5, निर्माण भवन
ग्रामीण विकास मंत्रालय
नई दिल्ली–110011
दूरभाष : 23015014
फैक्स : 011–23015014
तार : ग्राम विकास
वेबसाइट : Publicationsdivision.nic.in
ई–मेल : dpd@sh.nic.in dpd@pub.nic.in

संयुक्त निदेशक (उत्पादन)
डी.एन. गांधी

व्यापार व्यवस्थापक
जगदीश प्रसाद

आवरण
राहुल शर्मा

मूल्य एक प्रति : सात रुपये
वार्षिक शुल्क : 70 रुपये
द्विवार्षिक : 135 रुपये
त्रिवार्षिक : 190 रुपये

विदेशों में (हवाई डाक द्वारा)
पड़ोसी देशों में : 500 रुपये (वार्षिक)
अन्य देशों में : 700 रुपये (वार्षिक)

इस अंक में

लेख

ग्रामीण विकास में संचार माध्यमों का योगदान : एक परिदृश्य	कृष्ण कल्कि	4
परंपरागत संचार माध्यम : ग्रामीण विकास में भूमिका और प्रासंगिकता	रूपसी तिवारी बी. पी. सिंह राहुल तिवारी	20
ग्रामीण विकास और पत्रकारिता	नील वाचस्पति	25
ग्रामीण भारत में सिनेमा : एक सिंहावलोकन	संजय अभिज्ञान	28
ग्रामीण विकास में रेडियो की भूमिका	लक्ष्मीशंकर वाजपेयी	32
ग्रामीण विकास में टी.वी. की भूमिका	दलीप सूद	37
भारत में सामुदायिक रेडियो का भविष्य	हरवीर सिंह	45
ग्रामीण क्षेत्रों में सूचना और संचार प्रौद्योगिकी की नई लहर	हेमंत जोशी	48
गांवों तक इंटरनेट की पहुंच : वर्तमान तथा भविष्य	देव प्रकाश	52
ग्रामीण रोजगार में सूचना टेक्नोलॉजी की भूमिका	प्रो.पी. पुरुषोत्तम	55
ई–गवर्नेंस की लोकप्रियता में वृद्धि	राधाकृष्ण राव	58
ग्रामीण परिदृश्य में उपग्रह संचार	दीक्षा बिष्ट	60
मोबाइल डाकिया योजना : प्रौद्योगिकी की खाई पाटने का प्रयास	अनंत मित्तल	63
ग्रामीण विकास में स्वयंसेवी संगठनों की भूमिका	प्रतापमल देवपुरा	66
'सूचना समाज' की चौखट पर ठिठका गांव	सुधेंदु पटेल	70

कुरुक्षेत्र की एजेंसी लेने, ग्राहक बनने और अंक न मिलने की शिकायत के बारे में ए.के. दुग्गल, सहायक विज्ञापन और प्रसार प्रबंधक, प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड–4, लेवल–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110 066 से पत्र–व्यवहार करें। विज्ञापनों के लिए विज्ञापन प्रबंधक, प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड–4, लेवल–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110 066 से संपर्क करें। दूरभाष : 26105590, फैक्स : 26175516

कुरुक्षेत्र में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी वही हो।

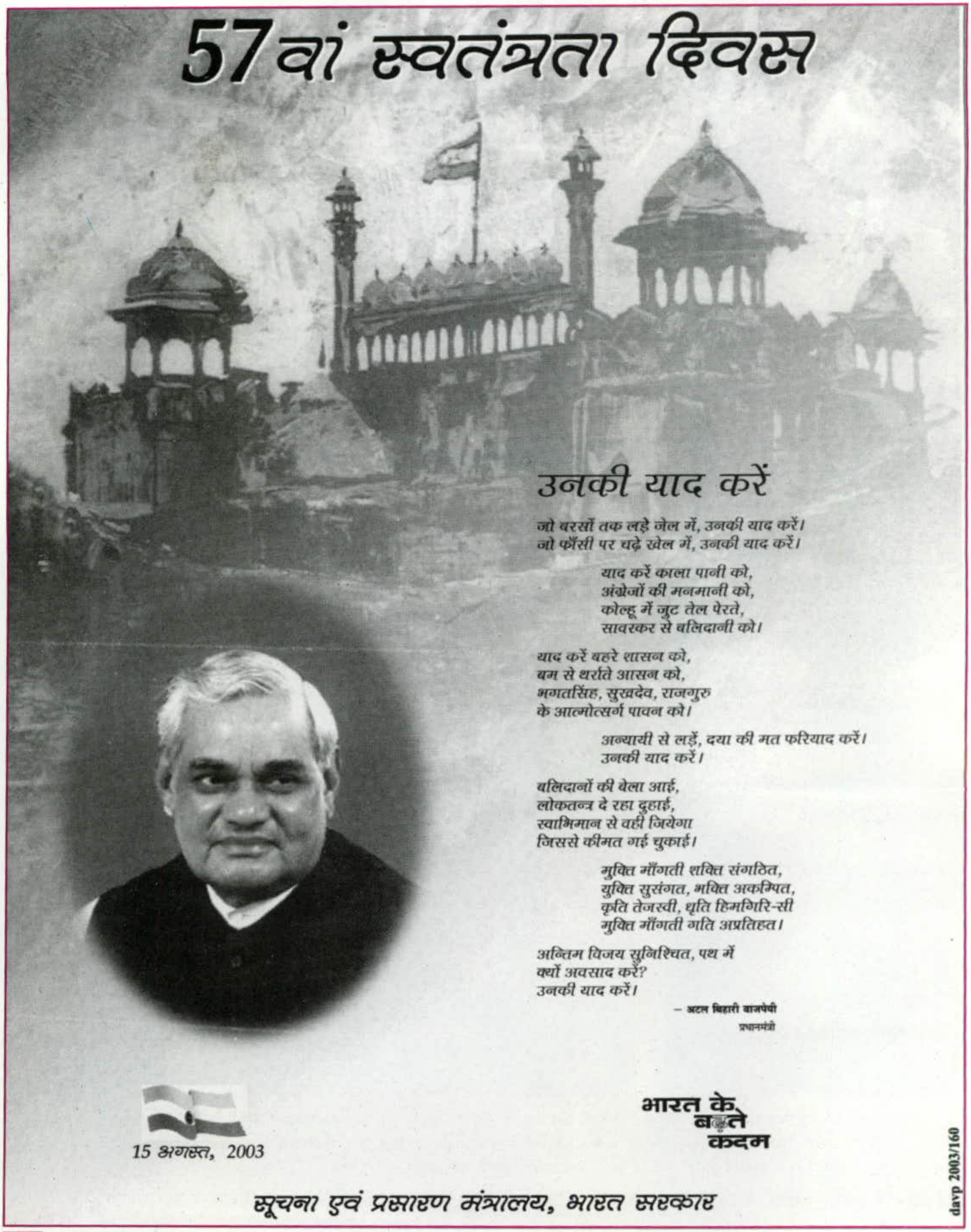

57वां स्वतंत्रता दिवस
उनकी याद करें
जो बरसों तक लड़े जेल में, उनकी याद करें।
जो फाँसी पर चढ़े खेल में, उनकी याद करें।
याद करें काला पानी को,
अंग्रेजों की मनमानी को,
कोल्हू में जुट तेल पेरते,
सावरकर से बलिदानी को।
याद करें बहरे शासन को,
बम से थर्राते आसन को,
भगतसिंह, सुखदेव, राजगुरु
के आत्मोत्सर्ग पावन को।
अन्यायी से लड़ें, दया की मत फरियाद करें।
उनकी याद करें।
बलिदानों की बेला आई,
लोकतन्त्र दे रहा दुहाई,
स्वाभिमान से वही जियेगा
जिससे कीमत गई चुकाई।
मुक्ति माँगती शक्ति संगठित,
युक्ति सुसंगत, भक्ति अकम्पित,
कृति तेजस्वी, धृति हिमगिरि-सी
मुक्ति माँगती गति अप्रतिहत।
अन्तिम विजय सुनिश्चित, पथ में
क्यों अवसाद करें?
उनकी याद करें।
– अटल बिहारी वाजपेयी
प्रधानमंत्री
15 अगस्त, 2003
भारत के बढ़ते कदम
सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार
davp 2003/160

संपादकीय

"मैं एक और संयोजन को ज्यादा महत्व दूंगा और वह है एक अरब भारतीयों के दिलों और दिमागों के बीच संयोजन। कोई भी देश तब तक महान नहीं बन पाता है जब तक वह अपनी जनता की संपूर्ण ऊर्जा को जाग्रत और उसे संगठित करने में सफलता प्राप्त नहीं कर लेता।" प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी के भाषण के ये उद्‌गार बेहद ही मर्मस्पर्शी हैं। अपनी बात को शब्दों के तानेबाने में पिरोकर बेहद प्रभावशाली ढंग से कहना, यह गुण 'राजनीतिज्ञ' में होना जरूरी है तो यही गुण 'संचारक' में भी होना आवश्यक है। एक सफल संचारक वही है जिसकी बात सामने वाले के जहन में गहरे उतर जाए; ऐसा तभी संभव है जब संचारक की भाषा तथा प्रेषण का जरिया प्रभावशाली हो। ग्रामीण विकास के संदर्भ में जब हम 'संचार' की बात करते हैं तो हमारा तात्पर्य यही होता है कि हम इस बात की पड़ताल करना चाहते हैं कि क्या हम हमारे देश के करीब छह लाख गांवों में बसने वाली जनता तक उनके विकास के लिए बनी योजनाओं की जानकारी तथा लाभ पहुंचा पा रहे हैं? क्या हम उनके जीवन स्तर में सुधार ला पा रहे हैं? अगर हां, तो किस हद तक और अगर नहीं तो ऐसे क्या कारण हैं जो हम अपने प्रयास में सफल नहीं हो पा रहे।

यहां इस पर भी गौर करना जरूरी है कि विकास के लाभ ग्रामीणों तक पहुंचाने के लिए सबसे पहले जरूरी है उनके दिलोदिमाग को खोलना और उन्हें बदलाव के लिए तैयार करना। यह काम कैसे किया जा सकता है? निसंदेह संचार के जरिए। संचार 'संवाद' की ही एक प्रक्रिया है और यह संवाद प्रत्यक्ष भी हो सकता है और अप्रत्यक्ष भी। प्रत्यक्ष से हमारा तात्पर्य सीधे आमने–सामने की बातचीत, भाषण या सम्मेलन आदि से है जबकि अप्रत्यक्ष से हमारा तात्पर्य संचार माध्यमों के जरिए अपनी बात कहने से है और ये माध्यम रेडियो, टी.वी., सिनेमा आदि कुछ भी हो सकते हैं। सदियों से ग्रामीण जनों के दिलोदिमाग में बसी धारणाओं/मान्यताओं/विश्वासों/अंधविश्वासों को बदलना सरल नहीं है। ऐसे में 'संचारक' की भूमिका बेहद चुनौतीपूर्ण हो जाती है। उन्हें बेहद धैर्य और सहनशीलता से काम करना पड़ता है। यही नहीं, उन्हें स्थानीय लोगों के साथ उनकी भाषा, रीति–रिवाज, रहन–सहन आदि सभी बातें ग्रहण करनी पड़ती हैं। गांववालों का विश्वास हासिल करने की यह भूमिका जटिल अवश्य है, किंतु है बेहद प्रभावशाली।

आज जब देश सूचना क्रांति के दौर से गुजर रहा है, ऐसे में संचारकों और जनसंचार माध्यमों की भूमिका और अधिक कठिन हो गई है। किस तकनीक को अपनाया जाए, किस हद तक अपनाया जाए और कैसे अपनाया जाए, ये सवाल साधारण होते हुए भी बेहद जटिल हैं। आज जब गांवों में पंचायतों के कामकाज में पारदर्शिता लाने के लिए सूचना विधेयक 2002 के तहत सूचना का अधिकार लागू करने के लिए पंचायतों के सभी प्रशासनिक कार्य कंप्यूटर और इंटरनेट के जरिए किए जाने की बात हो रही है, तो इस सवाल को भी अनदेखा नहीं किया जा सकता है कि कंप्यूटर के रखरखाव और उसके प्रशिक्षण आदि का खर्च कौन वहन करेगा, एक पंचायत में कितने कंप्यूटर होंगे और क्या–क्या काम कंप्यूटर पर किए जाएंगे, आदि। किसी भी नई व्यवस्था को चालू करने से पहले उठने वाले ये बेहद सहज सवाल हैं। किंतु सकारात्मक सोच और प्रयास से क्या संभव नहीं है! इसका ज्वलंत उदाहरण है आंध्र प्रदेश का ओरवाकल गांव, जिसे अपना दृश्य–श्रव्य प्रसारण केंद्र चलाने वाला देश का पहला गांव होने का गौरव प्राप्त है। आंध्र प्रदेश का ही चमरावट्टम गांव देश का पहला कंप्यूटर साक्षर गांव बन गया है। त्रिपरंगोडे पंचायत के अंतर्गत आने वाले इस गांव के साथ ही इसी पंचायत के चार और गांव कंप्यूटर साक्षर की सूची में जुड़ने को तैयार हैं। इसी तरह पंजाब के पुनावाली कलां गांव के किसान तारा ढाबे (साइबर कैफे का ही एक रूप) पर जाकर इंटरनेट के माध्यम से आसपास के शहरों की मंडियों के भावों की जानकारी लेने के बाद ही अपनी दूध–सब्जी वगैरह बेचने निकलते हैं। हरियाणा के छोटे से गांव नांगल चौधरी में भी साइबर कैफे खुल चुका है। ये तो सूचना प्रौद्योगिकी के तेजी से भारत के गांवों की तरफ बढ़ते कदम का एक परिदृश्य है!

ये उपलब्धियां क्या दर्शाती हैं? जाहिर तौर पर इनसे यही परिदृश्य उपस्थित होता है कि देश प्रगति के मार्ग पर अग्रसर है और गांवों तक धीरे–धीरे आधुनिक तकनीकों का लाभ पहुंच रहा है। और देश में सही मायने में संचार क्रांति आ गई है। किंतु वास्तविकता इतनी ही नहीं है। ये तो सिक्के का केवल एक पहलू है। हमने जो उदाहरण दिए हैं, वे प्रगति तो दिखाते हैं लेकिन कितनी? आंध्र प्रदेश, पंजाब और हरियाणा के चंद गांव, जहां साइबर कैफे हैं। यहां हम यह नहीं भूल सकते कि भारत में करीब छह लाख गांव हैं और ये पांच–दस गांव उसका 0.1 प्रतिशत भी नहीं हैं। तथापि हमें यह तो मानना ही पड़ेगा कि देश प्रगति कर रहा है और बड़ी तेजी से कर रहा है किंतु बेलगाम बढ़ती जनसंख्या के चलते ये बदलाव बेहद छोटे पैमाने पर होते नजर आते हैं। ऐसे में विकास के लाभ आम जन तक पहुंचाने के लिए हमारा पहला प्रयास जनसंख्या नियंत्रण का होना चाहिए, और इस बारे में जनसंचार माध्यमों के द्वारा ही हमें आम जन को जागरूक करना होगा।

संचार विकास की प्रक्रिया का महत्वपूर्ण अंग है। संचार नहीं होगा तो विकास कैसे होगा और विकास नहीं होगा तो सन् 2020 तक विकसित राष्ट्र बनने का हमारा सपना कैसे साकार होगा! ऐसे में आज यह समय की मांग है कि हम अपने संचार माध्यमों को सशक्त बनाएं और ग्रामीण विकास में उनका अधिक से अधिक योगदान सुनिश्चित करें। ग्रामीण विकास की पहली शर्त है ग्रामीण जनता का सशक्तिकरण जो उनमें शिक्षा, ज्ञान, क्षमता, दक्षता और दार्शनिकता को बढ़ाकर ही संभव है। ये कार्य कठिन और चुनौतीपूर्ण है क्योंकि हमें न केवल विकास प्रक्रिया को जारी रखना है साथ ही साथ अपनी सभ्यता और संस्कृति को भी बचाए रखना है। हमारी सदियों पुरानी विरासत, जो हमें हमारे संस्कारों और संस्कृति के रूप में मिली है, उसे संरक्षित रखते हुए अपने संपूर्ण व्यक्तित्व का विकास करना है; तभी हम सही अर्थों में विकसित हो पाएंगे। आइए, हम सब इस कठिन किंतु अनिवार्य कार्य को करने का संकल्प लें। ❑

ग्रामीण विकास में संचार माध्यमों का योगदान : एक परिदृश्य

☞ कृष्ण कल्कि

सड़कों पर तेज रफ्तार दौड़ते वाहन, मनोरंजन के चमकते–दमकते उद्योग, उत्पाद उगलते कारखाने और भरते खजाने, अंतरिक्ष में अनुसंधान, प्रौद्योगिकी में आत्मनिर्भरता, दुनिया के कोने–कोने से आते सैलानी! इन्हीं सबसे कोई देश समृद्ध और आत्मनिर्भर तो हो सकता है किंतु विकसित नहीं। किसी देश के विकसित होने का अर्थ है उसके निवासियों का सर्वांगीण विकास और उस परिवेश का विकास, जहां वो रहते हैं ताकि वैयक्तिक अथवा सामुदायिक विकास की तमाम प्रक्रियाओं के लिए अनुकूल माहौल सहज रूप से उपलब्ध हो सके। भारत जैसे देश के निवासियों की बहुसंख्या चूंकि गांवों में बसती है इसलिए उसके संदर्भ में समूचे देश के विकास का अर्थ है दरअसल ग्रामीण विकास।

ग्रामीण विकास की प्रक्रिया और उसकी प्रविधि प्रथमदृष्ट्या जितनी आसान प्रतीत होती है, आत्यंतिक रूप से है वस्तुतः उतनी ही कठिन। समग्र और सार्थक ग्रामीण विकास के लिए देश, काल व परिस्थिति तीनों के प्रति उनके संपूर्ण आयामों में एक साथ गौर करते हुए प्रयासरत रहना जरूरी है। कहना न होगा कि ऐसा तभी हो पाएगा, जब सूचना की उपलब्धता से लेकर जागरूकता प्रसार और अनुभवों के आदान–प्रदान तक को संभव बनाने वाले संसाधन प्रचुरता से हासिल हों। ऐसे ही हासिल संसाधनों का नाम है संचार माध्यम, जो अनादिकाल से लेकर अब तक ग्रामीण विकास में भरपूर योगदान करते आ रहे है। संख्या में अनेक इन संचार माध्यमों की कोटिवार झलक और ग्रामीण विकास के विभिन्न प्रकल्पों में उनके योगदान की परिदृश्यात्मक विवेचना इस प्रकार है:

वैयक्तिक कोटि के संचार माध्यम

इस कोटि के संचार माध्यम मानव सभ्यता के इतिहास में सबसे प्राचीन माने जाते हैं। जबसे मनुष्य जाति में समझ और बोध का विकास हुआ तभी से इस कोटि के संचार माध्यम किसी न किसी रूप में सदा मौजूद रहे हैं जिनका भरपूर इस्तेमाल भी किया जाता रहा है। व्यक्ति मात्र से संबंधित हर वह निजी चेष्टा; जिसके अंतर्गत किसी बाह्य साधन–संसाधन के बिना ही किन्ही संचारक्षम तथ्यों, विचारों या संदेशों को संप्रेषित करने पर अमल किया जा रहा हो; वैयक्तिक कोटि का संचार माध्यम कहलाती है। आमतौर पर व्यक्ति ही चूंकि ऐसे माध्यमों के लिए आधारभूत संसाधन और प्रयोक्ता दोनों है इसलिए इस तरह के संचार माध्यमों की कोटि का नामकरण 'वैयक्तिक' किया जाता रहा है।

मोटेतौर पर इस कोटि के अंतर्गत दो तरह की वैयक्तिक चेष्टाओं को शुमार किया जाता है – 1. मौखिक, तथा 2. सांकेतिक। व्यक्ति की ये दोनों ही आदिम चेष्टाएं जब किसी अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह तक कुछ संचारमूलक विचार संप्रेषित करने के ध्येय से क्रियान्वित की जाती हैं, तब उनकी भूमिका संचार माध्यम की होती है। प्राचीनकाल से ही किन्हीं संदेशों के संचार के लिए मनुष्य वैयक्तिक चेष्टा के इन दोनों ही प्रकारों का प्रयोग करता आया है। इनमें से 'मौखिक' का प्रयोग तो हालांकि बोली के अविष्कार और भाषा के विकास के क्रम में कालांतर में व्यहृत हुआ, लेकिन 'सांकेतिक' का प्रचलन और पहले से रहा है।

इस कदर आदिम होने के बावजूद वैयक्तिक कोटि के संचार माध्यम अभी तक बूढ़े नहीं हुए हैं। आज भी सारी दुनिया में सर्वाधिक व्यहृत संचार माध्यम इसी कोटि के हैं। न्यूनतम लागत के बावजूद इनके असर का विज्ञान विश्व भर में एक समान है। इसके अलावा, सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इनकी विश्वसनीयता भी अन्य संचार माध्यमों (चाहे वे परंपरागत हों या आधुनिक) की तुलना में सबसे अधिक है और अचूक रूप से परिणामदायी भी। यही वजह है कि इन्हें आज भी सबसे कारगर माना जाता है और ऐसी रणनीतियां तैयार की जाती हैं जिनके फलस्वरूप 'माउथ पब्लिसिटी' अधिकतम रूप से संभव हो पाए।

वैयक्तिक कोटि के संचार माध्यम, वैसे तो हर कहीं कारगर साबित होते हैं किंतु शहरों की अपेक्षा गांवों में उनकी प्रभावशीलता कहीं अधिक निखरकर सामने आती है। शहरों में माध्यम प्रकारों की भीड़ होने और एक–दूसरे को पछाड़ने की चूहादौड़ के कारण वैयक्तिक संचार माध्यम मौजूद और प्रभावी होने के बावजूद अमूमन ध्यान में कम आते हैं जबकि गांवों में वे ही प्रमुख तौर पर प्रतीत होते हैं। आधुनिक जमाने के ज़ेरेअसर आज गांवों में भी तमाम नए संचार माध्यम प्रवेश कर गए हैं, फिर भी वैयक्तिक कोटि के माध्यम अभी भी अपनी प्रमुखता बनाए हुए हैं।

गांवों के संदर्भ में मोटेतौर पर यह समझा जा सकता है कि वहां की कुल आबादी में से जितने लोग किसी भी प्रकार के संचार माध्यम

☞ सुपरिचित माध्यम विशेषज्ञ, वरिष्ठ पत्रकार, लेखक तथा फिल्मकार।

के प्रभाव के दायरे में आते हैं, वे सब किसी न किसी रूप से वैयक्तिक कोटि के संचार माध्यमों की प्रभाव स्थिति की जद में हैं। वे सब बहुधा मौखिक और यदा–कदा सांकेतिक रूप से उन संदेशों पर अपने–अपने ढंग से विमर्श करते हुए उन्हें संचारित करते हैं जो अन्य माध्यम प्रकारों द्वारा समय–समय पर संप्रेषित किए जाते हैं। इस तरह ग्रामीण विकास से संबंधित समस्तप्राय प्रकल्पों की सफलता और उनके प्रति व्यापक जनजागरण में वैयक्तिक कोटि के संचार माध्यम खासा योगदान करते हैं। जनस्वास्थ्य, जलसंरक्षण, सामुदायिक विकास, खेतिहर तकनीकों के अनुप्रयोग, उत्पाद,विपणन सरीखे तमाम प्रकल्पों में उनकी भूमिका इतनी महत्वपूर्ण है कि उनके योगदान के बिना सफलता बहुधा संदिग्ध हो उठती है। सरकारी एजेंसियों द्वारा चलाई जा रही विभिन्न ग्राम विकास योजनाओं का लाभ सबको सुनिश्चित करने की दिशा में उनकी बाबत सब तक खबर पहुंचाने के काम में भी वैयक्तिक माध्यम कारगर साबित होते हैं और एक–दूसरे के अनुभवों से उनके जरिए अवगत होकर व्यापक जन समुदाय उन योजनाओं की दिशा में प्रवृत्त होता है। साक्षरता प्रसार, पर्यावरण चेतना जैसे प्रकल्पों के परिप्रेक्ष्य में गांवों में आज जो और जितनी भी जाग्रति दिखती है, वह बहुत हद तक ऐसे ही माध्यमों के जरिए आई है।

पत्र–पत्रिका कोटि के संचार माध्यम

संसाधनित संचार माध्यमों में इस कोटि का अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है। भारतीय गांवों के इतिहास की तुलना में इस कोटि के संचार माध्यमों का अतीत हालांकि बहुत पुराना नहीं है लेकिन उनकी पैठ, और उससे भी कहीं ज्यादा उनकी पूछ आज गांवों में है। देश में आज भी बहुतेरे ऐसे गांव हैं जहां इस कोटि के किसी भी संचार माध्यम की पैठ अभी विधिवत नहीं बन पाई है मगर वहां भी इनके प्रति खासी ललक है। मूलतः मुद्रित शब्दों व चित्रों वाले इन पाठ्य माध्यमों में से अनेक को गांवों में खासा समादर भी प्राप्त है चाहे उन गांवों तक उनकी सीधी पहुंच बन पाई हो अथवा नहीं।

इस कोटि के अंतर्गत अखबारों और पत्र–पत्रिकाओं के अतिरिक्त विभिन्न विषयों पर केंद्रित सर्वप्रसारित अथवा सीमित प्रसार हेतु प्रकाशित वैशेषिक पत्रिकाओं, कृषि सहित तमाम परिप्रेक्ष्यों पर एकाग्र शोधात्मक पत्रिकाओं, स्कूल–कालेजों की ओर से समय–समय पर (बहुधा वार्षिक रूप से) प्रकाशित पत्रिकाओं, स्मारिकाओं आदि का शुमारा होता है। आजकल चिट्ठी–पत्री की लेखन सामग्रियों पर कई किस्म के संदेश भी अक्सर छापे जाते हैं। उनकी गिनती भी इसी कोटि के तहत होती है।

चिट्ठी–पत्रों जैसे लघु आकारों से लेकर अखबारों सरीखे विराट स्वरूप तक पसरी मुद्रित शब्दों व चित्रों की इस दुनिया के सभी माध्यम प्रकारों का असर ग्रामीण क्षेत्रों पर अपनी–अपनी तरह से है; किसी का बहुत ज्यादा, तो किसी का बहुत कम। इस कोटि के संचार माध्यमों में से असर के लिहाज से अखबार जहां सबसे आगे हैं, वहीं वैशेषिक पत्रिकाएं सबसे पीछे। इन अखबारों में मुख्यतः

वे अखबार शामिल हैं जो दैनिक रूप से प्रकाशित और प्रसारित होते हैं। साप्ताहिक, पाक्षिक जैसी अन्य अवधि वाले अखबारों का असर दैनिक अखबारों से कमतर है।

जिन भारतीय गांवों तक इस कोटि के संचार माध्यमों की नियमित पहुंच है, उनमें जून 2002 तक की स्थिति के अनुसार अखबारों का प्रभाव 52.36 प्रतिशत क्षेत्रों तक रहा है। विकास की तमाम सरकारी योजनाओं की बाबत विस्तृत जानकारी उन्हें अमूमन अखबारों के जरिए ही मिलती है और उनसे संलाभ प्राप्त करने की दिशा में कदम बढ़ाने पर यदि राह में कुछ रोड़े उन्हें अटकते दिखते हैं तो अखबार ही मंच बनकर उनकी आवाज भी बुलंद करते हैं। आम ग्रामीणों को जन–स्वास्थ्य, साक्षरता, पर्यावरण जैसे तमाम संदर्भों में और अपने अधिकारों आदि के प्रति उन्हें जाग्रत करने में भी अखबारों की खासी भूमिका रही है। चेतना के इस प्रसार की परिणति भी अंततः ग्रामीण विकास में होती है।

ग्रामीण विकास के विभिन्न प्रकल्पों में अखबारों का योगदान और भी बढ़ सकता है बशर्ते गांवों से निरक्षरता को पूरी तरह खदेड़ दिया जाए। अन्य माध्यम प्रकारों के बीच अखबार जिन ग्रामीणों की रुचि का विषय हैं, उनमें सर्वाधिक संख्या (46.18 प्रतिशत) पुरुषों की है और उसके बाद है महिलाओं (32.47 प्रतिशत) का स्थान, जबकि 19 वर्ष तक की आयु के 'टीनएजर' बच्चे व किशोर (21.35 प्रतिशत) इस मामले में सबसे पीछे हैं। (सारणी–1)

ग्रामीण क्षेत्रों में प्रभाव की दृष्टि से अखबारों के बाद स्थान आता है पत्रिकाओं का। हालांकि उन दोनों के बीच ढाई गुना से अधिक का अंतर है, मगर अखबारों के बाद ही सही, पत्रिकाओं का महत्व इसलिए भी है क्योंकि इस कोटि के शेष माध्यम प्रकार गांवों में उनसे भी कहीं कम प्रभावी साबित होते हैं। इस वर्ग में साप्ताहिक से लेकर मासिक–त्रैमासिक और वार्षिक तक विविध अवधि की पत्रिकाएं आती हैं। मनोरंजन को अपना मुख्य स्वर बनाए रखने के बावजूद पत्रिकाएं शिक्षा और सूचना भी प्रदान करती हैं। उनकी सामग्रियों का अंदाजे–बयां भी ठेठ समाचारी के बजाय चूंकि रोचक और अमूमन विश्लेषणात्मक होता है

सारणी–1

पत्र–पत्रिका कोटि के संचार–माध्यमों की ग्रामीण क्षेत्रों में प्रभाव स्थिति (प्रतिशत में)

क्रमांक	संचार माध्यम का प्रकार	ग्रामीण क्षेत्रों में प्रभाव[1]	रुचि वर्ग[2]			
			कुल व्यक्ति	पुरुष	स्त्री	बच्चे / किशोर[3]
1.	अखबार	52.36	39.72	46.18.	32.47	21.35
2.	पत्रिका	19.42	28.14	31.26	45.12	23.62
3.	स्कूली पत्रिका	08.74	13.67	19.36	21.48	59.16
4.	शोध पत्रिका	06.23	10.93	74.12	10.66	15.22
5.	वैशेषिक	03.16	12.46	39.81	42.56	17.63
6.	चिट्ठी–पत्री	10.09	09.88	25.67	48.16	26.17

जून 2002 तक की स्थिति

1. स्रोत : सर्वेक्षण रिपोर्ट (2002); सेंटर फॉर स्टडीज़ इन रूरल डेवलपमेंट
2. स्रोत : फैक्ट्स अबाउट इंडिया; सं. – पी. मैथाली
3. आय सीमा 19 वर्ष तक

इसलिए ग्रामीण जनमानस पर उनके प्रभाव की व्याप्ति अखबारों से कम होने के बावजूद अपेक्षाकृत अधिक टिकाऊ होती है।

जिन गांवों में पत्र–पत्रिका कोटि के संचार माध्यमों की नियमित पहुंच है, उनमें पत्रिकाओं का प्रभाव जून 2002 तक की स्थिति के अनुसार 19.42 प्रतिशत क्षेत्रों तक रहा है। प्रदूषण मुक्ति, जल संरक्षण, दलित उत्थान, वन संरक्षण जैसे उन तमाम प्रकल्पों में पत्रिकाएं ज्यादा कारगर ठहरती हैं जिनमें प्रयासों के सातत्य की जरूरत पड़ती है अथवा जिनके अभियान दीर्घकालिक होते हैं क्योंकि फिर जनचेतना की व्यापकता और सघनता ही उनकी सफलता में निर्णायक साबित होती है। **आम गांवों में दलित जागरण का आज जो स्वरूप उभरकर आया है, उसकी पीठिका तैयार करने में पत्रिकाओं ने खासा श्रम किया है जो गांधी के जमाने से लेकर आज तक जारी है।** पर्यावरण संबंधी चेतना, निजी स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता आदि भी कुछ ऐसे ही उदाहरण हैं।

पत्रिकाओं के बाद भारतीय गांवों में नए चलन के उस माध्यम प्रकार का प्रभाव है जिसमें चिट्ठी–पत्री संबंधी लेखन सामग्रियों पर छपे संदेशों की अभिव्यक्ति संचारित की जाती है। इस माध्यम का प्रभाव स्कूली, वैशेषिक और शोध पत्रिकाओं से जरूर अधिक है किंतु आम ग्रामीणों की रुचि के मामले में वह तीनों से पीछे है। रुचि को यदि पाठकीयता हेतु अंतर्प्रेरणा माना जाए, तो कहा जा सकता है कि चिट्ठी–पत्री पर छपे संदेशों के प्रति ग्रामीणों की जाहिर रुचि उससे कहीं अधिक है।

गांवों में चिट्ठियां आमतौर पर तुरंत ही फेंक नहीं दी जातीं, इसलिए इस माध्यम प्रकार की भूमिका ग्रामीण विकास के परिप्रेक्ष्य में और बढ़ जाती है। वैसे परिवार कल्याण, पोलियो उन्मूलन, साक्षरता, कुष्ठ निवारण जैसे कुछ ही मसलों को इस माध्यम के जरिए संचारित किया गया है। इस माध्यम प्रकार पर ज्यादा काम होना अभी शेष है। चुटीले, रोचक और नारेबाजीयुक्त संदेश इस माध्यम प्रकार हेतु ज्यादा मुफीद हैं।

समय–समय पर छपनेवाली स्कूली पत्रिकाओं व स्मरिकाओं का प्रभाव तो ग्रामीण क्षेत्रों में जून 2002 तक हालांकि 08.74 प्रतिशत ही रहा है लेकिन उनकी पाठ्य–सामग्रियों में भी रुचि दर्शाने वाले कुल ग्रामीणों की संख्या इसी अवधि तक 13.67 प्रतिशत दर्ज की गई। स्कूली पत्रिकाओं से ज्यादा वास्ता चूंकि बच्चों व किशोर का ही पड़ता है, लिहाजा इनके रुचि वर्ग में उन्हीं की तादाद सर्वाधिक (59.16 प्रतिशत) है। महिलाओं की संख्या इस संबंध में उनके आधे से कम (21.48 प्रतिशत) तथा पुरुषों की एक तिहाई से भी नीचे (19. 36 प्रतिशत) है। (देखें, सारणी–1)

जिन गांवों तक इस कोटि के संचार माध्यमों

की पहुंच है, उनमें से शोध पत्रिकाओं का प्रभाव हालांकि 06.23 प्रतिशत हिस्से तक ही है किंतु इस प्रभाव का एक अतिरिक्त महत्व इसलिए भी है क्योंकि गांवों में पहुंचने या मंगाई जाने वाली ऐसी पत्रिकाएं स्वयं ग्रामीण विकास की सफलता की पताकाएं हैं। एक जमाने में विद्वानों तक के लिए दुर्बोध इन शोध पत्रिकाओं का आज देश के गांवों में जो प्रवेश संभव हुआ है, वह दरअसल आजादी के बाद से ग्रामीण शिक्षा के संबंध में सतत किए गए प्रयासों का फल है जिनके कारण गांवों में अब उच्चशिक्षा प्राप्त लोगों की कमी नहीं है। इन्हीं लोगों के बूते ऐसी पत्रिकाएं अब गांवों में अपने पांव वर्ष–दर–वर्ष और पसार रही हैं।

समाचार से लेकर सत्य–कथा, खान–पान से लेकर किस्सा–कहानी, धर्म से लेकर फिल्म जैसे तमाम विषयों पर केंद्रित या समग्रीभूत रूप से चर्चा करती वैशेषिक पत्रिकाओं की प्रभाव स्थिति जून 2002 तक की स्थिति के अनुसार उन भारतीय गांवों के 03.16 प्रतिशत क्षेत्रों तक है जहां पत्र–पत्रिकाओं की नियमित पहुंच है। ऐसी पत्रिकाओं का मकसद चूंकि व्यापक तौर पर मनोरंजन प्रदान करना तथा पढ़–लिख सकने वाले लोगों की पठन क्षुधा को शांत करना होता है इसलिए इनके प्रति लोगों की रुचि तो होती है किंतु ग्रामीण विकास के विभिन्न प्रकल्पों में इनका योगदान अत्यल्प होता है। ऐसी पत्रिकाएं चाहे सर्वप्रसारित हों या सीमित प्रसार वाली, उनका कैनवास इतना बड़ा होता है कि उसकी छद्म छवि के सामने ग्रामीण विकास के विभिन्न पक्ष धूमिल से पड़े जाते हैं अतः उन पर चर्चा भी सबसे कम होती है।

वैशेषिक पत्रिकाओं का प्रयोग गांवों में अक्सर समय काटने के लिए किया जाता है। पत्र–पत्रिका पढ़ने वाले ग्रामीण लोगों के लिए ऐसी पत्रिकाओं का उपयोग तात्कालिक होता है क्योंकि इनसे न तो उन्हें अपनी रोजी –रोजगार में कोई सहायता मिलती है, और न ही विकास संबंधी तमाम नई योजनाओं की कोई जानकारी ही। यही वजह है कि ऐसी पत्रिकाओं को अपनी रुचि के तौर पर गिनाने वालों में उन ग्रामीणों की तादाद खासी होती है जिनका वास्ता दौड़–भाग की कम गुजांइश वाले दैनिक कामों से पड़ता है।

वैशेषिक पत्रिकाओं के प्रति ग्रामीणजनों की रुचि (चाहे वह जिस भी रूप में और जिस भी कारण से हो) को देखते हुए इस माध्यम को भी ग्रामीण विकास में योगदाता के तौर पर उभारा जाना चाहिए। इसके लिए सर्वाधिक जिम्मेदारी बेशक उन्हें ही उठानी होगी, जिनके हाथों में इन पत्रिकाओं की बागडोर है।

श्रव्य कोटि के संचार माध्यम

इस कोटि के संचार माध्यमों का इतिहास प्राचीनकाल से लेकर जहां शताब्दियों पहले से प्रचलित है, वहीं रेडियो जैसा माध्यम आधुनिक काल की देन है। जैसाकि इस कोटि के नामकरण से ही स्पष्ट है, इसके अंतर्गत शुमार होने वाले संचार माध्यमों का आधार होता है ध्वनि–चाहे वह यांत्रिक जरिए से संचारित हो रही हो, अथवा वैयक्तिक संसाधन और सामर्थ्य के जरिए। मुनादी को छोड़कर इस कोटि के शेष तीनों माध्यम (रेडियो, कैसेट और लाउडस्पीकर) यांत्रिक आधार वाले हैं जो बिजली या बैटरी से अर्जित ऊर्जा के द्वारा संचालित होते हैं।

रेडियो इस कोटि के संचार माध्यमों में सबसे प्रमुख है। विभिन्न प्रसारण केंद्रों से प्रतिदिन चौबीसों घंटे प्रसारित होने वाले इस माध्यम की व्याप्ति भी खूब है। यांत्रिक आधार के किसी भी माध्यम के मुकाबले रेडियो की पहुंच देश में सर्वाधिक है। अदद बिजली पर ही निर्भर न रहकर बैटरी से भी चलने और पोर्टेबल होने कारण रेडियो को खेत–खलिहानों में काम करते हुए, साइकिल चलाते हुए या बैलगाड़ी हांकते हुए भी सुना जा सकता है। रेडियो रसोईघर में रोटियां बेलते हुए भी सुना जा सकता है और चौपालों में हुक्का गुड़गुड़ाते हुए भी।

मनोरंजन और संचार के कई नए माध्यमों के अवतरित होने से रेडियो के प्रति आम ग्रामीणों की ललक हालांकि विगत डेढ़ दशक के दौरान कम हुई है लेकिन कई माध्यमों के मुकाबले रेडियो अभी भी आगे है और उसका प्रभाव भी गौरतलब है। श्रव्य कोटि के संचार माध्यम देश के जिन गांवों में नियमित तौर पर अपनी पैठ बनाए हुए हैं, उनमें से रेडियो का प्रभाव सर्वाधिक 59.37 प्रतिशत क्षेत्रों तक है। अप्रैल 2003 तक की यह स्थिति रेडियो के प्रभाव की उज्जवल तस्वीर प्रस्तुत करती है।

ग्रामीण विकास में रेडियो के योगदान की एक उल्लेखनीय परंपरा है। विज्ञापनों और प्रायोजित कार्यक्रमों के बाहुल्य वाले कुछ रेडियो चैनलों के अलावा लगभग सभी चैनल ग्रामीण विकास के मकसद से भी कार्यक्रम प्रसारित करते हैं। खेती–किसानी से लेकर पशुपालन, वानिकी, पर्यावरण, ग्रामोद्योग, उत्पाद विपणन, जनस्वास्थ्य, स्वच्छता, पेयजल, जल संरक्षण, सामुदायिक विकास जैसे तमाम ऐसे परिप्रेक्ष्य हैं जिन पर रेडियो अदद वार्ताओं से लेकर विशेष कार्यक्रमों तक के दौरान नाना प्रकार की जानकारियां अपने श्रोताओं को उपलब्ध कराता है। विभिन्न सरकारी एजेंसियों द्वारा

सारणी–2

श्रव्य कोटि के संचार माध्यमों की ग्रामीण क्षेत्रों में प्रभाव स्थिति (प्रतिशत में)

क्रमांक	संचार माध्यम का प्रकार	ग्रामीण क्षेत्रों में प्रभाव[1]	रुचि वर्ग[2]			
			कुल व्यक्ति	पुरुष	स्त्री	बच्चे / किशोर[3]
1.	रेडियो	59.37	41.52	46.28	43.77	09.95
2.	कैसेट	21.08	29.36	11.82	36.64	52.18
3.	लाउडस्पीकर	13.14	10.17	19.76	32.71	47.53
4.	मुनादी	06.42	08.23	16.31	28.63	55.06

अप्रैल 2003 तक की स्थिति

1. स्रोत : राष्ट्रीय सर्वेक्षण रिपोर्ट (2003); इंस्टीट्यूट ऑफ रिसर्च इन मास मीडिया
2. स्रोत : नमूना सर्वेक्षण (2003); भंडारकर सेंटर फॉर रूरल स्टडीज़
3. आयु सीमा 19 वर्ष तक

चलाई जा रही योजनाओं आदि के बारे में भी रेडियो पर्याप्त मार्गदर्शन करता है। दक्षिण भारत के कई राज्यों में अनेक कल्याणकारी योजनाओं से जन–जन को जोड़ने के काम में रेडियों को करीब तीन दशक पूर्व जो सफलता मिली थी, उसका उदाहरण आज भी दिया जाता है।

श्रव्यकोटि के संचार माध्यमों में से रेडियो को भी अपनी विशेष रुचि के तहत गिनने वाले लोगों की भी खासी तादाद है गांवों में। अप्रैल 2003 तक की स्थिति के अनुसार ऐसे लोगों की संख्या 41.52 प्रतिशत हिस्से तक विस्तारित है। इनमें पुरुषों की तादाद सर्वाधिक (46.28 प्रतिशत) है, जबकि ग्रामीण महिलाएं इस मामले में उनसे थोड़ी ही पीछे (43.77 प्रतिशत) हैं। रेडियो के प्रति अपनी विशेष दिलचस्पी जताने में 19 वर्ष तक के बच्चे व किशोर सबसे पीछे हैं। इस मामले में उनकी संख्या का प्रतिशत 09.95 पर ही ठहर जाता है। (देखें, सारणी–2)

गांवों में रेडियो के बाद श्रव्यकोटि का जो संचार माध्यम सर्वाधिक प्रभावी है, वह है – कैसेट, जिसे टेपरिकार्डर पर सुना जाता है। कहीं लाने ले जाने के मामले से लेकर नियमित व्यय तक के हाशिए में कैसेट सुनना रेडियो जितना सुविधाजनक तो नहीं है, किंतु रेडियो की अपेक्षा इसमें मनचाही चीज को मनचाहे मौकों पर बार–बार सुन सकने की अतिरिक्त गुंजाइश जरूर है जो इस माध्यम की ओर लोगों को आकृष्ट करती है। लेकिन इसके बावजूद रेडियो के मुकाबले इसका प्रभाव आधे से भी कम है।

संगीत में भी अधिकतर कैसेट फिल्मी संगीत पर आधारित होते हैं। गांवों तक पहुंचने वाले कुछ कैसेट हालांकि गैरफिल्मी, शास्त्रीय व लोकसंगीत के भी होते हैं किंतु कुल मिलाकर सब मनोरंजन के ही काम आते हैं। ग्रामीण विकास में सीधे योगदान का परिप्रेक्ष्य उनकी पहुंच से दूर ही रहता है। हाल के कुछ वर्षों में जन–स्वास्थ्य, स्वच्छता, साक्षरता, पर्यावरण जैसे लोक सरोकारों पर भी इक्का–दुक्का कैसेट विभिन्न सरकारी, गैर–सरकारी एजेंसियों के सौजन्य से गांवों तक पहुंचे हैं। लेकिन न तो उनमें विषय की विविधता तथा रचनात्मकता ही दिखती है और न ही वे सहजतापूर्वक उपलब्ध हो पाते हैं। ऐसे कैसेटों से ग्रामीण विकास की गति बेशक तेज होगी, इसलिए उनको तैयार करने पर विशेष जोर दिया जाना चाहिए। साथ ही, उनका वितरण भी मुख्यधारा के कैसेटों की तरह व्यावसायिक अंदाज में करना होगा – तभी ये उपयोगी कैसेट भी ग्रामीण की रुचि को आकृष्ट कर पाएंगे।

लाउडस्पीकर हालांकि शादी–ब्याह और सभा–समारोहों में भी बजता है किंतु मुख्यतः यह प्रचारात्मक कामों में प्रयुक्त होता है। सामान्य शोरगुल वाली बस्ती के बीच से जब अचानक लाउडस्पीकर के जरिए ऊंची आवाज में कोई संदेश प्रचारित करता वाहन गुजरता है तो वह लोगों का ध्यान अपनी ओर खींचता है और फौरी तौर पर लोग उससे प्रभावित भी होते हैं। अप्रैल 2003 तक की स्थिति के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में लाउडस्पीकर का प्रभाव 13.14 प्रतिशत तक होता है। यह प्रभाव स्थिति उन गांवों के परिप्रेक्ष्य में है जहां श्रव्य कोटि के संचार माध्यम आम हैं।

ग्रामीण विकास के परिप्रेक्ष्य में भी लाउडस्पीकर काफी उपादेय साबित होते हैं। जब भी किसी सरकारी या गैर सरकारी एजेंसी को अपनी बात आम ग्रामीणों तक सीधे पहुंचानी होती है, वह लाउडस्पीकर का सहारा लेती है। प्रसारित किए जाने वाले संदेशों में ग्रामीण विकास से जुड़े प्रकल्पों का जितना अंश होता है, उसी हद तक लाउडस्पीकर भी ग्रामीण विकास में योगदान करता है। तमाम विकास योजनाओं, विशेषकर खास अवसरों पर लगने वाले कैम्पों आदि की सूचना आम ग्रामीणों को इसी माध्यम से मिलती है। ये सूचनाएं हालांकि सबके मतलब की होती हैं, आम ग्रामीण उन्हें सुनना भी चाहते हैं इसीलिए लाउडस्पीकर के संदेशों पर कान भी देते हैं, मगर लाउडस्पीकर के प्रति सर्वाधिक रुचि बच्चों में होती है जो गांवों में अक्सर लाउडस्पीकर वाले वाहनों के पीछे–पीछे दौड़ते दिखते हैं। अप्रैल 2003 तक की स्थिति के अनुसार लाउडस्पीकर में भी विशेष रुचि दर्शाने वाले ग्रामीणों की संख्या में से सर्वाधिक (47.53 प्रतिशत) हिस्सा बच्चों का है। महिलाओं का स्थान इस मामले में बच्चों के बाद (32.71 प्रतिशत), जबकि सबसे पीछे (19.76 प्रतिशत) हैं पुरुष। (देखें, सारणी–2)

आम जनता तक अपनी बात पहुंचाने के लिए एक जमाने में सर्वाधिक प्रचलित रहे माध्यम मुनादी का प्रभाव अब काफी कम हो गया है। दूरदराज के गांवों में अब भी इसका प्रयोग समय–समय पर होता है लेकिन इसका प्रभाव कुल मिलाकर कोई खास नहीं है।

श्रव्य–दृश्य कोटि संचार माध्यम

इस कोटि के संचार माध्यमों का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। फिल्म इस कोटि के अंतर्गत सबसे पुराना माध्यम है, भारत में जिसके प्रवर्तन की शताब्दी अभी कुछेक वर्ष पहले मनाई गई थी। जबकि इस कोटि में सबसे नया है मल्टीमीडिया, जो करीब डेढ़ दशक पहले ही अवतरित हुआ है और अभी ठीक से पांव भी नहीं पसार पाया है। शेष सभी माध्यम उम्र के लिहाज से या तो फिल्म के अनुज हैं या मल्टीमीडिया के अग्रज।

उम्र के बहुत वसंत न देखने के बावजूद इस कोटि के संचार माध्यमों ने प्रभाव की दृष्टि से ऐसा तूफान बरपा किया है कि एक ओर जहां कई अन्य कोटियों के माध्यमों ने भी अपने लिए अकूत आकर्षण अर्जित किया है, इस कोटि के कई माध्यम बहुतेरे गांवों में दीवानगी की हद तक लोकप्रिय हैं।

फिल्म यानी सिनेमा इस कोटि का सर्वाधिक लोकप्रिय और प्रभावशाली माध्यम गांव–गांव तक नियमित रूप से नहीं पहुंच सका तो क्या, उसके प्रति आकर्षण में बंधे लोग ही खुद उस तक जा पहुंचे हैं। बड़े परदे पर नाचती–बोलती चंचल छवियों का प्रभाव ही कुछ ऐसा है।

पूरे देश को व्यापक रूप से प्रभावित करने वाले फिल्म माध्यम के प्रति कई प्रांतों में तो स्थिति ऐसी है कि वहां की ग्रामीण महिलाओं तक की जीवनशैली का सहज हिस्सा बन गया है सिनेमा। दक्षिण भारत के आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु जैसे राज्य इसके प्रबल उदाहरण हैं जहां सिनेमा रोजमर्रा के जिंसों की तरह जरूरी हो गया है।

फिल्में वैसे तो हर किसी के जनजीवन को प्रभावित करती हैं, लेकिन उनका सर्वाधिक

गोचर प्रभाव ग्रामीण क्षेत्रों में ही दिखता है जहां परंपरा और परिवर्तन के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में फिल्मों का प्रभाव 47.74 प्रतिशत तक है। मनोरंजन को अपने मुख्य स्वर के रूप में प्रतिष्ठित करने वाली फिल्में ग्रामीण विकास में भी खासी कारगर साबित होती हैं। इस मामले में फिल्मों के योगदान की एक सुदीर्घ परंपरा भी रही है। **न केवल हिंदी, बल्कि देश की लगभग सभी भाषाओं में ऐसी फिल्में बनी हैं जिनमें ग्रामीण जागरुकता पर बल दिया गया है और ग्रामीण विकास से संबंधित तमाम मसलों को बोधगम्य कथाओं में पिरोकर प्रभावी रूप से उठाया गया है।** सामाजिक न्याय, नारी सम्मान, स्वास्थ्य और स्वच्छता, सहकारिता जैसे तमाम ऐसे परिप्रेक्ष्य हैं जिनमें आए मानसिकतापरक परिवर्तनों का बहुत कुछ श्रेय फिल्मों को ही जाता है। अब हालांकि ग्रामीण सरोकारों वाली सार्थक कथात्मक फिल्मों के निर्माण की दर हर भाषा में घटी है, लेकिन फिर भी जब–तब तो ऐसी फिल्में बनती ही हैं। सिर्फ ऐसी फिल्में ही नहीं, बल्कि आम बनने वाली आज की फिल्में भी ग्रामीण विकास के विभिन्न प्रकल्पों में इस लिहाज से अपना योगदान करती हैं।

पुरुष, महिला व बच्चे – तीनों ही वर्गों में फिल्मों को पसंद किया जाता है लेकिन तीनों का रुचि संबंधी ग्राफ असमान है। फिल्मों में भी रुचि रखने वाले ग्रामीणजनों में पुरुषों की संख्या सर्वाधिक 48.73 प्रतिशत है, जबकि महिलाओं की तादाद 36.16 प्रतिशत तथा 19 वर्ष तक की आयु के बच्चों व किशोरों की संख्या 15.11 प्रतिशत है। (देखें, सारणी–3)

फिल्मों के बाद ग्रामीण क्षेत्रों में सर्वाधिक प्रभावी श्रव्य–दृश्य माध्यम है टेलीविजन, हालांकि उसमें अपनी विशेष रुचि दर्शाने वाले ग्रामीणजनों की संख्या फिल्मों को चाहने वालों से भी अधिक है। अप्रैल 2003 तक की स्थिति के अनुसार जिन गांवों तक श्रव्य–दृश्य माध्यमों ने अपनी प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष किंतु नियमित पकड़ बनाई है, उनके 32.07 प्रतिशत क्षेत्रों तक टेलीविजन का प्रभाव है जबकि उसके प्रति रुचि जाहिर करने वाले ग्रामीणों की संख्या 61.47 प्रतिशत तक आंकी गई है।

ग्रामीण विकास के मामले में टेलीविजन खासा प्रभावी और उपादेय है। टेलीविजन पर प्रसारित कार्यक्रमों के अनेक रूप ग्रामीण विकास से संबंधित प्रकल्पों को भी स्वयं में समेटते हैं जिनके चलते आम ग्रामीणों को मार्गदर्शन तथा जागरुकता दोनों ही परिप्रेक्ष्यों में लाभ होता है। कृषि, पशुपालन, जनस्वास्थ्य व स्वच्छता, शिक्षा व साक्षरता, पर्यावरण, प्रदूषण मुक्ति, पेयजल, सामुदायिक विकास, महिला व बाल कल्याण, जल संरक्षण, वानिकी, आवास, ग्रामोद्योग जैसे तमाम प्रकल्पों में टेलीविजन के कार्यक्रम आम ग्रामीणों के प्रयासों की गति बढ़ाकर ग्रामीण विकास की तस्वीर को अपनी ओर से मुकम्मल करते हैं। टेलीविजन के अनेक चैनल मात्र मनोरंजन को ही समर्पित हैं हालांकि ये उपग्रही चैनल बहुसंख्यक गांवों तक नहीं पहुंच पाते।

साक्षरता प्रसार जैसे सघन अभियान को प्रोत्साहित कर रहे इस माध्यम ने अभी हाल के वर्षों में महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, छत्तीसगढ़, उत्तर प्रदेश, राजस्थान तथा उड़ीसा के गांवों में जागरूकता फैलाने के अनेक अभियानों को हवा दी है।

फिल्मों के बजाय टेलीविजन को ग्रामीण महिलाएं अपनी रुचि में प्राथमिकता देती हैं। अप्रैल 2003 तक की स्थिति के अनुसार फिल्मों को अपनी प्राथमिक रुचि बताने वाली महिलाएं फिल्म दर्शकों के सकल समूह के 36.16 प्रतिशत हिस्से तक ही हैं जबकि टेलीविजन को अपनी पहली पसंद आंकने वाली महिलाओं का प्रतिशत बढ़कर 47.82 तक पहुंच गया है।

टीवी के असर से आई वन संरक्षण हेतु एकजुटता

बस्तर (छत्तीसगढ़) के गांवों और जंगलों में अनपढ़ आदिवासिनी मिटकी दीदी के नेतृत्व में वन संपत्तियों को बचाए रखने के लिए आदिवासी महिलाओं का जो सघन अभियान चल रहा है, आज कौन कह सकता है कि उनकी प्रेरणा का स्रोत दरअसल टेलीविजन जैसा एक संचार माध्यम है! लेकिन सच यही है। सब्जी बेचकर गुजारा करनेवाली मिटकी टीवी देखने की बहुत शौकीन रही है। दिन भर के कठिन परिश्रम से थककर चूर हो जाने के बाद मनोरंजन के नाम पर इसी एक साधन तक तब उसकी पहुंच थी। ऐसे ही एक दिन उसने टीवी पर एक प्रोग्राम देखा, जिससे पता चला कि सुंदरलाल बहुगुणा नाम के कोई बूढ़े सज्जन हिमालय के जंगलों में पेड़ों को कटने से बचाने के लिए वर्षों से 'चिपको आंदोलन' चला रहे हैं, जिसके तहत वह स्वयं तथा उनके कार्यकर्ता उन पेड़ों से जाकर चिपक जाते हैं जिन्हें काटा जा रहा होता है।

टीवी के और प्रोग्रामों की तरह ही यह प्रोग्राम भी मिटकी के जेहन में आया–गया हो गया तथा वह रोजमर्रा के अपने उसी पुराने ढर्रे पर चलती रही। इस बीच उसके गांव आसाना में वन विभाग ने कृत्रिम वन लगाने की एक परियोजना की तैयारियां शुरू कीं। यहां तक तो ठीक था, किंतु मिटकी की व्याकुलता तब शुरू हुई जब उसे पता चला कि परियोजना के तहत पहले बूढ़े पेड़ काटे जाएंगे, फिर नए लगाए जाएंगे। मिटकी भीतर तक कांप उठी क्योंकि इन्हीं जंगलों में उसका बचपन बीता था, इन जंगलों को वह अपना मां–बाप मानती थी लेकिन वह बेबस थी।

बेबसी के इन्हीं क्षणों में मिटकी को टीवी वाले प्रोग्राम की याद आई। बस, फिर क्या था! उसे सूझ गया वह रास्ता, जिसपर चलकर वह अपने 'मां–बाप' को बचा सकती थी। वह अपने कबीले की तमाम औरतों के पास गई और उन्हें समझाया कि जंगलों के कटने से सबसे बड़ी समस्या शौचादि की होगी। पुरुष तो फिर भी कहीं बैठ लेंगे, लेकिन औरतों का तो जीना हराम हो जाएगा। मिटकी की बात में उन्हें दम लगा और वे सब तुरंत जंगल में जा पहुंचीं। एक–एक पेड़ से एक–एक महिला तब तक लिपटी रही, जब तक कि कुल्हाड़ी लिए आए वनकर्मी लौट नहीं गए। धीरे–धीरे यह आंदोलन सारे बस्तर में फैल गया। मिटकी अब 'मिटकी दीदी' कहलाने लगी। सब्जी बेचना तो उसका फिर भी जारी है किंतु उसका ज्यादातर समय अब वन संपत्तियों को बचाने के लिए छेड़े गए अपने अभियान को दिशा देने और लोगों को प्रेरित करने में गुजरता है। मिटकी की राय पर अमल करके तमाम कबीलों की महिलाओं ने अपने खर्चे पर जंगल में अब बाकायदा रखवाले तैनात कर रखे हैं। जंगल में कहीं कुल्हाड़ी चलने की भनक मिलते ही सब एकजुट होकर वहां पहुंच जाती हैं।

टेलीविजन और फिल्मों जितना तो नहीं, मगर स्लाइड भी ग्रामीण क्षेत्रों में एक प्रभावी माध्यम है। अप्रैल 2003 तक की स्थिति के अनुसार श्रव्य–दृश्य संचार माध्यमों की पकड़ वाले ग्रामीण क्षेत्रों में से 14.26 प्रतिशत पर स्लाइडों का प्रभाव है। इन स्लाइडों का कोई व्यावसायिक प्रदर्शन नहीं होता, बल्कि विभिन्न अभियानों के तहत आयोजित चर्चा सत्रों को विषयगत रूप से बोधगम्य तथा प्रस्तुति की लिहाज से संप्रेषणीय व प्रभावी बनाने के लिए स्लाइडों का प्रदर्शन किया जाता है।

श्रव्य–दृश्य संचार माध्यमों में आजकल इलेक्ट्रॉनिक चैनलों का भी प्रचलन बढ़ा है। उत्तर भारत में अधिक प्रचलित ये चैनल भी लोगों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। शहरों में स्थापित चैनलों को तो आम ग्रामीण शहर जाने पर ही देख पाते हैं किंतु इनमें से कई उन गांवों में भी जगह–जगह लगे होते हैं जो या तो शहरों के निकट हैं या फिर राजमार्गों पर पड़ते हैं। इस तरह के चैनल ग्रामीणों के अधिक संपर्क में रहने के कारण उनके बीच अधिक होते हैं।

मल्टीमीडिया और ध्वनि व प्रकाश के जरिए संदेशों की प्रस्तुति करने वाले माध्यम प्रकार ग्रामीण क्षेत्रों में ज्यादा प्रभावी नहीं हैं। इनकी पहुंच भी ग्रामीण क्षेत्रों में कोई खास नहीं है। यहां तक कि देश के अनेक गांवों के लोगों को इन माध्यम प्रकारों के बारे में न कोई संज्ञान है न अनुभव।

पुस्तकीय कोटि के संचार माध्यम

संचार माध्यमों की इस कोटि की गिनती होती तो प्रमुखता से है, किंतु पढ़ने के बजाय देखने–सुनने की प्रवृत्ति आजकल बढ़त पर रहने के कारण पुस्तकीय माध्यम की लोकप्रियता वर्ष–दर–वर्ष उतार पर है। 'सेंटर फॉर रिसर्च इन एजुकेशन' की राष्ट्रीय सर्वेक्षण रिपोर्ट (2000) के अनुसार पुस्तकों के पठन की प्रवृत्ति में शहरों में 06.58 प्रतिशत की दर से तथा गांवों में 03.14 प्रति वर्ष की दर से गिरावट आ रही है। **पुस्तकीय सामग्रियों के पठन के मामले में गिरावट की दर हालांकि शहरों के मुकाबले गांवों में कम है, मगर जितनी है, वह भी चिंतनीय है।**

सारणी–3

श्रव्य–दृश्य कोटि के संचार माध्यमों की ग्रामीण क्षेत्रों में प्रभाव स्थिति (प्रतिशत में)

क्रमांक	संचार माध्यम का प्रकार	ग्रामीण क्षेत्रों में प्रभाव[1]	रुचि वर्ग[2]			
			कुल व्यक्ति	पुरुष	स्त्री	बच्चे/किशोर[3]
1.	फिल्म	47.74	56.32	48.73	36.16	15.11
2.	टेलीविजन	32.07	61.47	18.04	47.82	34.14
3.	स्लाइड	14.26	20.38	32.46	16.56	51.02
4.	पैनल	05.79	24.63	56.34	11.38	32.28
5.	ध्वनि–प्रकाश	00.08	अनुपलब्ध	अनुपलब्ध	अनुपलब्ध	अनुपलब्ध
6.	मल्टीमीडिया	00.06	04.26	35.43	14.86	49.71

अप्रैल 2003 तक की स्थिति

1. स्रोत : राष्ट्रीय सर्वेक्षण रिपोर्ट (2003); इंस्टीट्यूट ऑफ रिसर्च इन मास मीडिया
2. स्रोत : नमूना सर्वेक्षण रिपोर्ट (2003); अनुबंध मीडिया नेटवर्क
3. आयु सीमा 14 वर्ष तक

फिर भी, विशेषकर गांवों में ऐसा नहीं है कि पुस्तकीय कोटि के संचार माध्यम एकदम से हाशिए पर फेंक दिए गए हों। इस कोटि के माध्यम प्रकारों का प्रभाव आज भी गांवों में दिखता है जो पुस्तक प्रकारों के संदर्भ में अलग–अलग किंतु प्रभावी तौर पर रूपायित होता है।

पैंफलेटों का विषय क्षेत्र हालांकि बहुत विस्तृत है किंतु ग्रामीण विकास से जुड़े तमाम परिप्रेक्ष्य भी उसमें अपना खासा दखल रखते हैं। अपनी प्रकृति के तौर पर मूलतः प्रचारात्मक होने के नाते पैंफलेटों में ग्रामीण विकास के उन संदर्भों की अक्सर बहुलता रहती है, जिनमें किन्हीं सूचनाओं या संदेशों को जनसामान्य तक पहुंचाना होता है। विभिन्न सरकारी व गैर–सरकारी एजेंसियां भी ग्रामीण विकास के विभिन्न प्रकल्पों के संबंध में ग्रामीणों को संसूचित करने के लिए पैंफलेटों का प्रयोग करती हैं।

पैंफलेटों के बाद ग्रामीण क्षेत्रों में सर्वाधिक प्रभावी हैं पुस्तिकाएं। विषय विशेष या उसके किसी खास पहलू पर सारगर्भित रूप से प्रकाश डालने की प्रकृति ने इस माध्यम को गांवों के उन सामान्य पाठकों के बीच खासा लोकप्रिय बनाया है जो मोटी–मोटी पुस्तकों को पढ़ने के लिए समय और धैर्य नही संजों पाते या फिर जिनकी साक्षरता इतने कामचलाऊ स्तर की होती है कि गंभीर और विस्तृत विवेचनात्मक प्रकृति की पुस्तकें उनके पल्ले नही पड़ पातीं। बोधगम्य होने और अनावश्यक विस्तार से परहेज के कारण पुस्तिकाओं का ग्रामीण क्षेत्रों में प्रभाव भी खूब है। दिसंबर 2002 तक ही स्थिति के अनुसार पुस्तकीय कोटि के संचार माध्यमों की नियमित पहुंच जिन ग्रामीण क्षेत्रों में है, उनमें से 22.18 प्रतिशत हिस्सा पुस्तिकाओं के प्रभाव क्षेत्र में है।

ग्रामीण विकास में पुस्तिकाओं के योगदान का इतिहास देश की आजादी से भी पुराना है। तमिल में कामराज, गुजराती में सरदार पटेल, हिंदी में स्वामी सहजानंद ऐसे चंद प्रखर उदाहरण हैं जिन्होंने स्वयं पुस्तिकाएं लिखकर ग्राम विकास में आजादी से पहले योगदान किया था। **पुस्तिकाओं के जरिए ग्रामीण विकास में योगदान का सिलसिला अभी भी थमा नहीं है बल्कि नए ग्रामीण विषयों में नए कलेवर के साथ जारी है। अभी हाल के वर्षों में विख्यात बीज वैज्ञानिक ईश्वरचंद्र पाहूजा ने विभिन्न खेतिहर क्रियाओं पर मार्गदर्शी पुस्तिकाएं निकाली हैं जिनसे इस क्षेत्र में एक नए ही सिलसिले का प्रवर्तन हुआ है।** इसी तरह वन संरक्षण जैसे विषय पर सुंदरलाल बहुगुणा की पुस्तिकाओं ने भी ग्रामीण विकास के क्षेत्र में खासा योगदान करते हुए नई दिशा

का निदर्शन किया है। मैगसेसे पुरस्कार विजेता राजेंद्र सिंह की संस्था तरुण भारत संघ के सौजन्य से जारी जल–संरक्षण केंद्रित अनेक पुस्तिकाओं ने अलवर (राजस्थान) और आसपास के गांवों में पानी की बाबत जिस समझ का बीजारोपण किया है, वह इस माध्यम की शक्ति को समझने के लिए पर्याप्त है।

ग्रामीण विकास के लगभग हर प्रकल्प में पुस्तिकाएं आज समुचित योगदान कर रही हैं। ग्रामीणों में इसीलिए इनके प्रति रुचि भी काफी है। दिसंबर 2002 तक की स्थिति के अनुसार पुस्तिकाओं को अपनी विशेष रुचि में शुमार करने वाले ग्रामीणों की संख्या 41.27 प्रतिशत है, जिसमें सर्वाधिक तादाद पुरुषों की 48.62 प्रतिशत है। महिलाओं का हिस्सा 32.28 प्रतिशत है जबकि बच्चों का 19.10 प्रतिशत। (देखें, सारणी – 4)

पठन प्रवृत्ति में यदि वर्ष–दर–वर्ष ह्रास न होता रहता, तो पुस्तकों के प्रभाव का आंकड़ा और अधिक भी हो सकता था। बहरहाल, जितने भी ग्रामीणों को पुस्तकें प्रभावित करती हैं, उन्हें किसी न किसी रूप में चेतना संपन्न भी वे करती हैं जो अंततः ग्रामीण विकास की गति बढ़ाने के काम आता है।

किसी विषय पर चंद पन्नों में अपनी बात कहने में समर्थ लीफलेटों और ब्रोशरों का भी ग्रामीण क्षेत्रों में असर है। जिन ग्रामीण क्षेत्रों तक पुस्तकीय कोटि के संचार माध्यमों की पहुंच किसी न किसी रूप में नियमित तौर पर है, उनमें से दिसंबर 2002 तक की स्थिति के अनुसार लीफलेटों का प्रभाव 14.23 प्रतिशत हिस्से तक है।

सारणी–4

पुस्तकीय कोटि के संचार माध्यमों की ग्रामीण क्षेत्रों में प्रभाव स्थिति (प्रतिशत में)

क्रमांक	संचार माध्यम का प्रकार	ग्रामीण क्षेत्रों में प्रभाव[1]	रुचि वर्ग[2]			
			कुल व्यक्ति	पुरुष	स्त्री	बच्चे / किशोर[3]
1.	पुस्तक	18.36	38.24	21.37	21.45	57.18
2.	पुस्तिका	22.18	41.27	48.62	32.28	19.10
3.	लीफ–लेट	14.23	19.71	37.81	36.42	25.77
4.	ब्रोशर	11.04	15.82	38.16	39.57	22.27
5.	पंफलेट	34.19	52.63	56.84	15.89	27.27

दिसंबर 2002 तक की स्थिति

1. स्रोत : सर्वेक्षण रिपोर्ट (2003); सेंटर फॉर एकेडमिक रिसर्च
2. स्रोत : प्रतिरूप सर्वेक्षण (2003); ट्रस्ट फॉर प्रोमोटिंग रीडिंग–हैबिट्स
3. आयु सीमा 19 वर्ष तक

प्रदर्शितात्मक कोटि के संचार माध्यम

इस कोटि के सभी माध्यम मोटे तौर पर तो विज्ञापन और प्रचार की दुनिया से संबंधित हैं किंतु आत्यंतिक रूप से उनके जरिए भी चूंकि संदेश ही संचारित होते हैं इसलिए उनकी भी गणना संचार माध्यमों के प्रकारों के तौर पर की जाती है। ग्रामीण विकास के परिप्रेक्ष्य में उपादेयता की दृष्टि से भी इस कोटि के माध्यम महत्वपूर्ण हैं। इनमें से लगभग सभी ग्रामीण जन तक सीधी पहुंच रखते हैं।

दीवार लेखन इस कोटि का ऐसा माध्यम है जो ग्रामीण जन तक सीधी पहुंच और उनपर प्रभाव दोनों ही मामलों में अग्रणी है। **सीधी–सपाट भाषा में मतलब की बात को प्रभावी ढंग से कह गुजरने की क्षमता के कारण दीवार लेखन के जरिए संचारित संदेश आम ग्रामीणों के जेहन को छूते हैं और अमूमन तुकबंदीनुमा नारेबाजी के अपने अंदाज के कारण वे अरसा बाद तक याद भी रह जाते हैं।** आते–जाते हर समय निगाह पड़ते रहने के कारण भी दीवार लेखन ग्रामीण जनमानस पर अपना प्रभाव बखूबी दर्ज कर पाते हैं। जून 2002 तक की स्थिति के अनुसार जिन ग्रामीण क्षेत्रों में प्रदर्शितात्मक कोटि के संचार माध्यमों का चलन नियमित तौर पर है, उनमें से 21.17 प्रतिशत लोगों पर दीवार लेखन का प्रभाव आंका गया।

गांवों में दीवार लेखन के बाद सर्वाधिक प्रभावी हैं पोस्टर। कभी मात्र पाठ्यात्मक तो कभी चित्रयुक्त, कभी मात्र संदेशात्मक तो कभी विस्तृत विवरणयुक्त, जिस भी तरह के पोस्टर हो, सबका असर ग्रामीण जनमानस पर पड़ता है। जून 2002 तक की स्थिति के अनुसार देश के जिन गांवों में इस कोटि के माध्यमों की पहुंच नियमित रूप से है, उनमें से 17.42 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्र पोस्टरों की प्रभाव सीमा में आते हैं।

फिल्मों के प्रचार, सभा–समारोहों की तिथि सूचना आदि से संबंधित पोस्टरों के अलावा जिन पोस्टरों के संदेश किसी न किसी रूप से ग्रामीण विकास के किसी न किसी प्रकल्प से जुड़े होते हैं, वे ग्रामीण विकास का मकसद बखूबी साधते हैं। जन–स्वास्थ्य, पेयजल, जल संरक्षण, कृषिकर्म, भूमि सुधार, महिला व बाल कल्याण, साक्षरता, आवासन, नागरिक अधिकार, पर्यावरण संरक्षण, वानिकी जैसे तमाम परिप्रेक्ष्यों में पोस्टर जनमानस तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते आए हैं। विकास संबंधी अनेक योजनाओं की प्रविधि संबंधी सूचना भी पोस्टरो के माध्यम से दी जाती है। अनेक गैर–सरकारी संस्थाओं ने भी ग्रामीण जागरूकता के संचार के लिए पोस्टरों का सहारा लिया है। **राजस्थान में प्रौढ़ शिक्षा, गुजरात में श्वेत क्रांति, महाराष्ट्र में संतरा फार्मिंग जैसे अभियानों से क्षेत्रीय ग्रामीणों को सक्रिय रूप से जोड़ने में पोस्टरों ने ऐतिहासिक सफलता अर्जित की है।** पोस्टर और प्रभावी हो सकते हैं यदि उनके साथ जुड़ी एक दूभर विडंबना का समाधान कर दिया जाए। विडंबना यह कि न जाने किस सोच के तहत अनेक सार्थक पोस्टरों की छपाई ऐसे चिकने कागजों पर की जाती है जो गांवों की दीवारों पर चिपक कर बहुत दिनों तक टिके नहीं रह पाते। इस तरह उन पर छपे सार्थक संदेश अंततः धूल फांकते नजर आते हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में प्रभाव की दृष्टि से पोस्टरों से थोड़ा ही नीचे हैं बैनर। जिन ग्रामीण क्षेत्रों

सारणी–5

प्रदर्शितात्मक कोटि के संचार माध्यमों की ग्रामीण क्षेत्रों में प्रभाव स्थिति (प्रतिशत में)

क्रमांक	संचार माध्यम का प्रकार	ग्रामीण क्षेत्रों में प्रभाव[1]	रुचि वर्ग[2]			
			कुल व्यक्ति	पुरुष	स्त्री	बच्चे / किशोर[3]
1.	बैनर	16.38	44.28	51.73	15.66	32.61
2.	पोस्टर	17.42	46.34	56.44	09.04	34.52
3.	होर्डिंग	08.26	15.18	45.26	14.37	40.37
4.	दीवार–लेखन	21.17	52.73	37.12	20.13	42.75
5.	परिधान	13.24	42.51	43.87	11.92	44.21
6.	बिल्ला	15.41	45.36	22.36	10.46	67.18
7.	गुब्बारा	08.12	14.27	46.23	33.64	20.13

जून 2002 तक की स्थिति

1. स्रोत : फैक्ट्स अबाउट इंडिया; सं. – पी. मैथाली

2. स्रोत : नमूना सर्वेक्षण रिपोर्ट (2002); इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ एडवरटाइजिंग

3. आयु सीमा 19 वर्ष तक

तक प्रदर्शितात्मक कोटि के माध्यमों की नियमित पहुंच है, जून 2002 तक की स्थिति के अनुसार उनमें से 16.38 प्रतिशत क्षेत्रों में बैनरों का प्रभाव है।

अमूमन प्रचारात्मक कामों में प्रयुक्त बैनर ग्रामीण विकास के विभिन्न प्रकल्पों में भी योगदान करते हैं। तमाम सरकारी योजनाओं और जन–स्वास्थ्य संबंधी शिविरों की तिथि सूचना का मकसद तो इस माध्यम के जरिए सधता ही है, साथ ही ऐसे बैनर भी ग्रामीण क्षेत्रों में जब–तब लगाए जाते हैं जो आम ग्रामीणों के बीच जागरूकता और संचेतना का प्रसार करते हैं। परिवार नियोजन, कृषि विकास, पर्यावरण संरक्षण, वानिकी, साक्षरता जैसे तमाम परिप्रेक्ष्यों में बैनरों ने अतीत में काफी जागरूकता फैलाई है। **पश्चिम बंगाल, बिहार, राजस्थान, कर्नाटक और महाराष्ट्र में बैनरों ने दहेज उन्मूलन और दलितोद्धार जैसे परिप्रेक्ष्यों में खासी कारगर भूमिका निभाई है। संदेशों की संक्षिप्तता किंतु पर्याप्त संप्रेषणीयता के कारण बैनर ग्रामीण क्षेत्रों में रुचि लेकर देखे–पढ़े भी जाते हैं।** जून 2002 तक की स्थिति के अनुसार 44.28 प्रतिशत ग्रामीणों ने माध्यम प्रकारों के प्रति अपनी व्यक्त रुचि में बैनरों को भी शुमार किया है।

बैनरों के बाद प्रभाव की दृष्टि से नंबर आता है बिल्लों का, हालांकि उनके प्रति ग्रामीणों की रुचि बैनरों से थोड़ी अधिक है। ग्रामीण विकास के विभिन्न प्रकल्पों में बिल्ले भी कारगर भूमिका निभाते हैं। इस मामले में वही बिल्ले उपादेय साबित हो पाते हैं, जिन पर अंकित संदेश किसी न किसी रूप में उन प्रकल्पों से जुड़ते हों। साक्षरता, पोलियो उन्मूलन, पर्यावरण–संरक्षा जैसे मसलों पर हाल में बने बिल्ले काफी सार्थक साबित हुए हैं। अधिक समय तक टंगे रहने के कारण बिल्लों पर अंकित संदेश (जो संक्षिप्त और सूत्रवत होता है) लोगों की नजर में बराबर रहता है। वैसे, ग्रामीण विकास में बिल्लों का प्रयोग अभी पूरी तरह नहीं हो पाया है। फिर भी उनमें संभावनाएं प्रचुर हैं।

बिल्लों की तरह का ही एक प्रचारात्मक माध्यम है परिधान। इसके तहत टी शर्ट के सामने व पीछे वाले हिस्से, कमीज की जेब आदि पर संदेश अंकित किए जाते हैं। ये परिधान चूंकि बहुत दिनों तक पहने जाते हैं, इसलिए उनके संदेश भी बार–बार निगाहों के सामने आते हैं और इस तरह लोगों के जेहन को प्रभावित करते हैं।

ग्रामीण विकास में परिधान का प्रयोग अपेक्षाकृत नया है। हालांकि करीब तीन दशक पूर्व सन् 1974–75 में महाराष्ट्र में कुछ स्वैच्छिक समूहों ने परिवार नियोजन संबंधी नारों को आम ग्रामीणों तक पहुंचाने के लिए इस माध्यम का प्रयोग किया था, मगर उसके बाद कतिपय छिटपुट प्रयासों को छोड़कर परिधानों पर ग्रामीण विकास के विभिन्न प्रकल्पों से संबंधित संदेश कम ही नजर आए और यह माध्यम वापस विज्ञापन व प्रचार की व्यावसायिक दुनिया में पहुंच गया। हाल के वर्षों में साक्षरता संबंधी कुछ नारे परिधानों पर फिर नजर आने लगे। वैसे, ग्रामीण विकास में परिधानों का प्रयोग अभी ठीक से नहीं हुआ है हालांकि पर्यावरण, वानिकी, जनस्वास्थ्य, स्वच्छता, जल संरक्षण जैसे कई प्रकल्प परिधानों पर अब तक स्थान पा चुके हैं।

प्रस्तुतिकारी कोटि के संचार माध्यम

इस कोटि के संचार माध्यमों का इतिहास तो बहुत पुराना है किंतु ग्रामीण विकास में उनका प्रयोग अपेक्षाकृत नया, जिसका चलन भारत में आजादी के बाद से तेज हुआ है। ग्रामीण विकास में उनका प्रयोग अचानक भी नहीं हुआ है बल्कि इससे पहले दशकों तक आजादी की लड़ाई के दौरान जनचेतना जगाने के मकसद से उनका इस्तेमाल होता रहा है। जैसाकि इस कोटि के नाम से स्पष्ट है, इसके अंतर्गत शामिल प्रत्येक माध्यम किसी न किसी तरह की प्रस्तुति पर आधारित होता है। ग्रामीण विकास में उपयोगी साबित हो सकने वाले संदेश इन्हीं प्रस्तुतियों के दौरान बीच–बीच में प्रकारांतर से पिरोए जाते हैं। दर्शक इन प्रस्तुतियों का आनंद ले रहे होते हैं कि इसी बीच कब प्रकट संदेश उनके जेहन में पैठ जाता है, उन्हें पता भी नहीं चलता। प्रस्तुति का कलात्मक पक्ष तो धीरे–धीरे मन से मिटता जाता है किंतु उनके जरिए जब–तब मिले संदेश गहन से गहनतर होते जाते हैं।

शोभायात्रा इस कोटि के माध्यम प्रकारों में सबसे प्रभावी है। किसी भी मौके या तीज–त्यौहार पर गाजे–बाजे सहित और बहुधा घोड़े, हाथी, विमान, स्वांग आदि के साथ भी निकाला जानेवाला जुलूस शोभायात्रा कहलाता है। मार्ग के दोनों तरफ और आसपास के मकानों की छतों, खिड़कियों आदि से भी लोग गुजरती शोभायात्रा को देखते हैं तथा

कथाएं प्रस्तुत की जा रही हैं। आम ग्रामीणों की रुचि भी इस माध्यम में खासी है। जून 2002 तक की स्थिति के अनुसार 46.37 प्रतिशत ग्रामीणों ने इस माध्यम के प्रति भी अपनी रुचि जतायी है जिनमें पुरुषों (35.11 प्रतिशत) और महिलाओं (23.56 प्रतिशत) की संख्या 19 वर्ष तक की आयु के बच्चों व किशोरों की तादाद (41.33 प्रतिशत) से कम है।

जादू का परंपरागत खेल भी ग्रामीण क्षेत्रों में काफी प्रभावी है। जून 2002 तक की स्थिति के अनुसार जादू के जादुई असर के दायरे में 22.06 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्र आते हैं। यह आंकड़ा उन ग्रामीण क्षेत्रों की समग्रता के परिप्रेक्ष्य में है जहां प्रस्तुतिकारी कोटि के संचार माध्यम नियमित रूप से प्रस्तुत होते रहे हैं।

नटों, बाजीगरों आदि द्वारा दिखाए जाने वाले करतब (जो अमूमन शारीरिक होते हैं) भी ग्रामीण क्षेत्रों में प्रभावी हैं। पशुओं के प्रयोग और जादू की प्रस्तुतियों के बिना मदारियों द्वारा दिखाया जानेवाला खेल भी इसी माध्यम प्रकार के तहत आता है। जून 2002 तक की स्थिति के अनुसार 18.27 प्रतिशत क्षेत्रों में करतब का प्रभाव है।

ग्रामीण विकास के विभिन्न प्रकल्पों में करतब का योगदान दो तरह से होता है। करतब के दौरान नट यदि बीच-बीच में कोई ऐसा संदेश संप्रेषित करता है जो ग्रामीण विकास से संबंधित हो, तो उससे ग्रामीण विकास की गति को मदद मिलती है। इसके अलावा, नटों ने कुछ ऐसे भी खेल अब तैयार कर लिए हैं जिनका परिप्रेक्ष्य सीधेतौर पर ग्रामीण विकास ही होता है। ऐसे खेलों में जागरूकता प्रसार पर जोर होता है और उनका विषय कृषि विकास से लेकर पंचायत प्रबंध कुछ भी हो सकता है।

बंदर, भालू, हाथी, तोता आदि पशु-पक्षियों के करतब आधारित प्रदर्शनों का भी ग्रामीण क्षेत्रों में प्रभाव है। सर्कस भी इसी तरह का माध्यम है। पशु-पक्षियों पर अत्याचार न होने के प्रति देश में फैल रही जागरूकता के कारण हालांकि ऐसे प्रदर्शनों की तादाद अब घट रही है, फिर भी ग्रामीण क्षेत्रों में उनका प्रभाव है। जून 2002 तक की स्थिति के

उसमें बैनरों, पट्टिकाओं आदि पर अंकित संदेशों से भी इस दौरान प्रभावित होते हैं। जून 2002 तक की स्थिति के अनुसार जिन ग्रामीण क्षेत्रों में प्रस्तुतिकारी कोटि के संचार माध्यमों का नियमित चलन है, उनके 23.41 प्रतिशत क्षेत्रों पर शोभायात्रा का प्रभाव है।

ग्रामीण विकास हालांकि शोभायात्राओं का मुख्य ध्येय नहीं है किंतु प्रकारांतर से वह भी इस माध्यम प्रकार के जरिए सधता देखा गया है। **शोभा यात्रा के दौरान लोग तरह-तरह के बैनर, पताका, पट्टिकाएं भी लेकर चलते हैं, जिन पर बहुधा ऐसे भी संदेश अंकित रहते हैं जिनके तात्पर्य किन्हीं अर्थों में ग्रामीण चेतना का संचार करते हैं या प्रकारांतर से ही सही, ग्रामीण विकास के लिए अपरिहार्य संदर्भों से जुड़े रहते हैं।** पश्चिम बंगाल, उड़ीसा व असम में इनका प्रचलन अधिक है। आजादी के बाद से साक्षरता, दहेज उन्मूलन, जाति-निषेध, लैंगिक समानता जैसे व्यापक संदर्भ भी विषय के तौर पर प्रस्तुत किए जाने लगे हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों पर प्रभाव के मामले में शोभायात्राओं से थोड़ी ही पीछे हैं कठपुतली नृत्य की प्रस्तुतियां। कठपुतली नृत्य देश के समस्तप्राय हिस्से में परंपरागत रूप से प्रस्तुत किया जाता है। कभी निखालिस लकड़ी के पुतलों, कभी वस्त्राभूषित पुतलों, कभी चर्मपुतलों, तो कभी मात्र छायाओं के सहारे की जानेवाली इनकी प्रस्तुतियों के नाम जरूर जगह-जगह बदल जाते हैं। उड़ीसा में रावण छाया, राजस्थान में कठपुतली, आंध्रप्रदेश में बुर्रकथा, केरल में थोलापावु कुथू आदि। हर जगह इस माध्यम की प्रस्तुति लोगों को प्रभावित करती है। जिन ग्रामीण क्षेत्रों में प्रस्तुतिकारी कोटि के संचार माध्यमों की पहुंच हैं, उनमें से जून 2002 तक की स्थिति के अनुसार 22.14 प्रतिशत तक कठपुतली का प्रभाव है।

कठपुतली नृत्य की प्रस्तुतियों के जरिए ग्रामीण विकास दो तरह से सधता है। एक तो तब, जब प्रस्तुति देखने आई भीड़ को संबोधित करके ग्रामीण विकास संबंधी संदेश दिए जाते हैं। दूसरी विधि के तहत कठपुतली नृत्य के दौरान कथा ही कुछ ऐसी मंचित की जाती है जिसका परिप्रेक्ष्य ग्रामीण विकास के विभिन्न प्रकल्पों से संबंधित होता है। दोनों ही विधियां आज आम प्रचलित हैं, हालांकि दूसरी विधि अधिक प्रभावी साबित होती है। **ग्रामीण विकास को प्रोत्साहित करनेवाली कथाओं का चलन आजादी के बाद से काफी बढ़ा है। कठपुतली नृत्य के दौरान आज ग्रामीण विकास के समस्तप्राय प्रकल्पों से जुड़ी**

अनुसार जिन ग्रामीण क्षेत्रों में प्रस्तुतिकारी कोटि के संचार माध्यम नियमित रूप से प्रस्तुत किए जाते हैं, उनमें से 15.12 प्रतिशत क्षेत्रों पर पशु प्रदर्शनों का प्रभाव है।

परिघटनात्मक कोटि के संचार माध्यम

इस कोटि के संचार माध्यम संसाधनित माध्यम प्रकारों में सबसे प्राचीन वर्ग से ताल्लुक रखते हैं। इस कोटि में शामिल प्रदर्शनी जैसे माध्यम अपने नाम के लिहाज से आधुनिक अवश्य प्रतीत होते हैं, किंतु आत्यंतिक रूप से वह भी मेले और हाट का मिला–जुला स्वरूप होने के कारण उतना ही पुराना है। इस कोटि के सभी माध्यम अपने आयोजन की दृष्टि से स्वयं में घटना (इवेंट) हैं और ग्रामीण विकास में सबकी भूमिका भी खासी प्रभावी है।

सर्वाधिक प्रभावी माध्यम है मेला। हजारों वर्षों से देश भर में हर जगह लगते चले आ रहे मेले हर कहीं किसी सुनिश्चित तिथि को आयोजित होते हैं। लोग उन तिथियों की प्रतीक्षा करते हैं और समय आने पर बिना किसी औपचारिक निमंत्रण के वहां स्वयं पहुंच जाते हैं। देश भर में हजारों तरह के मेले आयोजित होते हैं जिनमें से किसी का आधार धार्मिक होता है तो किसी का सामाजिक या कुछ और। कोई मेला नैमित्तिक रूप से कुछेक महीनों का होता है, जैसे नाटी इमली (वाराणसी) का भरत मिलाप, तो कई महीनों तक चलता है।

मेला कैसा भी हो, उसमें भाग लेने का चाव शहरी लोगों से कहीं अधिक ग्रामीणों में होता है। ग्रामीण अंचलों में इसीलिए मेले का प्रभाव भी काफी है। आसपास के मेलों में तो शिरकत करते ही हैं ग्रामीण, दूरदराज तक के मेलों का प्रभाव भी उन्हें वहां खींच ले जाता है। जिन ग्रामीण क्षेत्रों में इन माध्यमों का प्रचलन आम है, उनमें से 29.17 प्रतिशत क्षेत्रों में दिसंबर 2002 तक की स्थिति के अनुसार मेलों का प्रभाव है।

मेला चूंकि तमाम तरह के आयोजनों, शिविरों, दुकानों, प्रतिष्ठानों आदि का एकत्रीकृत समूह होता है इसलिए ग्रामीण विकास का मकसद मेलों में उन्हीं के जरिए सधता है। कृषि विकास से लेकर उत्पाद विपणन, जन–स्वास्थ्य से लेकर सामुदायिक विकास और चर्चा–विमर्श से लेकर अनुभवों के आदान–प्रदान तक लगभग सभी तात्पर्य मेले से सधते हैं तथा ग्रामीण विकास के परिप्रेक्ष्य में सीधे योगदान से लेकर जागरूकता प्रसार तक के काम उनके जरिए संभव हो पाते हैं। यही वजह है कि तमाम सरकारी, गैर–सरकारी एजेंसियां भी मेलों में अपने निजी शिविर लगाती हैं और गांवों से आए लोगों को विभिन्न संदर्भों में संसूचित अथवा जागरूक करके ग्रामीण विकास को अपने–अपने ढंग से गति देती हैं। **ग्रामीण विकास में मेलों की भूमिका को हजारों वर्षों से पहचाना गया है। प्राचीनकाल में राजा हरिश्चंद्र, धर्मराज युधिष्ठिर, सम्राट अशोक, विक्रमादित्य आदि से लेकर आधुनिक काल में भारतेंदु, तिलक जैसे समाज सुधारकों तक ने ग्रामीण विकास में मेलों के उपयोग की जो लीक उकेरी है, उस पर अमल आज भी जारी है।**

ग्रामीण विकास में कारगर प्रेरणाओं के लिए जिन ग्रामीणों ने मेलों को भी अपनी रुचियों में शुमार किया है, उनकी संख्या दिसंबर 2002 तक की स्थिति के अनुसार 59.23 प्रतिशत है। ग्रामीण महिलाओं का हिस्सा इसमें हालांकि कम 16.37 प्रतिशत है किंतु पुरुषों का हिस्सा जहां सर्वाधिक 47.18 प्रतिशत है वहीं बच्चों व किशोरों की संख्या 36.45 प्रतिशत है।

ग्रामीणों और ग्रामीण क्षेत्रों में प्रभाव की दृष्टि से मेलों के बाद आता है स्नान–पर्वों का स्थान। शुचिता पर विशेष बल देनेवाली भारतीय संस्कृति में स्नान–पर्वों का अपना विशेष महत्व है इसलिए इनके आयोजन लोगों, खासकर ग्रामीण लोगों को विशेष प्रभावित करते हैं। जिन ग्रामीण क्षेत्रों में यह आम है उनमें से दिसबंर 2002 तक की स्थिति के अनुसार 26. 12 प्रतिशत क्षेत्रों तक स्नान–पर्वों का प्रभाव है।

स्नान–पर्वों पर भी चूंकि मेले ही लगते हैं, इसलिए ग्रामीण विकास के विभिन्न परिप्रेक्ष्यों में उनका भी योगदान उसी तरह होता है जैसे कि स्वयं मेलों का। स्नान–पर्वों की अवधि भी भिन्न–भिन्न होती है। कई स्नान–पर्व मात्र एक दिन के होते हैं (जैसे मकर संक्रांति के दिन गंगा सागर स्नान) जबकि कई महीने भर से भी अधिक (जैसे इलाहाबाद का महाकुंभ स्नान) चलते हैं। स्नान–पर्वों में चूंकि महिलाओं की भीड़ अधिक होती है इसलिए ग्रामीण विकास के उन प्रकल्पों को उनके जरिए विशेष गति मिलती है जिनमें महिलाओं की भागीदारी ज्यादा हो। दिसंबर 2002 तक की स्थिति के अनुसार 53.47 प्रतिशत ग्रामीणजन स्नान–पर्वों को भी अपनी रुचियों में गिनते हैं जिनमें महिलाओं की संख्या सर्वाधिक 51.24 प्रतिशत है जबकि पुरुषों की संख्या 27.15 प्रतिशत तथा 19 वर्ष तक की आयु के बच्चों व किशोरों की संख्या 21.62 प्रतिशत है।

रोजमर्रा के सामान की खरीद–फरोख्त के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में समय–समय पर, बहुधा साप्ताहिक अंतराल पर लगने वाले हाट भी ग्रामीण जनमानस को प्रभावित करते हैं। जिन ग्रामीण क्षेत्रों में इन माध्यमों की शिरकत आम है, दिसंबर 2002 तक की स्थिति के अनुसार उनमें से 14.53 प्रतिशत क्षेत्रों पर हाटों का प्रभाव है। वैसे, ग्रामीण क्षेत्रों में हाटों का प्रभाव अब पहले जैसा नहीं रहा, क्योंकि खरीद–फरोख्त के केंद्रों में अब विविधता आ गई है। फिर भी, हाटों का प्रभाव घटने के बावजूद अभी काफी है।

कृषि तथा ग्रामोद्योग के उत्पादों की क्षेत्रीय मंडी होने के कारण वैसे तो हाट स्वयं भी ग्रामीण विकास का ही एक प्रक्रियात्मक हिस्सा है, लेकिन उत्पाद विपणन के अलावा ग्रामीण विकास के अन्य प्रकल्पों में भी वे गाहे–बगाहे मददगार साबित होते हैं। **स्वरूप में बुनियादी तौर पर मेले का ही लघु रूप होने के कारण ग्रामीण विकास में हाट भी मेले की तरह ही योगदान करते हैं किंतु अपेक्षाकृत सीमित स्तर पर।** हाटों में शिरकत का आधार स्थानीयता होती है इसलिए विभिन्न सरकारी योजनाओं से लेकर जनस्वास्थ्य संबंधी शिविरों आदि की तिथि सूचना के लिए भी हाटों का उपयोग प्रचुरता से होता है।

भारत में यात्रानुष्ठानों का भी अपना एक विशिष्ट महत्व है और चूंकि धार्मिकता का जोर शहरियों के मुकाबले ग्रामीणों में अधिक

रहता है इसलिए यात्रानुष्ठानों का प्रभाव भी ग्रामीण क्षेत्रों में ज्यादा है। दिसंबर 2002 तक की स्थिति के अनुसार 17.11 प्रतिशत क्षेत्रों में यात्रानुष्ठानों का प्रभाव है।

यात्रानुष्ठान दो तरह के होते हैं – तीर्थयात्रा और परिक्रमा। तीर्थयात्रा के तहत किसी विशेष तीर्थस्थल या अनेक तीर्थस्थलों की यात्रा होती है जो कुछ महीनों के अतिरिक्त वर्ष में कभी भी की जा सकती है। परिक्रमा के तहत किसी विशिष्ट तीर्थस्थान की परिसीमा में पड़नेवाले मंदिरों आदि का परिक्रमण होता है। इसके लिए यात्रापथ भी सुनिश्चित है और समय भी जैसे कि ब्रज क्षेत्र की परिक्रमा भाद्रशुक्ल एकादशी से प्रारंभ होती है, काशी की पंचक्रोशी यात्रा फाल्गुन मास में होती है, नैमिषारण्य की परिक्रमा माघ अमावस्या से माघ पूर्णिमा तक होती है, पंढरपुर यात्रा देवशयनी और देवोत्थान एकादशी को होती है। दोनों ही तरह के यात्रानुष्ठानों में दूर–दूर के ग्रामीण भाग लेते हैं। **उनकी आपसी चर्चाएं एक–दूसरे के अनुभवों को आपस में बांटती हैं, जिनसे ग्रामीण विकास के विभिन्न प्रकल्पों में प्रकारांतर से मदद मिलती हैं। यात्रानुष्ठानों के परिपथ पर भी तरह–तरह के आयोजन होते हैं और शिविर लगते हैं जिनसे संचारित संदेश भी ग्रामीण विकास में बहुधा कारगर साबित होते हैं।** महाराष्ट्र की पंढरपुर यात्रा के दौरान कई संस्थाएं कृषि (विशेषकर आलू और कपास) के विकास की नई तकनीकों पर केंद्रित शिविर भी लगाती हैं।

प्रदर्शनी हालांकि मेले और हाट का मिश्रित रूप हैं, किंतु प्रभाव की दृष्टि से दोनों से कमतर रहने के बावजूद लोकप्रियता के लिहाज से दोनों से आगे है। ऐसा इसलिए क्योंकि प्रदर्शनी का आयोजन सुनियोजित रूप से किया जाता है। दिसंबर 2002 तक की स्थिति के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में से 13.07 प्रतिशत क्षेत्रों में प्रदर्शनी का प्रभाव है।

अभिनयमूलक कोटि के संचार माध्यम

इस कोटि के संचार माध्यमों में से सभी का स्वरूप नाट्य रूपात्मक है। देश के कोने–कोने में हजारों साल से इस कोटि के विभिन्न माध्यम प्रचलन में हैं। कहीं किसी माध्यम का जोर ज्यादा है तो कहीं किसी का कम। इनमें व्यापक दर्शक समुदाय को बांधे रखने की जो अकूत क्षमता है, वही उन्हें तमाम अंतर्निहित संदेशों को संप्रेषित करने में भी सक्षम बनाती है। इनके मंचन से भाईचारा भी बढ़ता है।

धार्मिक नाट्य रूप इस कोटि का सर्वाधिक प्रभावी माध्यम है। **देश भर में हर कहीं मंचों या खुले मैदान में वहीं की स्थानीय भाषा में किए जाने वाले ये नाटक मूलतः धार्मिक आख्यानों पर आधारित होते हैं। हिन्दू धार्मिक आख्यानों पर आधारित नाटक देश में बहुतायत से होते हैं** किंतु ऐसा नहीं है कि अन्य धर्मों के आख्यानों पर आधारित नाटक होते ही नहीं। केरल में इसाई समुदाय द्वारा बाइबिल की कथाओं पर, कर्नाटक के कुछ गांवों में जैन कथाओं पर भी धार्मिक नाटकों का चलन है। ग्रामीणों पर धार्मिक नाटकों का प्रभाव भी खासा है। जिन ग्रामीण क्षेत्रों में अभिनयमूलक कोटि के संचार नियमित बर्ताव में हैं, उनमें से मार्च 2003 तक की स्थिति के अनुसार 26.13 प्रतिशत क्षेत्रों में ऐसे नाटकों का प्रभाव है।

गांवों में आम नाटकों का भी खासा असर है। देश के धार्मिक आधार से विलग और विषयगत परिप्रेक्ष्य की दृष्टि से सामाजिक, ऐतिहासिक आदि भी कहे जा सकने वाले इन नाटकों को गांवों में मंच, सामुदायिक केंद्रों या खुले मैदान में खेला जाता है। शौकिया तौर पर मंचित इन नाटकों का प्रचलन दक्षिण और पूर्वी भारत में अपेक्षाकृत अधिक है। जिन ग्रामीण क्षेत्रों में इन माध्यमों में शिरकत आम है, उनमें से मार्च 2003 तक की स्थिति के अनुसार 11.32 प्रतिशत क्षेत्रों में नाटकों का प्रभाव है।

गांवों में पारंपरिक नाट्य रूप भी काफी प्रभावी हैं। ऐसे नाट्यरूप देश के विभिन्न अंचलों में अलग–अलग नाम और स्वरूप में हजारों साल से प्रचलित हैं। असम में भाओना का प्रचलन है तो बंगाल में जात्रा का; उड़ीसा में दसकाठिया का; पूर्वी उत्तर प्रदेश व पश्चिमी बिहार में नकटा का; पश्चिमी उत्तर प्रदेश में रासलीला का; लगभग संपूर्ण उत्तर भारत में रामलीला का; छत्तीसगढ़ में माच का; राजस्थान में खयाल का; पंजाब–हरियाणा में स्वांग का; कर्नाटक में यक्षगान का; महाराष्ट्र में तमाशा का; गुजरात में भवाई का; केरल में कुटियट्टम का। इनमें से कई का स्वरूप धार्मिक होता है, किंतु धार्मिक नाटकों से उनकी भिन्नता इस बात में है कि पारंपरिक नाट्यरूपों के मंचन की प्रविधि भी परंपरागत और सुनिश्चित होती है जबकि आम धार्मिक नाटकों में ऐसा नहीं होता। जिन ग्रामीण क्षेत्रों में इन माध्यमों की प्रवृत्ति आम है, उनमें से मार्च 2003 तक की स्थिति के अनुसार 22.29 प्रतिशत क्षेत्रों पर ऐसे नाट्यरूपों का प्रभाव है।

ग्रामीण विकास में पारंपरिक नाट्यरूपों का भी योगदान स्टॉक चरित्र के जरिए ही होता है। सभी नाट्यरूपों ने ऐसा कोई चरित्र स्वयं में विकसित कर लिया है जैसे बवंडर सिंह (रामलीला); विवेक (यात्रा); सोगांडिया व पाइंडिया (तमाशा); रंगालो, जूठण मियां, झंडा ढुलण (भवाई) आदि। तमाशा, भवाई जैसे अनेक नाट्यरूप तो अपने स्टॉक चरित्रों की टिप्पणियों के जरिए ग्रामीण जनमानस की विचारधारा तक बदलने का काम करते आये हैं। **गुजरात में 'बेटा–बेटी समानता' के सामाजिक अभियान को सफल बनाने में 'भवाई' की ऐतिहासिक भूमिका रही है। महाराष्ट्र में सहकारिता को बढ़ावा देने में ऐसी ही भूमिका 'तमाशा' की रही है। 'जात्रा' ने भी बंगाल के गांवों को अनेक तरह से जागरूक बनाया है।** ग्रामीण विकास के लिए जो ग्रामीण अभिनयमूलक संचार माध्यमों को उपयोगी मानते है; मार्च 2003 तक ही स्थिति के अनुसार उनमें से 20.16 प्रतिशत लोग पारंपरिक नाट्यरूपों को भी अपनी रुचियों में शामिल करते हैं। इस मामले में व्यापक लैंगिक असंतुलन भी नहीं दिखता। पुरुषों की संख्या जहां सर्वाधिक 41.18 प्रतिशत है, वहीं महिलाओं की तादाद सबसे कम 28. 31 प्रतिशत बच्चों व किशोरों का वर्ग 30.51 प्रतिशत है।

यात्रात्मक ढंग के नाट्यरूप चूंकि एक मंच विशेष पर ही प्रस्तुत नहीं होते बल्कि चलते–फिरते या कहीं से कहीं आते–जाते हुए खेले जाते हैं, इसलिए उनका प्रभाव एक

स्थानिक ढंग से आम नाटकों से थोड़ा ज्यादा होता है। अभिनयमूलक संचार माध्यमों में शिरकत की प्रवृत्ति जिन ग्रामीण क्षेत्रों में आम है, उनमें से मार्च 2003 तक की स्थिति के अनुसार 12.48 प्रतिशत क्षेत्रों में यात्रात्मक नाट्यरूपों का प्रभाव है।

लोकनाट्य भी ग्रामीण क्षेत्रों, विशेषकर जनजातीय गांवों और आसपास के क्षेत्रों में खूब प्रभावी हैं। अभिनयमूलक संचार माध्यमों में भाग लेने की प्रवृत्ति जिन ग्रामीण क्षेत्रों में आम है, उनमें से मार्च 2003 तक की स्थिति के अनुसार 18.21 प्रतिशत क्षेत्रों में लोकनाट्यों का प्रभाव है।

नुक्कड़ नाटक भी एक प्रभावी माध्यम है हालांकि ग्रामीण क्षेत्रों में उसका असर सबसे कम 09.57 प्रतिशत है। नुक्कड़ नाटकों को आमतौर पर आधुनिक विधा माना जाता है, किंतु यह सत्य नहीं है। देश के विभिन्न भागों में अलग–अलग नामों से यह नाट्यरूप सदियों से खेले जाते रहे है जिनमें से कई तो काल के प्रभाव में बह गए; किंतु *वीथिनाट्कम* (आंध्र प्रदेश) *तेरूकुत* (तमिलनाडु) जैसे अनेक आज भी प्रचलित हैं।

नुक्कड़ नाटक चाहे आधुनिक हों या पारंपरिक, सभी जनसापेक्ष तथा स्थानीय परिप्रेक्ष्य में होते हैं। गांवों में खेले जाने वाले ऐसे नाटकों के विषय भी बहुधा ग्रामीण सहायक होते हैं। अनेक सरकारी, गैर–सरकारी एजेंसियां ग्रामीण विकास के विभिन्न प्रकल्पों में जनसामान्य को प्रवृत्त करने के लिए विशेष रूप से तैयार नुक्कड़ नाटकों का प्रदर्शन भी करवाती हैं। ग्रामीण विकास की दृष्टि से अभिनयमूलक संचार माध्यमों को उपयोगी माननेवाले ग्रामीण में से मार्च 2003 तक की स्थिति के अनुसार 34.17 प्रतिशत लोग नुक्कड़ नाटकों में भी अपनी रुचि जताते हैं। इनमें पुरुषों का हिस्सा 53.31 प्रतिशत, स्त्रियों का 04.85 प्रतिशत तथा बच्चों का 41. 84 प्रतिशत है।

नृत्यमूलक कोटि के संचार माध्यम

इस कोटि के सभी संचार माध्यम नृत्य प्रधान हैं और नृत्य ही उनमें से सबकी प्रस्तुतियों का आधार है। **नृत्य चूंकि भारत जैसे सांस्कृतिक देश में आदिम जमाने से लेकर अब तक होता चला आ रहा है इसलिए इस कोटि के कतिपय माध्यम प्रकारों में जहां नृत्य की पुरानी प्रविधियों का समावेश है, वहीं कुछ का अंदाज एकदम आधुनिक है।** साथ ही, कुछ में सुनिश्चित परिपाटी पर अमल ही जहां कलात्मकता की शर्त है, वहीं कुछ में भरपूर आजादी की गुंजाइश भी।

फिल्मी गीतों पर नृत्य इस कोटि के अंतर्गत सबसे लोकप्रिय माध्यम है। ग्रामीण क्षेत्रों में इसका प्रभाव भी सबसे ज्यादा है। नई–पुरानी फिल्मों के गीतों को टेप रिकार्डर के जरिए बजाते हुए उनकी धुनों पर व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से लोगों को, विशेषकर युवकों को, नाचते हुए गांवों में आम देखा जा सकता है। शादी–ब्याह जैसे मौकों पर भी अब फिल्मी गीत ही बहुतायत से बजते हैं और उनकी धुनों पर लोग नाचते हैं। दूरदराज के गांवों में फिल्मी गीतों पर नृत्य का चलन हालांकि उतना नहीं है, मगर नए फैशन के तहत उनके प्रति चाव वहां भी है।

जिन ग्रामीण क्षेत्रों में माध्यमों की शिरकत की प्रवृत्ति आम है, उनमें से मार्च 2003 तक की स्थिति के अनुसार सर्वाधिक 25.18 प्रतिशत क्षेत्रों में फिल्मी नृत्य का प्रभाव है। लेकिन जहां तक ग्रामीण विकास का प्रश्न है, यह माध्यम कोई खास उपयोगी साबित नहीं हो पाता। फिल्मी गीतों के बोलों से अक्सर नहीं

तो कभी–कभार ऐसे संदेश भी हालांकि ग्रहित हो सकते हैं जिनसे प्रकारांतर में ही सही, ग्रामीण विकास को बल मिले–फिल्मी नृत्य के दौरान बोलों के बजाय पदातिकों पर जोर अधिक होने के कारण वे भी बेअसर रह जाते हैं। फिल्मी नृत्य में 19 वर्ष तक की आयु के बच्चों व किशोरों की रुचि सर्वाधिक 63.48 प्रतिशत है। उनके बाद आता है पुरुषों 25.44 प्रतिशत का नंबर, जबकि सबसे पीछे (11.08 प्रतिशत) हैं महिलाएं। ये आंकड़े फिल्मी नृत्य को भी अपनी रुचियों में गिननेवाले कुल ग्रामीण (49.26 प्रतिशत) के परिप्रेक्ष्य में हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में फिल्मी नृत्यों के बाद सर्वाधिक प्रभावी हैं लोकनृत्य। देश के सभी अंचलों में लोकनृत्य हजारों वर्षों से किए जाते रहे हैं। सौ से अधिक नामों और प्रविधियों में बंटे इन लोकनृत्यों का चलन अब आमतौर पर घटना रहा है तथा उनकी प्रस्तुतियों में औपचारिकता का पुट भी अब वर्ष–दर–वर्ष बढ़ता जा रहा है। जनजातियों के भी अपने लोकनृत्य हैं। औपचारिकता का रंग हालांकि उनपर भी चढ़ता जा रहा है किंतु गैर–जनजातीय लोकनृत्यों की अपेक्षा कम गति से। फिर भी, लोकनृत्यों का प्रभाव अभी भी गांवों में है।

लोकनृत्यों की कई औपचारिक प्रस्तुतियों में आजकल सार्थक संदेशों की गुंजाइश भी पैदा की गई है। ये संदेश अमूमन ग्रामीण विकास के विभिन्न प्रकल्पों में जन–भागीदारी को प्रोत्साहित करने के लिए संप्रेषित होते हैं और बिहू (असम), लमकुटलम (मणिपुर), परब (छत्तीसगढ़), हेमंत (उड़ीसा), बाना (मध्य प्रदेश), लूर (हरियाणा), हुडो (गुजरात), कुनित (कर्नाटक), डप्पू (आंध्र प्रदेश), टप्पेट्टई (तमिलनाडु), मुखावटे (महाराष्ट्र), कालबेलिया (राजस्थान) जैसे लोकनृत्यों में जब–तब स्थान पाते हैं। ग्रामीण का कुल 45.14 प्रतिशत वर्ग लोकनृत्यों को भी अपनी रुचियों में गिनता है। इनमें पुरुषों का हिस्सा 38.71 प्रतिशत, महिलाओं का 32.26 प्रतिशत तथा बच्चों व किशोरों का 29.03 प्रतिशत है।

पारंपरिक नृत्य भी ग्रामीण जनमानस को प्रभावित करते हैं। ये भी एक तरह से लोकनृत्य ही हैं – अंतर बस इतना है कि पारंपरिक नृत्य अवसर विशेष पर अनुष्ठापूर्वक और समारोहपूर्वक किए जाते हैं। इनकी प्रविधि बहुत कट्टर भले न सही किंतु सुनिश्चित अवश्य होती हैं।

शास्त्रीय नृत्यों का चलन शहरों की अपेक्षा गांवों में कम है–और गांवों में भी उत्तर की अपेक्षा दक्षिण भारत में अधिक। पूर्वोत्तर में मणिपुरी जैसे शास्त्रीय नृत्य की प्रस्तुतियां मणिपुर, त्रिपुरा व मेघालय के गांवों में जरूर गाहे–बगाहे होती हैं लेकिन कथक जैसे उत्तर भारतीय नृत्य का गांवों में कोई नाम लेता भी सामान्यतया नहीं दिखता। दक्षिण भारत में कथकली की प्रस्तुति केरल के दूरस्थ गांवों तक में होती है। भरतनाट्यम व कुचिपुड़ि भी वहां के ग्रामीण दर्शकों को प्रभावित करते हैं। मार्च 2003 तक की स्थिति के अनुसार जिन ग्रामीण क्षेत्रों में नृत्यमूलक माध्यमों की प्रवृत्ति आम है, उनमें से 12.46 प्रतिशत क्षेत्रों में शास्त्रीय नृत्यों का प्रभाव है।

समायोजनात्मक कोटि के संचार माध्यम

इस कोटि के माध्यम समायोजन से संबंधित हैं। किसी का समायोजन संगठित और सुनियोजित तौर पर होता है तो किसी का असंगठित अथवा अनैच्छिक तौर पर। गांवों के सामाजिक जनजीवन में ऐसे समायोजनों का अपना अलग ही महत्व है और उनका प्रभाव भी ग्रामीणों पर काफी पड़ता है। धार्मिक, सामाजिक आदि सभी तरह के समायोजन इस कोटि में आते हैं।

इस कोटि का एक प्रमुख माध्यम है समूह चर्चा। असंगठित किस्म का यह माध्यम देश के सभी गांवों का आम नजारा है। खेत में किसी पेड़ की छांव में, खलिहान में, चौपाल में, पनघट पर, पंचायत घर में, किसी पुलियां के मुंडेरे पर, चाय–पान की दुकान पर .... जहां भी चार लोग जुटते हैं, शुरू हो जाती है समूह चर्चा। इस दौरान विषय क्षेत्र असीमित रहता है।

सत्संग प्रवचन भी इस कोटि का एक प्रमुख माध्यम है। गांवों में होने वाले ऐसे समायोजनों में ग्रामीणजन खुलकर भाग लेते हैं जिनमें महिलाएं भी अच्छी–खासी तादाद में होती हैं। इस माध्यम का विषय हालांकि धार्मिक होता है, किंतु बीच–बीच में सामयिक और स्थानीय परिपेक्ष्यों में टिप्पणियां भी अमूमन की जाती हैं। **ग्रामीण विकास से संबंधित लगभग हर प्रकल्प पर ऐसी ही टिप्पणियों के दौरान बहुधा चर्चा होती है। इनसे ग्रामीण जनमानस को एक दिशा मिलती है और प्रेरणा भी। ऐसे समायोजनों का गांवों में असर भी है और उनमें लोगों की रुचि भी।**

इस कोटि का एक अन्य माध्यम है सभा–समारोह। अनेक विषयों पर आयोजित सभा–समारोहों में से कई ग्रामीण विकास के प्रकल्पों से भी सीधे संबंधित होते हैं। विभिन्न सरकारी, गैर–सरकारी एजेंसियां भी ऐसे समायोजन करती हैं जिनमें नई तकनीकों से लेकर जागरूकता प्रसार के संदर्भों तक पर चर्चा होती है।

दूरभाषात्मक कोटि के संचार माध्यम

इस कोटि के सभी माध्यम आधुनिक युग की ऐसी वैज्ञानिक प्रविधि की देन है जिनके तहत गांव में अपने घर बैठा व्यक्ति अपने से दूर या दुनिया के किसी भी कोने में बैठे व्यक्ति से बातचीत कर सकता है अथवा लिखित सामग्रियों का आदान–प्रदान कर सकता है। इन माध्यम प्रकारों ने हर गांव को अब विश्व के नक्शे पर ला दिया है हालांकि देश के बहुसंख्यक गांवों में इस कोटि के संचार माध्यमों की पहुंच अभी बन नहीं पाई है और इस नाते ग्रामीण क्षेत्रों में उनका बर्ताव भी अभी सीमित है।

बेसिक टेलीफोन इस कोटि का सर्वाधिक प्रभावी माध्यम है। इस कोटि के अन्य माध्यम प्रकारों की अपेक्षा गांवों में व्याप्ति और पहुंच भी बेसिक टेलीफोन की ज्यादा है। जिन ग्रामीण क्षेत्रों में दूरभाषात्मक कोटि के संचार माध्यमों की पहुंच है, उनमें से मार्च 2003 तक क़ी स्थिति अनुसार 80.81 प्रतिशत क्षेत्रों में अकेले बेसिक टेलीफोन का ही प्रभाव है।

सेल्युलर फोन हालांकि गांवों में पहुंच के लिहाज से बेसिक की अपेक्षा बहुत पीछे हैं

किंतु प्रभाव की दृष्टि से वही दूसरे स्थान पर है। उसके और बेसिक फोन की प्रभाव स्थिति में भी दस गुना से अधिक का अंतर है। जिन ग्रामीण क्षेत्रों में दूरभाषात्मक कोटि के संचार माध्यमों की पहुंच है, उनमें से मात्र 07.61 प्रतिशत क्षेत्रों में ही सेलफोनों का प्रभाव है। यह स्थिति मार्च 2003 तक की है।

देश के कुछ ही गांवों में सेलफोनों की पहुंच है। उनमें भी अधिकतर वहीं गांव हैं जो नगरों–महानगरों के आसपास हैं। अधिकांश गांवों में तो सेलफोनों के टॉवर तक नहीं हैं। वैसे, ग्रामीण विकास में उनकी भूमिका उतनी ही कारगर हो सकती है जितनी कि बेसिक फोनों की। सेलफोन अभी अपने प्रारंभिक चरण में हैं अतः उम्मीद की जानी चाहिए कि गांवों में उनका विस्तार भविष्य में बढ़ेगा और वे भी ग्रामीण विकास में सहायक हो सकेंगे। जो ग्रामीण दूरभाषात्मक कोटि के संचार माध्यमों को ग्रामीण विकास के लिए उपयोगी मानते हैं, उनमें से मार्च 2003 तक की स्थिति के अनुसार 10.38 प्रतिशत लोग सेलफोनों को भी अपनी रुचियों में शुमार करते हैं। इसमें बच्चों व किशोरों की संख्या 78.41 प्रतिशत सर्वाधिक है जबकि महिलाओं की सबसे कम 00.16 प्रतिशत। पुरुषों का हिस्सा इस मामले में 21.43 प्रतिशत है।

गांवों में प्रसार और प्रभाव की दृष्टि से स्थानीय बेतार लूप (डब्ल्यूएलएल) तकनीक वाले फोनों की स्थिति सेलफोनों से भी बुरी है। जिन ग्रामीण क्षेत्रों में दूरभाषात्मक कोटि के संचार माध्यमों की पहुंच है, उनमें से मार्च 2003 तक की स्थिति के अनुसार मात्र 06.43 प्रतिशत क्षेत्रों में ही ऐसे फोनों का प्रभाव है।

फैक्स, टेलेक्स, टेलीप्रिंटर जैसे माध्यम प्रकारों का प्रसार और प्रभाव गांवों में नगण्य–सा है। गांवों में वे जहां लगे भी हैं, वे सभी जगहें उन कारोबारियों से ताल्लुक रखती हैं जो गांव में अपना केंद्र बनाकर ग्रामीण उत्पादों का विपणन करते हैं। ग्रामीण विकास में उनका योगदान भी बस इतना ही है कि उनके जरिए उत्पाद विपणन में सहायता मिलती है।

इंटरनेट संबंधी संचार माध्यम

संचार माध्यमों की यह अपेक्षाकृत नई कोटि है। देश के गांवों में इसके पांव भी अभी ठीक से पसर नहीं पाए हैं लेकिन इसकी क्षमता को देखते हुए स्पष्ट ही कयास लगाया जा सकता है कि गांवों में इसकी पहुंच के बाद से गांवों का नक्शा ही बदल जाएगा। ग्रामीण जनजीवन का लगभग हर पक्ष और ग्रामीण विकास का हर प्रकल्प आने वाले दिनों में इंटरनेट से न सिर्फ गति पाएगा बल्कि शेष दुनिया के अनुभवों से लाभान्वित भी हो सकेगा। कृषि संबंधी जानकारी से लेकर, जनस्वास्थ्य, स्वच्छता, साक्षरता, फसलों के उचित मूल्य, उत्पाद विपणन, महिला विकास, पर्यावरण संरक्षा, वानिकी आदि तमाम परिप्रेक्ष्यों में इस संचार माध्यम के जरिए दिशा मिलने की गुंजाइश है।

देश के बहुसंख्य गांवों में तो नहीं, किंतु अनेक जगहों पर इंटरनेट का प्रयोग शुरू भी हो गया है जिसके अपेक्षित परिणाम सामने आ रहे हैं। तमिलनाडु के अरागुंडा गांव में इंटरनेट के जरिए ही आम ग्रामीण अब आला चिकित्सा सुविधाएं हासिल कर रहे हैं। झांसी (उत्तर प्रदेश) के पुनावली कलां गांव में भी लोग इंटरनेट के जरिए ही अब अपने दुग्ध उत्पादों को उचित मूल्य पर बेच रहे हैं और बिचौलियों के शिकंजे के बाहर आ सके हैं। भटिंडा (पंजाब) तथा वायनाड (केरल) के कई गांव भी अब इंटरनेट से प्राप्त जानकारियों के बूते अपना नक्शा बदल रहे हैं।

ग्रामीण विकास में अतिशय सहायक होने के कारण इंटरनेट से ग्रामीणजन न केवल प्रभावित बल्कि बहुत आशान्वित भी हैं।

सीडी आधारित संचार माध्यम

इस कोटि का प्रादुर्भाव कम्प्यूटर के चलन

इंटरनेट के जरिए होता है जिस गांव में अब इलाज

आंध्र प्रदेश का एक छोटा–सा गांव है अरागुंडा। देश के हजारों अन्य गांवों की तरह ही है यह गांव भी–वैसे ही खेत, वैसे ही खलिहान, पानी की वैसी ही किल्लत, सड़कें भी वैसी ही जराजीर्ण, वैसा ही रहन–सहन, वैसी ही बीमारियां। लेकिन और गांवों से अरागुंडा इस लिहाज से अलग है कि यहां के आम ग्रामीणों को अपने किसी भी रोग के इलाज के लिए अब न तो प्राथमिक अस्पताल में लाइन लगानी पड़ती है और न डॉक्टर साहब का मूड जोहना पड़ता है बल्कि अपने गांव में बैठे–बैठे ही उन्हें वे तमाम चिकित्सकीय सुविधाएं पलभर में मिल जाती हैं जो महानगरों में भी खासे खर्च के बावजूद मुश्किल से मिल पाती हैं।

ऐसा अजूबा संभव हुआ है अरागुंडा में इंटरनेट के जरिए। वहां 50 मरीजों की क्षमता वाला एक ऐसा अस्पताल खोला गया है जिसका संपर्क इंटरनेट के जरिए दूसरी ओर हैदराबाद स्थित एक नामी और सुविधा–संपन्न अस्पताल से जुड़ा हुआ है। साथ ही, हैदराबाद वाले अस्पताल का इंटरनेटी संपर्क देश के विभिन्न महानगरों में स्थापित विभिन्न चुनिंदा अस्पतालों और उनसे संबद्ध विशेषज्ञों से जुड़ा हुआ है। इस तरह प्रत्यक्ष न सही, किंतु अप्रत्यक्ष रूप में विभिन्न महानगरों के अनेक आला विशेषज्ञ अब अरागुंडा के संपर्क में हैं।

अरागुंडा के इस अस्पताल में सर्दी, जुकाम, बुखार, दस्त, पीलिया जैसी आम बीमारियों के साथ ही साथ दिल, दिमाग, फेफड़े, गुर्दे आदि से संबंधित जटिल व्याधियों का भी सफलतापूर्वक इलाज किया जा रहा है। रोगियों की क्लिनिकल जांच आदि के सामान्य विवरणों से लेकर ईसीजी, सोनोग्राफी, रंगीन एक्सरे, एमआरआई जैसी विशिष्ट रिपोर्टों तक को अरागुंडा के इस अस्पताल से इंटरनेट के जरिए हैदराबाद वाले अस्पताल को भेज दिया जाता है। हैदराबाद वाले अस्पताल के डॉक्टर इन रिपोर्टों के आधार पर निदान, इलाज या दवा का निर्धारण कर देते हैं और जरूरत पड़ने पर अपने संजाल के अन्य विशेषज्ञों की भी राय लेते हैं। फिर इंटरनेट के जरिए ही सभी डाक्टरी परामर्शों को वापस अरागुंडा भेज दिया जाता है, जो हाथों–हाथ संबंधित रोगी को उपलब्ध हो जाता है।

के बाद हुआ है। कम्प्यूटर का ही प्रसार अभी देश के बहुसंख्य गांवों तक नहीं हो पाया है लिहाजा सीडी की पहुंच भी ग्रामीण क्षेत्रों में अभी कम है। अब हालांकि ऐसी सीडी भी बनने लगी हैं जिन्हें चलाने के लिए कम्प्यूटर की जरूरत नहीं पड़ती, फिर भी सीडी अभी ग्रामीण क्षेत्रों में आम प्रचलित नहीं हो पाई है।

ऐसी सीडी सर्वाधिक लोकप्रिय हैं जो पाठ्य, श्रव्य व दृश्य तीनों ही विधाओं को स्वयं में समेटे रहती है। जिन ग्रामीण क्षेत्रों तक सीडी आधारित संचार माध्यमों की पहुंच है, उनमें से मार्च 2003 तक की स्थिति के अनुसार 30.57 प्रतिशत क्षेत्रों में ऐसी ही सीडी का प्रभाव है। इनमें अधिकतर फिल्मों से संबंधित हैं तथा कुछ वीडियो अलबमों से संबद्ध। इस तरह की सीडी में मनोरंजन के चालू तरीके पर ही ज्यादा जोर रहता है। ग्रामीण विकास के विभिन्न प्रकल्पों में उनसे कोई खास मदद नहीं मिलती। कुछ ऐसी सीडी जरूर उपलब्ध हैं जिनमें कृषि के तरीकों आदि की चर्चा की गई है।

एनिमेटेड फिल्मों आदि की सीडी भी प्रचलित हैं। आमतौर पर इन्हें कार्टून फिल्मों की सीडी कहा जाता है। जिन ग्रामीण क्षेत्रों में सीडी आधारित संचार माध्यमों की पहुंच है, उनमें से मार्च 2003 तक की स्थिति के अनुसार 25.38 प्रतिशत क्षेत्रों में इनका प्रभाव आंका गया है। ऐसी सीडियों का मौजूदास्वरूप ग्रामीण विकास में कतई योगदान नहीं करता।

संदर्भ सूची

1. ज्ञानप्रकाश सी. चापेकर; दि एप्लीकेशंस ऑफ मीडिया
2. डेविड रिजले; ए कम्प्रिहेंसिव हिस्ट्री ऑफ मीडिया
3. सुधीर पांडुरंग लेल; इंडियन विलेजेज़ : ए साइकोलॉजिकल एनालिसिस
4. गिरिजाशंकर सिंह; परंपरागत संचार माध्यम : भारतीय एवं पाश्चात्य संदर्भ
5. कृष्ण कल्कि; दि प्रिमिटिव मीडिया; दि लाइट ऑन हिस्ट्री; अप्रैल–जून, 1987
6. सर्वेक्षण रिपोर्ट (2002); सेंटर फॉर स्टडीज़ इन रूरल डेवलपमेंट
7. राष्ट्रीय सर्वेक्षण रिपोर्ट (2003); इंस्टीट्यूट ऑफ रिसर्च इन मास मीडिया
8. सर्वेक्षण रिपोर्ट (2003); सेंटर फॉर एकेडमिक रिसर्च
9. पी. मैथाली; फैक्ट्स अबाउट इंडिया
10. सर्वेक्षण रिपोर्ट (2002); फोक आर्ट्स फाउंडेशन
11. सर्वेक्षण रिपोर्ट (2003); कबीर प्रतिष्ठान भारत
12. सर्वेक्षण रिपोर्ट (2003); कलाकार समूह
13. सर्वेक्षण रिपोर्ट (2003); सेंटर फॉर रिसर्च इन टेलीकॉम टेक्नोलॉजीज़
14. सर्वेक्षण रिपोर्ट (2003); इनोवेटिव मीडिया फार्म्स
15. रिपोर्ट, नमूना सर्वेक्षण (2003); भंडारकर सेंटर फॉर रूरल स्टडीज़
16. नमूना सर्वेक्षण रिपोर्ट (2003); अनुबंध मीडिया नेटवर्क
17. रिपोर्ट, प्रतिरूप सर्वेक्षण (2003); ट्रस्ट फॉर प्रोमोटिंग रीडिंग हैबिट्स
18. नमूना सर्वेक्षण रिपोर्ट (2002); इंडियन इंस्टीट्यूट फॉर एडवरटाइजिंग
19. सर्वेक्षण रिपोर्ट (2002); मगनभाई इंस्टीट्यूट फॉर आर्ट फार्म्स
20. रिपोर्ट, नमूना सर्वेक्षण (2003); ट्रेडिशनल मीडिया रिसर्च इंस्टीट्यूट
21. आर. एस. सी. अभ्यंकर; ट्रेडिशनल थिएटर इन इंडिया
22. रिपोर्ट, नमूना सर्वेक्षण (2003); ऋषिकुल ट्रस्ट
23. श्याम परमार; ट्रेडिशनल फोक मीडिया
24. के. डी. उपाध्याय; लय एंड ताल इन द फोक म्यूजिक ऑफ उत्तर प्रदेश; संगीत नाटक अकादमी जर्नल (खंड 32) ❑

डी. 54, तीसरा तल,
मेन मार्केट शकरपुर, दिल्ली–110092

RAO IAS

THE MOST POPULAR INSTITUTE FOR IAS AND PCS

14/1, स्टैनली रोड, (लोक सेवा आयोग के सामने), इलाहाबाद फोन: 2601624

पत्राचार कोर्स एवं क्लास कोचिंग, छात्रावास उपलब्ध

हिन्दी माध्यम

IAS/PCS (Pre & Main) बैच 6 अक्टूबर से

भूगोल विजय कुमार मिश्र

वैकल्पिक विषय (Pre & Main) द्वारा

- नवीनतम परीक्षा प्रणाली के अनुसार विषय की तैयारी • 500 से अधिक मानचित्रों का अभ्यास
- प्रतिदिन होमवर्क तथा उनका सूक्ष्मता से परीक्षण • सम्पूर्ण पाठ्यक्रम पर भरपूर अध्ययन सामग्री
- पांच महीने का गहन शिक्षण एवं प्रशिक्षण • अभ्यास हेतु वस्तुनिष्ठ प्रश्नावलियाँ, नियमित टेस्ट
- सर्वोत्तम शिक्षण परिवेश

विषय उपलब्ध :- सामान्य अध्ययन और निबन्ध, इतिहास, लोक प्रशासन, राजनीति शास्त्र, समाज शास्त्र,

विवरण पुस्तिका हेतु रू० 50/- M.O. से भेजें

कुरुक्षेत्र

SATYA

परंपरागत संचार माध्यम : ग्रामीण विकास में भूमिका और प्रासंगिकता

डा. रूपसी तिवारी
बी. पी. सिंह
डा. राहुल तिवारी

भारत में ग्रामीण जनता तक विकास संबंधी संदेश पहुंचाने में परंपरागत संचार माध्यम अपनी विशिष्ट भूमिका निभा रहे हैं और उन्होंने अतीत में लोगों के दृष्टिकोण को खासा प्रभावित किया है। जहां सुविधाएं उपलब्ध हैं, वहां आधुनिक संचार माध्यमों का प्रभावशाली ढंग से इस्तेमाल किया जा सकता है, खासतौर पर ज्ञान की वृद्धि के लिए। पर जहां तक ग्रामीण श्रोताओं के नजरिए में बदलाव लाने का सवाल है, हमें परंपरागत संचार माध्यमों पर ही निर्भर रहना होगा क्योंकि ग्रामीण जनों को इन्हीं माध्यमों में अपनी छवि नजर आती है और ये उन्हें अपने से लगते हैं।

जैसाकि नाम से ही विदित है, परंपरागत संचार माध्यम वे माध्यम हैं जिनमें समाज की परंपराएं, संस्कृति और मूल्य समाहित हैं। ग्रामीणों के दिलों के करीब होने के कारण ये लोकसंचार माध्यम भी कहलाते हैं। ये माध्यम अनूठी प्रकृति के होते हैं क्योंकि ये ग्रामीण जनता की रोजमर्रा की जीवनशैली से मेल खाते हैं। इनकी एक और विशेषता है कि कोई व्याकरण या साहित्य न होने के बावजूद मौखिक या क्रियागत स्रोतों के माध्यम से इनका वर्धन होता है।

भारतीय समाज के पास अपनी लोक–कलाओं, लोकनृत्यों, लोककथाओं, महाकाव्यों, आल्हाओं और नाटकों का विपुल भंडार है, जिसका इस्तेमाल ग्रामीण जनता को शिक्षित करने के लिए किया जा सकता है (गौड़, पालीवाल, पी.)। हमारे देश की सबसे लोकप्रिय परंपरागत कलाशैलियां हैं – तमाशा और पोवाड़ा (महाराष्ट्र), नौटंकी (उत्तर प्रदेश), यक्षगान (कर्नाटक), तेरूकुत (तमिलनाडु), जात्रा (पश्चिम बंगाल), भवाई (गुजरात), कीर्तन, आल्हा के विविध रूप, लोकसंगीत, पहेलियां, लोककथाएं और कठपुतली का खेल।

सूचना क्रांति और परंपरागत संचार माध्यम

परंपरागत संचार माध्यम एक लंबे समय से आम जनता के लिए लोकप्रिय मनोरंजन का स्रोत रहे हैं तथा उन्होंने मनोरंजन के साथ–साथ

निर्देश तथा सूचना देने का काम भी किया है। भारत में ग्रामीण जनता तक विकास संबंधी संदेश पहुंचाने में ये माध्यम अपनी विशिष्ट भूमिका निभा रहे हैं और उन्होंने अतीत में लोगों के नजरिए को खासा प्रभावित किया है। पर हाल ही में विकास कार्यों में जुटे पदाधिकारियों ने अपना ध्यान तेजी से उभर रहे इलेक्ट्रानिक संचार माध्यमों की ओर लगा दिया है। उनके लिए संचार के ये नए इलेक्ट्रानिक माध्यम अनोखा आकर्षण हैं, क्योंकि उन्हें लगता है कि इनके द्वारा कम समय और कम लागत में वे देश के चप्पे–चप्पे में अपना संदेश पहुंचा सकते हैं। इन आधुनिक संचार माध्यमों की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताएं हैं, जैसे तुरंत संचारण, व्यापक विस्तार, विश्वव्यापी पहुंच आदि, जिन्हें रेखाचित्र–1 में दिखाया गया है। ये विशेषताएं विकास कार्यों में जुटे कर्मचारियों, व्यावसायिक उद्यमियों, शिक्षाविदों, राजनीतिज्ञों तथा शहरी जन–समुदाय को खासा प्रभावित करती हैं।

आधुनिक संचार माध्यमों की महत्वपूर्ण विशेषताओं (रेखाचित्र–1) पर समीक्षात्मक दृष्टि डालने पर यह बात सामने आती है कि लगभग सभी नए संचार माध्यमों को बिजली, कम्प्यूटर सुविधा, इंटरनेट कनेक्शन, टेलीफोन कनेक्शन जैसी तमाम बुनियादी सुविधाओं की आवश्यकता पड़ती है जबकि हमारे देश में आज भी ऐसे हजारों गांव हैं जहां कम्प्यूटर, इंटरनेट या ई–मेल सेवाएं तो दूर की बात, बिजली या टेलीफोन कनेक्शन तक नहीं हैं।

हमारे देश में साक्षरता का स्तर भी बहुत नीचे है, जबकि ये भी अधिकतर इलेक्ट्रानिक संचार माध्यमों के लिए एक बुनियादी जरूरत है। कोठारी और ताकेड़ा (2000) के अनुसार साक्षरता 'साफ्ट' बुनियादी ढांचे का एक नाजुक पहलू है जो सूचना क्रांति का विस्तार और स्वरूप तय करेगा। सहस्राब्दी के इस मोड़ पर, अगर भारत का दूरसंचार बुनियादी ढांचा हाई बैंडविड्थ पर समूचा विस्तार भी चाहता है तो भी साक्षरता और भाषा के अवरोधों के चलते विश्वव्यापी इंटरनेट अपने वेब पर मुश्किल से आबादी का कुछ हिस्साभर शामिल कर सकेगा। देश के केवल आधे बालिग साक्षर हैं और इन साक्षरों में से भी आधे इतने

रेखाचित्र 1 – आधुनिक संचार माध्यमों की महत्वपूर्ण विशेषताएं

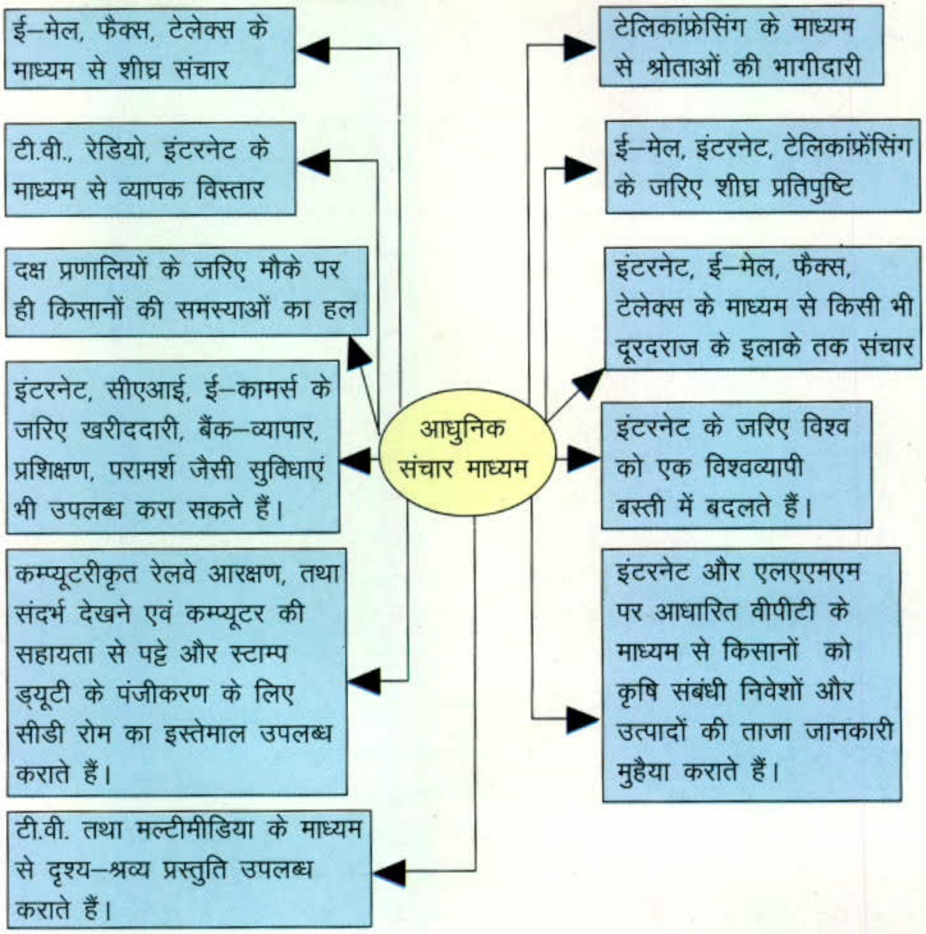

रेखाचित्र 2 – परंपरागत संचार माध्यमों की महत्वपूर्ण विशेषताएं

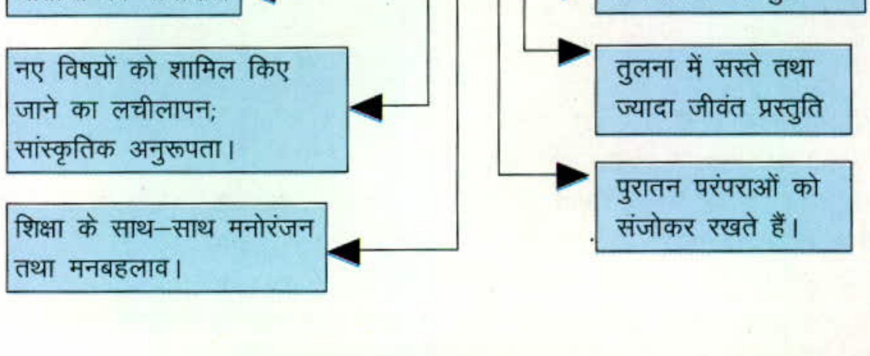

गीत और नाटक प्रभाग

- एक संगठन, जो हर वर्ष देशभर में करीब 40 हजार कार्यक्रम प्रस्तुत करता है जिनके जरिए करीब 10,000 कलाकार देशभर में नियमित रूप से कार्यक्रम प्रस्तुत करते हैं।
- जो महत्वपूर्ण राष्ट्रीय विषयों पर सभी आधुनिक प्रकाश, ध्वनि और मंच तकनीकों का इस्तेमाल करके भव्य ध्वनि एवं प्रकाश कार्यक्रम प्रस्तुत करता है।
- जो देश के लोगों में राष्ट्रीय एकता, सांप्रदायिक सद्‌भाव, स्वतंत्रता आंदोलन, स्वास्थ्य संबंधी मुद्दों, अन्य विकास कार्यक्रमों आदि के बारे में जागरूकता पैदा करता है।
- जो विलुप्त होती जा रही कलाओं के सभी रूपों को संरक्षण प्रदान करता है।

गीत और नाटक प्रभाग की स्थापना आकाशवाणी की एक इकाई के रूप में 1954 में की गई थी। वर्ष 1960 में इसे एक स्वतंत्र मीडिया यूनिट का दर्जा प्रदान किया गया। इसकी स्थापना पंचवर्षीय योजना के लिए समृद्ध जीवंत प्रचार माध्यमों, विशेषकर पारंपरिक और लोकप्रचार माध्यमों के विभिन्न स्वरूपों का प्रयोग करने के उद्देश्य से की गई थी। यह संगठन लोगों के साथ तत्काल तादात्म्य बनाने और नए–नए विचारों को प्रभावशाली ढंग से अपने कार्यक्रमों में समाविष्ट करने की बेहतर स्थिति में है। यह पारंपरिक नाटक, नृत्य नाटिका, लोकगीत, कठपुतली जैसे विभिन्न मंचन स्वरूपों के अतिरिक्त ध्वनि–प्रकाश का उपयोग करके श्रोताओं का ध्यान राष्ट्रीय जीवन और विभिन्न पहलुओं की ओर खींचता है।

पढ़े–लिखे हैं कि पाठ्य–पुस्तकों या इंटरनेट का लाभ उठा सकें।

यह कहने का हमारा तात्पर्य आधुनिक संचार माध्यमों की आलोचना करना कतई नहीं है क्योंकि ये माध्यम हमारा भविष्य हैं। उनमें बहुत संभावना है और वे विकास के वर्तमान दृश्य विधान को प्रभावी ढंग से बदल सकते हैं, पर इस मौके पर विकास कार्यों के लिए पूरी तरह इन संचार माध्यमों पर आश्रित हो जाना ठीक नहीं होगा। फिलहाल, आधुनिक संचार माध्यमों का अधिकांश लाभ शहरी आबादी एवं विशिष्ट ग्रामीण वर्ग, प्रगतिशील किसानों तथा उपनगरीय गांवों के उच्च सामाजिक–आर्थिक श्रेणी वाले गांववासियों को मिल रहा है। गरीब, शोषित तथा भूमिहीन किसान, जिनके पास कुछ एकड़ भूमि और कुछेक पशु हैं और जो मुख्यरूप से ग्रामीण क्षेत्रों में रहते हैं, अभी भी इन संचार माध्यमों का लाभ नहीं उठा पा रहे।

सही मायने में गांवों में संचार व्यवस्था तथा सूचना का अभाव है क्योंकि नए संचार माध्यम ग्रामीण जनता तक पहुंच नहीं पाए हैं और परंपरागत संचार माध्यमों को लेकर विकास कार्यों में जुटी एजेंसियां उदासीन हैं या फिर उन्होंने उन्हें नकार दिया है।

जहां सुविधाएं उपलब्ध हैं, वहां आधुनिक संचार माध्यमों का प्रभावशाली ढंग से इस्तेमाल किया जा सकता है, खासतौर पर ज्ञान की वृद्धि के लिए। पर जहां तक ग्रामीण श्रोताओं के नजरिए में बदलाव लाने का सवाल है, हमें परंपरागत संचार माध्यमों पर ही निर्भर रहना होगा, क्योंकि ग्रामीण जनों को इन्हीं माध्यमों में अपनी छवि नजर आती है और ये उन्हें अपने से लगते हैं। इन संचार माध्यमों में परिवर्तन की क्षमता अधिक है और ये श्रोताओं में स्वाभाविक रुचि पैदा कर देते हैं। स्थानगत आकर्षण, देशज प्रकृति तथा सांस्कृतिक अनुरूपता जैसी (रेखाचित्र–2) कुछ विशेषताओं ने लोकसंचार माध्यमों को ग्रामीण जनता के बीच महत्वपूर्ण, अनूठा और लोकप्रिय बना दिया है।

विकाय कार्यों में परंपरागत संचार माध्यमों के इस्तेमाल के पिछले अनुभव/अनुसंधान

परंपरागत संचार माध्यम एक लंबे अरसे से राष्ट्र के विकास में मदद और मार्गदर्शन करते रहे हैं। ये माध्यम लोक नृत्यों तथा आल्हाओं में लोगों द्वारा आसानी से समझे जा सकने वाले लोकगीतों, स्थानीय मुहावरों और कहावतों का प्रयोग कर आधुनिक संदेश देने की क्षमता रखते हैं।

भारत में स्वतंत्रता संग्राम के दौरान जब संचार माध्यम ब्रिटिश नियंत्रण में थे, तब स्वतंत्रता सेनानियों ने अत्याचारियों का उपहास करने के लिए तमाशा, भवाई तथा नौटंकी जैसे लोकसंचार माध्यमों का इस्तेमाल किया था। (रंगनाथ, 1980)

समकालीन जीवन पर टिप्पणी करने के लिए अन्ना भाऊ साठे, पी. एल. देशपांडे, वसंत सबनिस, वसंत बापट तथा वी. डी. मगुलकर जैसे नाटककारों ने तमाशा के एक प्रकार ढोलकी बारिस का सहारा लिया। उधर तमाशा की नाट्यशैली 'लोकनाट्य' को अनेक सामाजिक और राजनीतिक मामलों पर जनसाधारण की सोच बदलने के लिए काम में लाया गया। हमारी सरकार ने भी परिवार नियोजन के बारे में जनसाधारण को शिक्षित करने के लिए अनेक तमाशा मंडलियों को प्रायोजित किया। (कुमार, केवल, जे. 1981)

अलकाजी और हबीब तनवर सरीखे लोक–रंगशालाकर्मियों के प्रयासों ने अपनी लोक–रंगशालाओं के माध्यम से अनेक शैक्षिक संदेशों का सफलतापूर्वक प्रसार किया। उत्पल दत्त ने राजनीति का पाठ पढ़ाने के लिए अपने नाटकों में जात्रा (पश्चिम बंगाल एवं उड़ीसा की लोक नाट्यकला) शामिल की।

मोतीलाल रे तथा मुकुंददास ने भी राष्ट्रीयता की भावना फैलाने के लिए जात्रा का इस्तेमाल किया। केंद्र एवं राज्य सरकारों ने परिवार नियोजन, विकास संबंधी गतिविधियों, लोकतांत्रिक मूल्यों और राष्ट्रीय एकता के बारे में जनसाधारण को शिक्षित करने के लिए नेशनलिस्ट हरीकथा (कीर्तन का एक प्रकार) का उपयोग किया। आकाशवाणी तथा दूरदर्शन ने कीर्तन को विकास संबंधी संदेश प्रसारित करने का माध्यम बनाया। यूनियन बैंक ऑफ इंडिया तथा जीवन बीमा निगम ने बैंकों में बचत करने तथा एल.आई.सी. पॉलिसियों के प्रति ग्रामीण लोगों की रुचि जगाने के लिए भारतीय कठपुतली के तमाशे का प्रभावी ढंग से इस्तेमाल किया। दिल्ली के निकटवर्ती दो गांवों में कठपुतली के तमाशे और एक वृत्तचित्र के तुलनात्मक

प्रभाव पर भारतीय जनसंचार संस्थान के मार्गदर्शी अध्ययन से यह तथ्य सामने आया कि सस्ता परंपरागत माध्यम होने की वजह से ग्रामीणजन फिल्म के मुकाबले कठपुतली के तमाशे की तरफ ज्यादा संवेदनशील दिखाई दिए। (कुमार, केवल, जे. 1981)

ग्रामीण संचार संस्थान ने राजस्थान के उदयपुर में साक्षरता के प्रति माहौल बनाने का एक अभियान सफलतापूर्वक पूरा किया, जो सूचना प्रसार के लिए लोकसंचार माध्यमों के उपयोग पर आधारित था। समूचे अभियान के लिए सौ कलाकारों को लोकसंचार माध्यमों की विभिन्न शैलियों को संचालित तथा प्रदर्शित करने के लिए आवश्यक संचार विधि तथा कौशल में प्रशिक्षित किया गया। जब पूरा समूह गांव में प्रवेश करता था तो अपने नारों, गानों और नृत्यों द्वारा बहुत आसानी से गांववासियों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लेता था। उन्होंने कठपुतली के तमाशों, नुक्कड़ नाटकों, लोकगीतों और नृत्यों सहित अनेक कार्यक्रम प्रस्तुत किए, जिन्हें साक्षरता की विषय–वस्तु के चारों ओर बुना गया था। समूह ने 756 गांवों की पैदल यात्रा की। अभियान के बाद किए गए सर्वेक्षण से यह उजागर हुआ कि वे साक्षरता के पक्ष में ग्रामीण जनता के नजरिए को बदलने में सफल साबित हुए थे। (गौड़, पालीवाल, पी. 1997)

प्रौद्योगिकी अभिग्रहण प्रक्रिया में लोकसंचार माध्यमों बनाम आधुनिक संचार माध्यमों की भूमिका

हमारे देश में परंपरागत संचार माध्यमों की कोई कमी नहीं है। लगभग प्रत्येक राज्य, जिले और गांव के अपने लोकसंचार माध्यम हैं और अधिकतर समृद्ध और विस्मयकारी हैं। ये माध्यम लोकप्रिय भाषाओं और वहां के मूल स्थान की स्थानीय बोली का ही इस्तेमाल करते हैं। प्रत्येक माध्यम का अपना स्वरूप, ढंग और उपयोगिता है। अब यदि हम प्रौद्योगिकी अभिग्रहण प्रक्रिया में जागरूकता, ज्ञान, दृष्टिकोण और मनोगत मूल्यांकन क्रिया की दृष्टि से सर्वाधिक लोकप्रिय परंपरागत

संचार माध्यमों की विशेषताओं का समीक्षात्मक विश्लेषण करें तो पाएंगे कि उनमें से अधिकतर एक विषय के बारे में संपूर्ण ज्ञान देने तथा लोगों को जागरूक करने के तो अच्छे स्रोत हैं, पर उनके द्वारा दी जाने वाली जानकारी/ज्ञान मध्यम स्तर का होता है। दूसरी तरफ, आधुनिक संचार माध्यम किसी विषय की संपूर्ण जानकारी देने और जागरूकता पैदा करने के तो अच्छे स्रोत होते हैं, पर श्रोताओं के दृष्टिकोण के स्तर में बदलाव लाने में बहुत कम उपयोगी हैं हालांकि ज्यादातर प्रसारित संदेशों के मनोगत मूल्यांकन का मौका देते हैं।

नए युग के लोकसंचार माध्यमों की प्रासंगिकता

विकास के लिए लोकसंचार माध्यमों के उपयोग के हमारे पिछले अनुभव और शोध यह साबित करते हैं कि इन माध्यमों में लोगों को शिक्षित करने और उनके दृष्टिकोण को प्रभावित करने की असीम क्षमता है। अनेक राजनीतिक नेताओं, समाज सुधारकों, राज्य एवं केंद्र सरकारों, गैर–सरकारी संगठनों, विकास कार्यों में जुटी एजेंसियों तथा अनुसंधान संस्थानों ने अनेक सामाजिक मुद्दों के बारे में लोगों को जागरूक करने तथा उन्हें कार्यवाही करने को प्रेरित करने के लिए इन लोकसंचार माध्यमों का सफलतापूर्वक इस्तेमाल किया है। पहाद, ए. (2000) के अनुसार, "यदि लोगों के जीवन में सामाजिक बदलाव लाने के लिए संचार का सही मायने में उपयोग करना है तो उसका आधार समुदाय की मान्यताओं और मूल्यों पर टिका होना चाहिए। साथ ही वह सम्मानीय और विश्वसनीय होना चाहिए। लोकसंचार माध्यम उपरोक्त मापदंडों पर खरे उतरते हैं।"

लोककला, शैलियां, नए विचार और सूचनाएं देने के साथ–साथ मनोरंजन और मनबहलाव का भी साधन हैं। सोंढी, के. (1980) के अनुसार, "लोक संसार में शिक्षा के बिल्कुल अलग ही मायने हैं। खुशी तथा गम, पूर्व विचारों और उम्मीदों तथा प्यार एवं प्रमोद के सहारे हम अपने आप को देखते हैं और पहचानते हैं अपनी कमजोरियां। तब शिक्षा ज्ञान अर्जित

करने का माध्यम नजर आती है, कुछ पा लेने का जरिया नहीं।"

देवदास (1978) ने प्रभावशाली संचार के लिए परंपरागत संचार माध्यमों के उपयोग पर बल दिया, "गृह विज्ञान पढ़ाने के लिए माध्यमिक स्कूलों में अनेक परंपरागत तरीके इस्तेमाल में लाए जा सकते हैं। इनमें कथा वाचन, लोकगीत और नृत्यों में असाधारण क्षमता है क्योंकि उनके द्वारा बहुत रुचिकर और प्रभावशाली तरीके से साक्षरता को बढ़ाया जा सकता है।"

श्राम (1961) ने भी इस बात पर बल दिया कि आर्थिक और सामाजिक विकास के लिए जनसंचार माध्यमों का स्वरूप जितना स्थानीय हो सके, उतना बेहतर है। कार्यक्रमों की उत्पत्ति उसके श्रोताओं के बीच से ही होनी चाहिए और वे उन लोगों द्वारा तैयार किए जाने चाहिए, जिन्हें उस संस्कृति की समझ हो, जिससे उन्हें संवाद करना है।

ऊपर उद्धृत किए गए सभी लेखकों ने इस बात को जोर देकर कहा कि ग्रामीण श्रोताओं के लिए लोकसंचार माध्यम या परंपरागत संचार माध्यम सबसे ज्यादा उपयुक्त माध्यम हैं। वर्तमान युग या नई सहस्राब्दी में भी, इन माध्यमों के महत्व पर कोई सवालिया निशान नहीं लगाया जा सकता। सूचना क्रांति हमें हाईटैक संचार उपकरणों और कम्प्यूटर आधारित सूचना प्रणाली जैसे इंटरनेट, ई–मेल, दक्ष प्रणाली, सी.डी.रोम, साइबर कैफे और विश्वव्यापी बस्ती की परिकल्पना के बीच ले आई है, पर केवल हमारे ही देश में सूचना क्रांति का अब जाकर प्रवेश हुआ है और वह भी अधिकतर महानगरों, बड़े शहरों, नगरीय और कुछेक अंतर्नगरीय इलाकों में। अभी इसे देश के एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैलने में बहुत समय लगेगा। इसके कारण हैं – लंबी दूरियां, प्रौद्योगिकी के लिए जरूरी उपयुक्त पक्के बुनियादी ढांचे की कमी, साक्षरता का निचला स्तर और भाषायी अवरोध। तब तक हमें ग्रामीण जनता तक सूचना का प्रसार करने के लिए परंपरागत संचार माध्यमों पर ही निर्भर रहना होगा। यदि पचास साल या इसके करीब, लोगों द्वारा नए संचार उपकरणों को पूरी तरह आत्मसात कर भी लिया गया, तब भी हमें अपने इन माध्यमों की आवश्यकता रहेगी, क्योंकि ये हमारी सदियों पुरानी परंपरा और संस्कृति का हिस्सा है और ग्रामीण जनता में नए ज्ञान का प्रसार करने तथा उनके दृष्टिकोण को बदलने में ज्यादा प्रभावी साबित हो सकते हैं।

दुबे, एस. सी. के अनुसार "विकासशील देशों में आपसी संचार के लिए नई प्रौद्योगिकी की ओर आकर्षित होने तथा परंपरागत तरीकों की उपेक्षा करने की दुर्भाग्यपूर्ण प्रवृत्ति है। संचार माध्यमों के पश्चिमी तरीके भारत जैसे देश की परिस्थिति के साथ मेल नहीं खाते। इसलिए वांछित प्रभाव पैदा करने के लिए परंपरागत तथा आधुनिक मॉडल्स का सही 'मिश्रण' पता लगाने के अनवरत् प्रयास जारी रखने होंगे।" (कुमार केवल, जे. 1981)

इस तरह यह स्पष्ट है कि हमारे परंपरागत संचार माध्यम न केवल आधुनिक संचार माध्यमों जितने महत्वपूर्ण हैं बल्कि परंपरागत माध्यमों के कुछ अतिरिक्त लाभ हैं जैसे उनकी स्थानगत प्रकृति, अपनापन, श्रोताओं से अंतरंगता आदि, जो उन्हें और भी अधिक उपयोगी बनाते हैं। इसलिए विकास कार्यों में जुटी एजेंसियों को चाहिए कि वे ग्रामीण जनता के बीच किसी भी प्रकार के विकास कार्य या प्रौद्योगिकी प्रसारण प्रक्रिया के लिए आधुनिक संचार माध्यमों के साथ–साथ परंपरागत संचार माध्यमों के उपयोग पर विचार करें।

निष्कर्ष

परंपरागत संचार माध्यमों ने देश की विकास प्रक्रिया में बहुत योगदान दिया है। उनका योगदान विकास के लिए किए जाने वाले समाज सुधार, शिक्षा, परिवार नियोजन, राजनीतिक प्रचार, बिक्री बढ़ाने तथा राष्ट्रीय एकता के क्षेत्र में उल्लेखनीय है।

ये संचार माध्यम काफी लंबे समय से नई पीढ़ी में हमारी परंपरा, संस्कृति और नैतिक मूल्यों को स्थापित करने की कोशिश करते रहे हैं। इन संचार माध्यमों में ज्यादा सांस्कृतिक साम्य है, इसलिए इन माध्यमों से दिया गया संदेश ग्रामीण श्रोताओं द्वारा अधिक आसानी से स्वीकार और आत्मसात कर लिया जाता है। इसके अलावा साक्षरता, परिवार नियोजन तथा विभिन्न सामाजिक बुराइयों (दहेज, बाल विवाह, सती प्रथा आदि) के प्रति लोगों का नजरिया बदलने के लिए भी इन संचार माध्यमों का अतीत में सफलतापूर्वक इस्तेमाल किया गया, जिन्हें बदलना वैसे बहुत कठिन था। इससे भी यह साबित होता है कि ये माध्यम जनसमुदाय के दृष्टिकोण को प्रभावित करने या बदलने में कितने कारगर हैं।

इसलिए यह जरूरी है कि हम आधुनिक संचार माध्यमों के साथ–साथ, जहां तक संभव हो, परंपरागत संचार माध्यमों का लगातार और सावधानी से इस्तेमाल करते हुए उन्हें जीवित रखें। ये परंपरागत संचार माध्यम केवल उन विकास संबंधी गतिविधियों में ही सहायता नहीं करेंगे, जिनमें ग्रामीण लोगों के साथ बेहद प्रभावी घनिष्ठता की आवश्यकता होती है, बल्कि अगली पीढ़ी तक हमारी समृद्ध संस्कृति, परंपरा और मूल्यों के संरक्षण और संप्रेषण में भी मदद देंगे।

(डॉ. रूपसी तिवारी और बी.पी. सिंह डिवीज़न ऑफ एक्सटेंशन एजुकेशन, भारतीय पशुचिकित्सा अनुसंधान संस्थान, इज्जतनगर, बरेली, उ.प्र. में वैज्ञानिक तथा डॉ. राहुल तिवारी इसी संस्थान के पूर्व शोधार्थी रहे हैं)

(कुरुक्षेत्र (अंग्रेजी) से साभार)

संदर्भ

- दास, आशा, ए. (1997); इफेक्टिवनेस ऑफ फोक मीडिया इन मास कम्युनिकेशन; कम्युनिकेटर, अप्रैल–जून; पृ.सं. : 31–32
- पहाद, अंजलि (2000)। फोक मीडिया फॉर डेवलपमेंट कम्युनिकेशन; कम्युनिकेटर, अक्तू.–दिस.; पृ.सं. : 34–35
- गौड़, पालीवाल, पी. (1997)। रियलाइजिंग दि पोटेंशियल ऑफ ट्रेडिशनल मीडिया; कम्युनिकेटर; जन.–मार्च; पृ.सं. : 32
- कुमार, केवल, जे. (1981); मास कम्युनिकेशन इन इंडिया; जैको पब्लिशिंग; हाउस, दिल्ली;
- सोंढी, के. (1980); प्रॉब्लम्स ऑफ कम्युनिकेशन इन डेवलपिंग कंट्रीज। विज़न बुक्स, नई दिल्ली।
- कोठारी, बी. और ताकेड़ा, जे. (2000); सेम लैंग्वेज सबटाइटलिंग फॉर लिटरेसी : स्मॉल चेंज फॉर कोलोनल गेन्स।
- भटनागर, एस. और शवारे, आर. की पुस्तक इनफॉरमेशन एंड कम्युनिकेशन टेक्नोलॉजी इन डेवलपमेंट, सेज पब्लिकेशन इंडिया प्रा. लि., नई दिल्ली।
- देवदास, राजारम्माल, पी. (1978)। मैथड्स ऑफ टीचिंग होमसाइंस; एनसीईआरटी पब्लिकेशंस, नई दिल्ली।
- रंगनाथ, एच.के. (1980); यूज़िंग फोक एंटरटेनमेंट टू प्रोमोट नेशनल डेवलपमेंट, पेरिस, यूनेस्को।
- श्राम, विल्बर (1961); मास मीडिया एंड नेशनल डेवलपमेंट, स्टेनफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

"मनुष्य यंत्र में यह विशेषता है कि उसमें चैतन्य है। मनुष्य अपने दो हाथ और दस उंगलियों से अपनी बुद्धि के जोर पर जो चमत्कार कर सकता है, वह जड़ यंत्र नहीं कर सकते।"

महात्मा गांधी

ग्रामीण विकास और पत्रकारिता

☞ नील वाचस्पति

भारत में आज से करीब दो सौ वर्ष पहले 1780 में अपनी स्थापना वर्ष से लेकर अब तक पत्र–पत्रिकाएं क्या सही अर्थों में देश के करीब छह लाख गांवों में बसी जनता के साथ अपना अंतरंग सम्बंध स्थापित कर पाई हैं? क्या प्रेस अपनी भूमिका के साथ न्याय कर पा रहा है? इसी की पड़ताल करना लेख का उद्देश्य है।

भारतीय पत्रकारिता लगभग 200 वर्ष का लंबा सफर तय कर चुकी है। कोलकाता से जनवरी 1780 में प्रकाशित **बंगाल गजट** देश का पहला समाचार–पत्र माना जाता है हालांकि देश का पहला हिंदी अखबार लगभग 50 वर्ष बाद मई, 1826 में निकला। भारत का यह पहला हिंदी अखबार डेढ़ साल में ही बंद हो गया किंतु इस पत्र ने हिंदी पत्रकारिता की जो नींव रखी, वो दिन–पर–दिन मजबूत होती चली गई। किंतु आज तक सही मायने में प्रेस भारतीय ग्रामीण जनता की आवाज नहीं बन पाई। आज भी ग्रामीण विकास के मुद्दे हमारे राष्ट्रीय पत्र–पत्रिकाओं में शीर्ष स्थान नहीं पाते जिसका बड़ा कारण अधिकतर ग्रामीण इलाकों में प्रमुख समाचार–पत्रों की पहुंच काफी कम होना रहा है।

स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व इन्हीं पत्र–पत्रिकाओं के बूते विशाल भारतीय जनसमुदाय के मानस को झकझोरा गया था। उस दौरान अखबारों की महत्वपूर्ण भूमिका को अकबर इलाहाबादी की इन लोकप्रिय पंक्तियों से समझा जा सकता है :

"खींचो न कमानों को, न तलवार निकालो
जब तोप मुकाबिल हो तो अखबार निकालो।"

शायद अखबार की इसी ताकत का ईल्म राष्ट्रवादियों को हो गया था इसीलिए उन्होंने अखबार निकालना या अखबारों में लेख लिखने को स्वतंत्रता आंदोलन का अंग माना। बाल गंगाधर तिलक के 'केसरी' और 'मराठा' अखबार, अमर शहीद गणेश शंकर विद्यार्थी का 'प्रताप' और महात्मा गांधी के 'हरिजन', 'यंगइंडिया', इंडियन ओपिनियन आदि समाचार–पत्रों ने लोगों के दिलों में आजादी की जो मशाल जलाई, उसके बलबूते ही हम अंग्रेजों को भारत छोड़ने पर मजबूर कर पाए। भारतेंदु हरिश्चंद्र, प्रेमचंद, प्रताप नारायण मिश्र और माखनलाल चतुर्वेदी सरीखे विद्वानों के योगदान को भी भूलाया नहीं जा सकता। सच्चे अर्थों में सामाजिक उद्देश्यों के लिए समर्पित प्रताप, मतवाला, अर्जुन, स्वतंत्र, आज, नवयुग, विशाल भारत तथा उजाला जैसे समाचार–पत्र कड़े विरोध और दमन के बावजूद बिना कोई समझौता किए अपने अस्तित्व के लिए लड़ते रहे और अपने उद्देश्य से विचलित नहीं हुए।

ये तो आजादी से पहले का परिदृश्य था। आजादी के बाद व्यावसायिकता की प्रवृत्ति प्रेस पर इस कदर हावी रही है कि पत्रकारिता की मूल भावना को नकार कर केवल बिक्री के उद्देश्य से ही पत्र–पत्रिकाओं का उत्पादन करने और उसे बाजार में खपाने पर ही उद्योगपतियों का सारा ध्यान केंद्रित है। जाहिर है नौकरी के तौर पर पत्रकारिता को अपना व्यवसाय चुनने वाले पत्रकारों को बाजार में बिकने वाली गर्म–गर्म खबरें ही ढूंढ कर लानी होंगी, तभी वे खुद प्रतिस्पर्धा में टिक सकते हैं।

महात्मा गांधी ने समाचार–पत्रों की भूमिका पर टिप्पणी करते हुए कहा था – **"समाचार–पत्र सेवाभाव से ही चलाने चाहिए। समाचार–पत्र एक जबर्दस्त शक्ति है किंतु जिस प्रकार निरंकुश पानी का प्रवाह गांव के गांव डुबो देता है और फसल को नष्ट कर देता है, उसी प्रकार निरंकुश कलम का प्रवाह भी नाश की सृष्टि करता है।"** किंतु ऐसा नहीं है कि आजादी से पूर्व नकारात्मक भूमिका निभाने वाले समाचार–पत्र मौजूद नहीं थे। तब भी समाज में सांप्रदायिकता का जहर फैलाने वाले तथा किसी सामाजिक उद्देश्य से दूर पत्र मौजूद थे। गांधीजी व्यावसायिकता के उद्देश्य से चलाए जा रहे अखबारों के विरुद्ध थे। एक जगह वह कहते हैं "मैं अवश्य ही यह मानता हूं कि अनीति से भरे हुए विज्ञापनों की मदद से समाचार–पत्रों को चलाना उचित नहीं है।" उन्होंने एक जगह ऐसा आग्रह भी किया कि **"विज्ञापनों में सत्य का यथेष्ट ध्यान रखा जाना चाहिए। हमारे लोगों की एक आदत यह है कि वे पुस्तक या अखबार में छपे हुए शब्दों को शस्त्र–वचनों की तरह सत्य मान लेते हैं। इसीलिए विज्ञापनों की सामग्री तैयार करने में अत्यंत सावधानी बरतने की जरूरत है। झूठी बातें बहुत खतरनाक होती हैं।"**

वर्ष 2001 में भारत में प्रकाशित समाचार–पत्रों और पत्रिकाओं की संख्या 51,960 थी। वर्ष 2001 में 5,638 दैनिक, 348 सप्ताह में दो अथवा तीन बार प्रकाशित होने वाले, 18,582 साप्ताहिक, 6881 पाक्षिक, 14,634 मासिक, 3,634 त्रैमासिक, 469 वार्षिक और 1,774 अन्य पत्र–पत्रिकाएं प्रकाशित हो रही थीं। वर्ष के दौरान 101 भाषाओं और बोलियों में समाचार–पत्र प्रकाशित हुए। सबसे अधिक अखबार हिंदी में 20,589 प्रकाशित हुए और उसके बाद अंग्रेजी 7,596 और मराठी 2,943 में प्रकाशित अखबारों का स्थान रहा। कश्मीरी को छोड़कर सभी प्रमुख भाषाओं में समाचार पत्र प्रकाशित हुए। इस दौरान देश में अखबारों की कुल प्रसार संख्या 11 करोड़ 82 लाख 57 हजार 597 प्रतियों की रही।

स्वतंत्रता के पश्चात विकास के लिए अनुकूल माहौल, सरकारी प्रोत्साहन, लोकतंत्र के विकास, साक्षरता दर में वृद्धि आदि कई कारणों से प्रिंट मीडिया में पत्रकारिता ने न केवल उल्लेखनीय प्रगति की बल्कि विज्ञान, वाणिज्य, व्यापार, वित्त, साहित्य, कला, बाल एवं महिला संबंधी विषयों से जुड़ी कई पत्र–पत्रिकाओं का प्रकाशन होने लगा और इनकी प्रसार संख्या में भी उल्लेखनीय वृद्धि हुई।

सन् 1950 से 1970 के 20 वर्ष का समय समाचार–पत्रों तथा पत्रिकाओं विशेषकर समाचार एवं साहित्यिक पत्रिकाओं के लिए स्वर्णकाल रहा। लेकिन 1990–91 के आसपास केबल टीवी के आगमन के बाद सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक पत्रिकाएं तकरीबन बंद हो गईं अथवा उनकी प्रसार संख्या बहुत सिमट गई। 1970 के बाद दैनिक समाचार–पत्रों तथा उनके पाठकों की संख्या काफी बढ़ी है हालांकि साहित्यिक पत्रिकाओं का दौर थम–सा गया है। जो इक्का–दुक्का साहित्य पत्रिकाएं अभी भी टिकी हैं, वे भी अपनी भूमिका के साथ–साथ नहीं कर पा रहीं।

स्वतंत्रता के बाद ग्रामीण विकास के व्यापक कार्यक्रम तैयार कर क्रियान्वित किए गए किंतु इनमें से अधिकतर कार्यक्रमों तथा योजनाओं की जानकारी के अभाव के चलते ग्रामीण गरीब जनता इनके लाभ से वंचित ही रही है, जिसके लिए ये सभी योजनाएं बनाई जाती रही हैं। इसकी वजह मीडिया की ग्रामीण समाज के प्रति उदासीनता ही रही है। सरकारी दस्तावेजों में दर्ज इन योजनाओं के प्रचार–प्रसार का दायित्व मीडिया के कंधों पर ही डाला जाता रहा है। पहली पंचवर्षीय योजना में मीडिया को लोगों में जागरूकता लाने, विविध योजनाओं और उनके उद्देश्यों के बारे में जानकारी देने तथा लक्ष्यों और फायदों के बारे में बताने का जिम्मा सौंपा गया। दूसरी पंचवर्षीय योजना में मीडिया को और सक्रिय करने का लक्ष्य रखा गया। लोगों को उनकी ही भाषा में घर–घर तक योजना का संदेश पहुंचाने के साथ–साथ इन लक्ष्यों को उनकी आवश्यकताओं और परिवेश के अनुरूप ढालने का वृहद कार्यक्रम तैयार किया गया। तीसरी पंचवर्षीय योजना में विकास कार्यक्रम में लोगों को शामिल करने और उनका कारगर सहयोग प्राप्त करने का उद्देश्य रखा गया। अब तक बनी सभी योजनाओं का मुख्य उद्देश्य लोगों को विकास के विभिन्न चरणों की जानकारी देना और उनकी जानकारी घर–घर तक पहुंचाना रहा है। अब तक बनी दसों पंचवर्षीय योजनाओं का मुख्य ध्येय यही रहा है – विकास की प्रक्रिया में लोगों का सक्रिय सहयोग प्राप्त करना और उन्हें विकास प्रक्रिया का हिस्सा बनाना। वर्तमान में दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002–2007) चल रही है।

आज जब हम खाद्यान्न उत्पादन के क्षेत्र में आत्मनिर्भर हैं, हमारे विदेशी मुद्रा भंडार में लगभग 85 अरब डालर उपलब्ध हैं, सूचना और प्रौद्योगिकी, सुरक्षा और अंतरिक्ष विज्ञान के क्षेत्र में हमारे देश ने नई ऊंचाईयां छू ली है, इन सब सफलताओं के बीच यह हमारा दुर्भाग्य ही है कि हमारे लोकतंत्र के चारों स्तंभों की विश्वसनीयता पर आज प्रश्नचिंह लगने लगे हैं। किसी भी लोकतांत्रिक प्रणाली में समाचार–पत्र निष्पक्ष और निर्भीक होकर समाचार दें और अपना मत प्रकट करें, यह बहुत आवश्यक है। छोटे और मझोले समाचार–पत्र दूरदराज के ग्रामीण अंचलों से अधिक नजदीक से जुड़े रहते हैं इसीलिए उन पर सामान्य जन की समस्याओं, अभावों और गरीबी से संबंधित मसलों को समाचार–पत्रों के माध्यम से उठाकर जनमत जाग्रत करने का अधिक दायित्व आता है। स्वच्छ प्रशासन और गरीब लोगों को न्याय मुहैया कराना उनका आदर्श होना चाहिए।

छोटे और मझोले समाचार–पत्रों को टीवी चैनलों और बड़े समाचार–पत्रों का अनुसरण नहीं करना है। उन्हें अपना उद्देश्य या लक्ष्य अपने पाठकों के अनुसार चुनना होगा और उसी विचारधारा को अपने पत्र के माध्यम से उजागर करना होगा, जैसाकि आजादी से पहले के समाचार–पत्रों ने किया। पत्रकार सामाजिक बदलाव के एजेंट होते हैं इसीलिए उन्हें भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में बसे करोड़ों लोगों की आशा और उम्मीदों के अनुरूप संदेश देने में सक्षम होना चाहिए। हालांकि **दैनिक समाचार–पत्रों के प्रकाशन में विश्व में अग्रणी भारत के ग्रामीण क्षेत्रों पर जो पत्र केंद्रित हैं, वे उचित संपादकीय निर्देश और प्रबंधन के अभाव जैसी समस्याओं से जूझ रहे हैं। ग्रामीण प्रेस राष्ट्रीय साक्षरता मिशन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है बशर्ते वे उच्च व्यावसायिक मापदंडों को अपना सकें।** ग्रामीण जीवन के विकास के लिए ग्रामीण पत्र आयोग की स्थापना का विचार भी समय–समय पर रखा जाता रहा है।

अस्तित्व के संकट से जूझ रहे अधिकतर ग्रामीण अखबारों में व्यावसायिकता का अभाव है और अक्सर बिक्री बढ़ाने के उद्देश्य में वे अपनी जिम्मेदारी को भूल जाते हैं। **ग्रामीण समाचार–पत्र स्थानीय लोगों की चिंताओं,**

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा 'खेती' (मासिक) फल–फूल (त्रैमासिक) 'कृषि चयनिका' (त्रैमासिक) और आई सी ए आर रिपोर्टर (त्रैमासिक) पत्रिकाएं निकाली जाती हैं। 'खेती' और फल–फूल प्रसिद्ध लोकप्रिय पत्रिकाएं हैं जो किसानों और विद्यार्थियों की आवश्यकता के अनुरूप हैं। 'कृषि चयनिका' कृषि एवं संबद्ध क्षेत्रों की नवीनतम उपलब्धियों/अनुसंधानों की रिपोर्ट देती है। इसके अतिरिक्त ग्रामीण जीवन से संबद्ध कई पुस्तकें भी प्रकाशित की जाती हैं। परिषद चार अंग्रेजी पत्रिकाएं भी नियमित रूप से प्रकाशित करता है। 'इंडियन फार्मिंग' प्रसिद्ध मासिक पत्रिका है जबकि 'इंडियन हार्टीकल्चर' त्रैमासिक। 'आर न्यूज' त्रैमासिक न्यूज लैटर है जिसमें संस्थानों एवं मुख्यालय में की गई नई खोजों की जानकारी/सूचना दी जाती है।

साहित्य में गांव

ग्रामीण पृष्ठभूमि पर आधारित कई साहित्यिक कृतियां अमर हो गई हैं और उनका जनमानस पर प्रभाव जगजाहिर है। प्रेमचंद की 'गोदान' ग्रामीण परिवेश का जीवंत चित्र है जिसमें जमींदारों और महाजनों द्वारा किसानों का शोषण, अछूत समस्या, धर्म का विकृत रूप जैसी कई समस्याओं को हुबहू सामने रखा गया। प्रेमचंद की 'गबन' और 'साहित्यसदन' कृतियां भी ग्रामीण परिवेश को छूती हैं। राजेंद्र सिंह बेदी का उपन्यास 'एक चादर मैली सी' भी ऐसी ही सर्वश्रेष्ठ कृति है। इसमें पंजाब में व्याप्त रही उस कुप्रथा को उठाया गया है जिसमें पति की मृत्यु के बाद भाभी–देवर की शादी (चादर डालने) का रिवाज है चाहे देवर भाभी से उम्र में छोटा ही क्यों न हो। इस चर्चित उपन्यास पर फिल्म भी बन चुकी है। नागार्जुन के उपन्यास 'बलचनमा' में एक निम्न वर्ग के बालक के शोषण और दुख–दर्द की कथा है तो 'वरुण के बेटे' में मछुओं के अभाव, दैन्य और विवशता का चित्रण है। नागार्जुन के ही 'बाबा बटेसरनाथ' में बूढ़े बरगद की कथा के माध्यम से गांव का इतिहास खुलता है तो ग्रामीणों का शोषण, उत्पीड़न और दुख–दर्द सामने आने लगता है। रमाशंकर श्रीवास्तव के उपन्यास 'अमीन साहेब' में गांव में जमीन की पैमाइश की समस्या को उठाया गया है। फणीश्वर नाथ रेणु की 'परती परिकथा' कृति अकाल पड़ने पर सरकारी सहायता बिचौलियों द्वारा हड़पे जाने की राजनीति पर प्रकाश डालती है तो 'मैला आंचल' में भी ग्रामीण समस्याओं को उठाया गया है। अमृता प्रीतम का 'पिंजर' बंटवारे की समस्या पर आधारित है तो डा. अब्दुल बिस्मिल्लाह की 'झीनी–झीनी रे चदरिया' में बुनकरों की समस्या को उठाया गया है। राही मासूम रज़ा का 'आधा गांव', हिमांशु जोशी का 'कगार की आग', कमलेश्वर का 'लौटे हुए मुसाफिर' आदि कुछ ऐसे ही उपन्यास हैं जिनमें किसी न किसी ग्रामीण समस्या को उठाया गया है। साहित्यिक कृतियों के द्वारा सामने रखी गई समस्याओं का प्रभाव बहुत गहरा होता है क्योंकि उनमें भावनात्मक पक्ष प्रधान रहता है। कभी–कभी तो ऐसी कृतियां युगों तक अपना प्रभाव छोड़ती हैं।

परेशानियों और बाधाओं का आईना होने चाहिए। उन्हें ऐसी सरकारी विकास योजनाओं के बारे में छापना चाहिए जो ग्रामीण जनता के लिए बनाई गई हैं।

इस धुंधले परिदृश्य के बावजूद हम प्रेस की भूमिका को नकार भी नहीं सकते। कुछ प्रयास हो तो रहे हैं हालांकि अपेक्षा से बेहद कम।

ग्रामीण क्षेत्रों में दैनिक मलयालम, मनोरमा, मातृभूमि, दैनिक जागरण, दैनिक थांथी तथा इनेडू की पहुंच अच्छी है तथा पत्रिकाओं में मलयालम मनोरमा, मंगलम, वनिता तथा मनोहर कहानियां अग्रणी हैं। राजस्थान पत्रिका, मध्यप्रदेश से प्रकाशित नई दुनिया तथा उत्तर प्रदेश में वाराणसी सहित नौ स्थानों से छपने वाला दैनिक 'आज' उन अखबारों में प्रमुख है जो गांव के संदर्भ में नियमित स्तंभ तथा परिशिष्ट छापते रहते हैं। राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त पाक्षिक सेवाग्राम है जोकि लखनऊ से प्रकाशित होता है। उसमें ग्रामीण विकास से संबंधित विभिन्न सामग्री का नियमित रूप से प्रकाशन किया जाता है। ऐसा ही एक अन्य साप्ताहिक पत्र है अक्षर भारत, जो हिंदी के अतिरिक्त अन्य कई भाषाओं में भी निकलता है। हालांकि यह पत्र ग्रामीण पृष्ठभूमि से संबंधित प्राथमिकताओं को लेकर शुरू किया गया था किंतु इसे अपेक्षित दशा और सहयोग नहीं मिल सका। ग्रामीण पत्रकारिता से जुड़ी अधिकतर पत्र–पत्रिकाओं की कहानी राजस्व की कमी, प्रबंधन का अभाव, प्रशिक्षित पत्रकारों की कमी आदि कई कारणों से शुरू होने से पहले ही खत्म हो जाती है।

सरकारी अनुदानों के चलते ग्रामीण विकास मंत्रालय के सौजन्य से सूचना और प्रसारण मंत्रालय के प्रकाशन विभाग द्वारा प्रकाशित ग्रामीण विकास को समर्पित *कुरुक्षेत्र* पत्रिका हिंदी तथा अंग्रेजी दो भाषाओं में तकरीबन 50 वर्षों से निकाली जा रही मासिक पत्रिकाएं हैं। सामाजिक–आर्थिक विषयों पर केंद्रित पत्रिका 'योजना' भी तकरीबन 47 वर्षों से लगातार प्रकाशित हो रही है। इन पत्रिकाओं में समय–समय पर सरकार द्वारा ग्रामीणों से संबंद्ध घोषित योजनाओं की जानकारी रहती है। इसके अलावा ग्रामीण विकास, तथा समाज कल्याण पत्रिकाएं भी ग्रामीण समाज से संबंधित विषयों को यथेष्ट स्थान देती हैं। पंचायती राज अपडेट (हिंदी, अंग्रेजी) न्यूजलैटर पूरी तरह से ग्रामीण विषयों पर केंद्रित है। साहित्य पत्रिकाएं भी ग्रामीण समस्याओं को कहानी, लघुकथा, कविता आदि के माध्यम से उजागर कर अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। कहानी के माध्यम से दिए गए संदेश का असर भी गहरा होता है जो पढ़ने वाले के अंतर्मन तक उतर जाती हैं। प्रकाशन विभाग की ही साहित्यिक पत्रिका 'आजकल' भी सामाजिक लेखों, कहानियों–कविताओं आदि के माध्यम से सामाजिक संदेश देने का प्रयास करती है। सरिता, मुक्ता, कादंबिनी आदि पत्रिकाओं में भी अंधविश्वास और रुढ़िवादिता पर कटाक्ष करते लेख, कहानियां, कविताएं आदि प्रकाशित होते रहते हैं हालांकि इन पत्रिकाओं के ग्रामीण पाठक शहरी पाठकों की तुलना में कमतर हैं। दो अन्य मासिक पत्रिकाएं भी हैं इनके नाम हैं – ग्रामीण विकास समाचार (हिंदी) तथा रुरल डेवलपमेंट न्यूज (अंग्रेजी)।

ग्रामीण पत्रकारिता को बढ़ावा देने के उद्देश्य से स्टेट्समैन प्रकाशन समूह (कोलकाता) रुरल मीडिया अवार्ड देकर उन पत्रकारों को पुरस्कृत करता है जिन्होंने ग्रामीण क्षेत्रों से संबंधित समस्याओं पर आधारित रिपोर्ट, फीचर या लेखो आदि द्वारा उत्कृष्ट योगदान किया हो। ग्रासरूट के भी प्रत्येक अंक में छपने वाले सर्वश्रेष्ठ फीचर पर पांच हजार रुपये का पुरस्कार देकर ग्रामीण पत्रकारिता को बढ़ावा देने का प्रयास किया जा रहा है।

देश की सभी राज्य सरकारों को इस दिशा में अविलंब कदम उठाने चाहिए ताकि ग्रामीण पत्रकारिता को नई गति और दिशा मिल सके।

हमारे अनुसंधान केंद्रों की उपलब्धियां तब तक अधूरी हैं जब तक वे गांव–गांव तक पहुंच कर ग्रामीणों के जीवन को बेहतर बनाने में अपना योगदान नहीं करती। जब तक ग्रामीणों के काम करने और सोचने का ढंग वैज्ञानिक नहीं होगा, तब तक हम विकसित राष्ट्रों की बराबरी करने की बात सोच भी नहीं सकते। यह कार्य तब तक संभव नहीं है जब तक हम ग्रामीण जनता को साक्षर कर उसे रूढ़ियों और अंधविश्वासों के घेरे से निकालकर बाहर नहीं लाते। इस महत्वपूर्ण कार्य को अंजाम देने में प्रेस को अपना सक्रिय योगदान करना होगा। ❑

(स्वतंत्र पत्रकार)

ग्रामीण भारत में सिनेमा : एक सिंहावलोकन

☞ संजय अभिज्ञान

सिनेमा ग्रामीण आबादी के अवचेतन में पैठकर धीरे-धीरे समाज परिवर्तन का काम करता है। मुंबइया सिनेमा भले ही आज सारी ऊर्जा अनिवासी भारतीय दर्शकों को रिझाने में लगा रहा हो, लेकिन देर-सवेर उसे समझना होगा कि फिल्म इंडस्ट्री की दीर्घकालीन कारोबारी सफलता का राज ग्रामीण भारत में ही छिपा है।

इक्कीसवीं सदी की दहलीज पर खड़े हम लोग क्या आज कल्पना कर सकते हैं कि बीस और तीस के दशक में जब पहली बार अवाक और सवाक फिल्में हमारे कस्बों में पहुंच रही थीं, तो हमारे साधारण देहाती भाई–बहन किस माहौल में और कैसे इंतजाम के साथ ये फिल्में देखते थे? आइए, इसकी एक बानगी देखते हैं। प्रेमचंद की परंपरा में हिंदी के सबसे बड़े साहित्यकार हरिशंकर परसाई ने अपनी आत्मकथा में एक जगह अपनी किशोरावस्था के अनुभव लिखे हैं :

'पहली अवाक (साइलेंट) फिल्म हमने देखी थी – भक्त बोधन। उस वक्त प्रवासी सिनेमा होते थे, जो अपने साजोसामान के साथ गाड़ी पर चलते थे। टिकट के पीछे लिखा रहता था– 'यह टिकट सिर्फ एक आदमी के लिए है। नशा करके ऊधम करने वाले को बाहर निकाल दिया जाएगा। मशीन फेल होने पर पैसा वापस नहीं दिया जाएगा।' एक आदमी पर्दे के सामने कोने में छड़ी लिए खड़ा रहता था। वह छड़ी से पात्र बताकर यह बतलाता था कि वह पात्र क्या बोल रहा है। वह डायलॉग बोलता था। अगर उसे देर हो जाती या वह भूल जाता तो दर्शक चिल्लाते– अबे, बता न, तेरा बाप क्या बोल रहा है। स्वर को बांधना तब विज्ञान को आ चुका था। तवे का बाजा–ग्रामोफोन चल चुका था और पहला गाना जो हमने सुना था, वह था – 'छोटी–बड़ी सुइयां री, जाली का मेरा काढ़ना।' उसके थोड़े समय बाद पहली सवाक फिल्म देखी – *अछूत कन्या*। हमारे कस्बे जबलपुर से तीसरा स्टेशन था–हरदा। वहीं के एक टाकीज पर फिल्म लगी थी। चटाई का टिकट लेकर गाना सुना– मैं वन का पंछी बनके वन–वन डोलूं रे, मैं वन की चिड़िया बनके वन–वन डोलूं रे...।'

तो ऐसी थी ग्रामीण भारत में सिनेमा की दस्तक! वे पहले विश्वयुद्ध और रूसी क्रांति के फौरन बाद के दिन थे। महात्मा गांधी तब दक्षिण अफ्रीका से वापस आकर भारतीय जनमानस में अपने पांव जमा रहे थे। रेडियो ही उस जमाने में एक बड़ी विलासिता था, फिल्म और सिनेमा तो जन्नत की बातें थीं। लेकिन तकरीबन छह लाख गांवों वाले भारत की लगभग 85 फीसदी जनता तब गांवों में बसती थी। नीची साक्षरता दर और ऊंची मृत्युदर रखने वाली वह बहुसंख्यक आबादी तब सोच भी नहीं सकती थी कि अनपढ़ों को घर बैठे शिक्षित करने वाला एक चमत्कारी माध्यम आकार ले रहा है। कहने को टाइम्स आफ इंडिया में 7 जुलाई, 1886 को ही देश का पहला फिल्म विज्ञापन छप चुका था जिसमें लोगों को ल्यूमियर ब्रदर्स की 'द वंडर्स ऑफ द वर्ल्ड' फिल्म देखने का आमंत्रण दिया गया था। लेकिन भारत की पहली घरेलू फिल्म 'राजा हरिश्चंद्र' की पब्लिक स्क्रीनिंग लगभग 27 साल बाद यानी 1913 में ही संभव हो

☞ लेखक नवभारत टाइम्स में सहायक संपादक हैं।

पाई। तब ज्यादातर फिल्में पौराणिक और धार्मिक थीम वाली होती थीं। गांवों के धर्मभीरू मानस को ऐसी ही फिल्में भाती थीं। लेकिन तब सिनेमा जितना आकर्षक था, उसमें काम करने वाले लोग उतने ही निंदनीय। इज्जतदार औरतें फिल्मों–थिएटर में काम करने आगे न आती थीं, यहां तक कि वेश्याएं भी मुंह मोड़ लेती थीं। नतीजतन दादासाहेब फाल्के को महिला पात्रों के लिए पुरुषों को ही मेकअप करके खड़ा करना पड़ता था।

आजादी से पहले के ग्रामीण भारत में सिनेमा की यह धारा तीस के दशक में पूरे वेग से बहनी शुरू हुई। उन वर्षों में दो महत्वपूर्ण घटनाओं ने आकार लिया। एक क्षेत्रीय और मुंबइया फिल्म इंडस्ट्री का समानांतर उदय और दूसरी, सिनेमा की पटकथा, भाषा और विषयवस्तु में ग्राम समाज का प्रभुत्व। आजादी की लड़ाई उन दिनों एक राष्ट्रीय मिशन में तब्दील हो चुकी थी। गांधी, नेहरू और अंबेडकर ने सामाजिक न्याय, अंधविश्वास और गैर–बराबरी के खिलाफ पर्याप्त जनचेतना जगा दी थी। इसलिए फिल्मों की विषयवस्तु समाज के आम आदमी से, किसान से, खेतिहर मजदूर से और ग्रामसमाज की रूढ़ियों में छटपटाती अबला नारी से अलग नहीं रह सकती थी। कलकत्ता, मद्रास और मुंबई में तब स्टूडियो कल्चर पनप चुका था। निर्देशक पी.सी. बरुआ की बंगला फिल्म देवदास (1935) स्टूडियो सिस्टम का पहला सफल प्रयोग थी। न्यू थिएटर्स की इस फिल्म के बाद में हिंदी और तमिल संस्करण भी बने। उन्हीं दिनों व्ही. शांताराम, वी जी डामले, और एस. फतहलाल नाम के तीन दोस्तों ने अपने दो और मित्रों के साथ मिलकर प्रभात फिल्म कंपनी की नींव रखी। इस कंपनी ने सामाजिक थीम वाली फिल्मों की झड़ी लगा दी। तीस के दशक में बनी मराठी फिल्म 'संत तुकाराम' ने उस वक्त वेनिस फिल्म समारोह में भी अपनी पहचान बनाई थी। सन् 1936 में ही अशोक कुमार और देविका रानी की *अछूत कन्या* रिलीज हुई थी।

जरा गौर करें कि उन फिल्मों का संवाद समाज के किस वर्ग से था। बेशक अपने जन्म के समय भारतीय सिनेमा का संवाद ग्रामीण समाज से ही था। उसके सरोकार, उसके पात्र, उसकी चिंतनभूमि–सब कुछ गांवों में बसने वाले भारत में थे। *देवदास* गांवों में फैली जातपांत और विवाह परंपरा की रूढ़ियों के प्रतिरोध की कहानी थी। *अछूत कन्या* हमारे देहाती मानस में पैठी छूआछूत को चुनौती दे रही थी *संत तुकाराम* अशिक्षा और अंधविश्वास में जकड़े ग्राम समाज को जगाने वाले एक महापुरुष की कथा कह रही थी। दहेज और विधवा बहिष्कार जैसी रूढ़ियों की धज्जियां उड़ाने का काम फिल्म निर्देशकों ने अपने कंधों पर ले लिया था। हालांकि तब यह सिनेमा हमारे दूरदराज के गांवों के भीतर तक पहुंच नहीं बना पाया था। उसकी पहुंच कस्बों तक ही थी लेकिन इसके बावजूद उसने ग्रामीण जनमानस के साथ कितना गहरा रिश्ता बना लिया था, इसकी मिसाल इन फिल्मों को मिली लोकप्रियता थी। तीस के दशक से पचास साल पहले ही देश में रेलगाड़ी आ चुकी थी। कस्बों के बीच आवागमन एक हद तक संभव हो चला था। ताजा–ताजा परिवहन के उस युग में सिनेमा ने मनोरंजन के साथ–साथ शिक्षण की मुहिम छेड़ी और इसमें वह खासा सफल रहा।

आजादी मिलने के बाद सिनेमा और ग्राम समाज का यह रिश्ता और तेजी से पुख्ता हुआ। स्वतंत्र भारत के फिल्मकारों ने अपनी जिम्मेदारी को नए सिरे से समझा। पचास का दशक सचमुच फिल्मों का स्वर्णिम दौर था। तब निर्देशकों ने गांवों की आत्मा को समझने वाली फिल्में बनाईं। बिमल राय की *दो बीघा जमीन* (1954) और राज कपूर की *जागते रहो* (1957) गांव से शहर आए देहातियों की फिल्में हैं। नरगिस अभिनीत *मदर इंडिया* ग्रामीण भारत की विवशताएं झेलती एक ग्रामीण मां की अमर चित्रकथा है। दिलीप कुमार और वैजयंती माला की *नया दौर* मशीनी दौर का मुकाबला करते देहातियों की रूमानी कहानी थी। *अनपढ़* में एक जमींदार की लाड़ली बेटी के अशिक्षित रह जाने और ससुराल में दुख झेलने की मर्मस्पर्शी कहानी थी। *जिस देश में गंगा बहती है* और *गंगा–जमुना* यह दिखा रही थीं कि किन हालात के बीच किसान डाकू बनने पर विवश होता है। *तीसरी कसम* में एक देहाती गाड़ीवान की मूक प्रेमकथा का चित्रण था। *जोगन* एक देहाती युवक और एक साध्वी के बीच पनपे त्यागपूर्ण प्रेम प्रसंग की करुण गाथा थी। *तराना* और *बावरे नैन* में ग्रामीण अल्हड़ बाला और शहरी नौजवान के रूमानी रिश्तों का चित्रण था। और तो और, बाद में सिनेमा के इतिहास की सफलतम फिल्मों में से एक *शोले* की पटकथा भी ग्रामीण परिवेश पर लिखी गई। फिल्म संगीत को भी तब लोकसंगीत से ही प्राणवायु मिलती थी। मधुमति में सलिल चौधरी के अदभुत संगीत निर्देशन में तैयार समूहगान – 'जुल्मी संग

भारत में फीचर फिल्मों का निर्माण 1912–13 से हो रहा है। आर.जी. टोर्नी ने एन.जी. चित्रे के साथ मिलकर, 1912 में *पुंडलिक* बनाई थी, जबकि दुंडीराज गोविंद फाल्के (1870–1944) ने 1913 में 'राजा हरिश्चंद्र' का निर्माण किया। आर्देशीर ईरानी (1886–1969) ने जब 1931 में 'आलमआरा' बनाई तो मूक फिल्मों के युग का स्थान सवाक फिल्मों ने ले लिया, यद्यपि मूक फिल्मों का निर्माण 1934 तक जारी रहा। भारत में वर्ष भर में दुनिया के सब देशों से अधिक फीचर फिल्में बनती हैं।

आंख लड़ी और दिलीप कुमार अभिनीत फिल्म *गोपी* में, 'रामचंद्र कह गए सिया से' जैसे भजन हमारे लोकनृत्य और लोकरंजन की परंपरा से ही निकले थे।

बेवजह नहीं कि आजादी के बाद के पहले दो–ढाई दशकों में बनी अधिकतर फिल्मों में शहरी तौर–तरीकों और पश्चिमी रंग–ढंग पर हल्का व्यंग्य और घृणाभाव देखने को मिलता था जो किसान दर्शक के मनोविज्ञान के ही मुताबिक था। परदे पर अपनी तरह के गंवई मूल्यों और रहनसहन को मिलती तारीफ से ग्रामीण दर्शक खुश होता था। उसे ऐसी ही फिल्में पसंद आती थीं। सिनेमा और ग्रामसमाज दोनों के बीच एक–दूसरे के मूल्यों की परस्पर सराहना का रिश्ता विकसित हो चुका था, जिसके समांतर समाजसुधार और रूढ़ियों पर प्रहार का रचनात्मक काम भी लगातार चलता रहता था।

वास्तव में वे 'जय जवान, जय किसान' के नारे वाले दिन थे। जनचेतना पर 'मेरे देश की धरती सोना उगले' वाले जज्बात हावी थे। फिल्में तब किसानों में और किसान तब फिल्मों में अपना प्रतिबिंब देखते थे। यह अनोखा रिश्ता एक साथ तीन सामाजिक उद्देश्य पूरे कर रहा था। एक तो वह विकसित शिक्षित दुनिया की झलक किसानों को दिखाता था ताकि वे अपनी रूढ़ियों को पहचानें और अपने बंधनों से आजाद हों। दूसरे, वह यह साबित कर रहा था कि एक आम भारतीय गांव में रहकर ही न केवल समृद्ध और सुखी जीवन के अपने सपने पूरे कर सकता है बल्कि उससे आगे जाकर वह यह सुझा रहा था कि ज्यादा कमाई के लिए गांव की प्राकृतिक गोद छोड़कर नगर नर्क में जाने की कोई जरूरत नहीं, खेत–खलिहान छोड़कर शहरों की तनाव भरी, प्रदूषित जिंदगी में जाने का क्या फायदा। तीसरे, यह रिश्ता देश की भारत की शहरी आबादी के लिए ही नहीं, देश–विदेश के अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के लिए भी भारतीय ग्रामसमाज का झरोखा बन गया। *मदर इंडिया* जैसी फिल्मों ने भारत के एक प्रतिनिधि गांव के अंतरविरोधों पर बनी एक प्रतिनिधि कहानी को दुनिया के सामने पेश किया, जिसे विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय फिल्म समारोहों में सराहा गया। इस झरोखे में झांककर शहरियों ने गांव की जिंदगी की कद्र करना सीखा। आजादी के पहले ही देश में प्रगतिवादियों की एक ऐसी जमात पैदा हो चुकी थी जो गांवों को अंधविश्वास और जहालत के अड्डों के रूप में देखती थी। लेकिन गांधी, विनोबा और बाद में लोहिया के नेतृत्व वाली विचारधारा ने हमेशा ग्राम समाज को महिमामंडित किया और देहात से नफरत करने वाली विचारधारा को हाशिए पर ढकेल दिया। इस अर्थ में भारतीय सिनेमा ने, जिसमें क्षेत्रीय सिनेमा खासतौर पर शामिल है, गांधी और लोहिया की राजनीतिक विचारधारा को महत्वपूर्ण सहारा दिया।

लेकिन सत्तर के दशक में भारतीय सिनेमा का देहाती रोमांस बिखरने लगा। फिल्म संगीत और पटकथा–दोनों मोर्चों पर तब शहरी मूल्य और पश्चिमी रंग–ढंग हावी होने लगे। देहाती हीरो और देहाती हीरोइन नेपथ्य में जाने लगे। नए सिनेमा का एंग्रीमैन अब शहर का निराश युवा था, जिसे गरीबी और भ्रष्टाचार से टक्कर लेनी थी। फिल्म निर्देशकों ने भी देहाती विषयों को मुंह लगाना बंद कर दिया। हालांकि इस बीच *मंथन* और *हम पांच* जैसी इक्का–दुक्का फिल्में देहाती परिवेश पर बनीं, लेकिन कमर्शियल सिनेमा ने तो गांव को जैसे देशनिकाला ही दे दिया। गांव के दर्शक के लिए बी ग्रेड फिल्मों का एक अलग बाजार विकसित होने लगा। नब्बे के दशक में इस दुर्घटना ने काफी पुख्ता रूप धारण कर लिया। नई सदी की शुरुआत में हालांकि आमिर खान की *लगान* ने उपेक्षा के इस तंत्र को तोड़ने की दिशा में एक महत्वपूर्ण मगर असफल कोशिश की। आज भी हालत यह है कि फिल्मकारों में देवदास और भगतसिंह जैसे पुराने विषयों पर या महाभारत और रामायण जैसे पौराणिक विषयों पर फिल्मों के रिमेक बनाने की होड़ तो है, लेकिन देश की दो–तिहाई आबादी अपने पास रखने वाले ग्राम समाज के मनोविज्ञान और मनोदशा को दर्शाने वाली फिल्में बनाने की फुरसत उन्हें नहीं।

याद रहे, अगर राष्ट्रीय फिल्म विकास निगम (एनएफडीसी) और फिल्म्स डिवीजन जैसी सरकारी संस्थाएं न होतीं तो ग्रामीण पटकथाओं को देशनिकाला देने की यह घटना बहुत पहले ही घट जाती। अच्छे सिनेमा को बढ़ावा देने के लिए 1975 में स्थापित (और 1980 में पुनर्गठित) एनएफडीसी अब तक लगभग 300 फिल्मों को फाइनेंस और दूसरी निर्माण सुविधाएं उपलब्ध करा चुका है। भारत के बहुसंख्यक ग्राम समाज के लिए सार्थक सिनेमा के निर्माण में इस संस्था ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसी तरह 1948 में स्थापित फिल्म्स डिवीजन हर साल देश में लगभग डेढ़ सौ वृत्तचित्रों का निर्माण करता है। देश के लगभग 10 हजार मोशन पिक्चर थिएटरों को यह संस्था हर हफ्ते एक न्यूज़रील उपलब्ध कराती है। विभिन्न राज्यों की सरकारें इन वृत्तचित्रों के लिए फिल्म्स डिवीजन का प्रायोजन सुविधाएं देती हैं। हिंदी और क्षेत्रीय फिल्मों के प्रदर्शन से पहले थिएटरों में इन वृत्तचित्रों को दिखाया जाता रहा है। ग्रामीण क्षेत्रों में इन वृत्तचित्रों के विशेष शो भी आयोजित कराए जाते रहे हैं। हालांकि इन वृत्तचित्रों के उत्पादन और विपणन का तंत्र अफसरशाही की जकड़ में रहता है, लेकिन इसके बावजूद ये वृत्तचित्र गांवों में जनजागरण के लिए महत्वपूर्ण काम करते रहे हैं। शराबखोरी, अशिक्षा, दहेज, गुप्तरोग, बाल मजदूरी जैसी समस्याओं पर बने वृत्तचित्र थिएटर में फीचर फिल्म से पहले दिखाए जाने अनिवार्य हैं इसलिए वे अपना प्रभाव छोड़ने में कामयाब रहते हैं। देहाती इलाकों में वर्षा जल संग्रहण, लघु जल परियोजनाएं, सामूहिक उद्यम प्रोजेक्ट, प्रौढ़ शिक्षा अभियान, ग्रामीण बैंकिंग, परिवार नियोजन, सरकारी रोजगार योजनाओं जैसे विषयों पर जागृति फैलाने में इन वृत्तचित्रों ने बहुत ही अहम भूमिका निभाई है। शायद इसीलिए वृत्तचित्रों के माध्यम को 'प्रतिरोध के सिनेमा' की संज्ञा दी गई है।

लेकिन सिनेमा की विषयवस्तु के गांव से कटने की पिछले दो–ढाई दशकों की इस घटना के खामियाजे को एक दूसरी दीर्घकालीन घटना ने कुछ हद तक पूरा कर दिया है। यह घटना भारत की ग्रामीण जनचेतना के इतिहास में युगांतरकारी है। यह घटना है – टेलीविजन का अभूतपूर्व प्रसार। निरंतर सस्ती होती तकनीक ने जिस तरह ट्रांजिस्टर को रेडियो क्रांति का वाहक बनाकर हर वर्ग तक पहुंचा दिया था, उसी तरह श्वेत–श्याम टेलीविजन

फिल्म प्रभाग की स्थापना 1948 में स्वतंत्र भारत की उपलब्धियों को भारतीय रजतपट पर रिकार्ड, प्रचारित और संरक्षित रखने के लिए की गई थी। भारत और विश्व में वृत्तचित्र आंदोलन के प्रसार में अग्रणी भूमिका निभाने के अलावा यह जनता और सरकार को जोड़ने का एक सशक्त माध्यम है। यह प्रभाग वृत्तचित्रों, ऐनिमेशन फिल्मों और समाचार चित्रों का निर्माण और वितरण करने वाली सबसे बड़ी राष्ट्रीय एजेंसी है। यह प्रभाग समाचार चित्र, वृत्तचित्र के अलावा कथा आधारित लघु कथाचित्र और अन्य शिक्षाप्रद और प्रेरणादायक चित्रों का निर्माण भी करता है। ये फिल्में प्रभाग स्वयं भी बनाता है और भारत सरकार तथा राज्य सरकारों के विभिन्न मंत्रालयों और विभागों के लिए भी बनाई जाती हैं। प्रभाग की स्वयं की कार्टून फिल्म यूनिट है जो डिस्ने, हालीवुड के सेल ऐनिमेशन स्टूडियो पर आधारित है इसके अलावा प्रभाग ज्ञानप्रद और शिक्षाप्रद ऐनिमेशन फिल्मों का निर्माण भी करता है। फिल्म प्रभाग हिंदी और अंग्रेजी के अलावा भारत की सभी क्षेत्रीय भाषाओं में फिल्मों का निर्माण करता है और उन्हें डब भी करता है।

के लगातार सस्ते होते जाने से शहरों का बुद्धू बक्सा देखते–देखते ग्रामीण भारत का अंग बन गया। आज भले ही हमारे सारे गांवों में बिजली न पहुंच पाई हो, लेकिन यह किफायती टीवी गांव के हर दूसरे औसत घर में पहुंच गया है। वास्तव में आज एक असेम्बल किया हुआ नया ब्लैक एंड व्हाइट टीवी 15 सौ से दो हजार रुपये में खरीदा जा सकता है जबकि पुराने टीवी के दाम इससे और भी काफी कम हो सकते हैं। केबल नेटवर्क तो कस्बाई इलाकों तक अपनी पहुंच बना ही चुका है, दूरदर्शन का राष्ट्रीय नेटवर्क बहुत पहले से दूर–दराज के गांवों को अपने दायरे में ले चुका है। नतीजा यह है कि पहले जो सिनेमा सिर्फ थिएटरों या चलती–फिरती सिनेमा गाड़ियों के माध्यम से गांवों की आबादी तक पहुंचता था, वह अब टीवी के जरिए उनकी झोंपड़ियों तक सीधे पहुंच जाता है। ग्रामीण भारत सचमुच टीवी की क्रांति को हैरत के साथ देख रहा है। टीवी की मार्फत सिनेमा की दुनिया उसके बहुत करीब आ गई है।

इस टीवी क्रांति की बदौलत ग्रामीण क्षेत्रों में सिनेमा का एक नया आयाम विकसित हुआ है। वह है कार्पोरेट मार्केटिंग और विज्ञापन फिल्मों का आयाम। ग्रामीण दर्शक अब धीरे–धीरे ग्रामीण उपभोक्ता की पहचान विकसित कर रहा है। राष्ट्रीय व्यावहारिक आर्थिक अनुसंधान परिषद (एनसीएईआर) के एक अध्ययन के मुताबिक आज ग्रामीण क्षेत्रों में मध्यम आय वर्गीय परिवारों की संख्या शहरों के मध्यम आय वर्गीय परिवारों के बराबर पहुंच चुकी है। देश में लगभग 39 लाख उच्च आय वर्गीय परिवार हैं जिनमें 16 लाख देश के गांवों में बसते हैं। एनसीएईआर के अनुसार भविष्य में ग्रामीण भारत में आय वृद्धि की रफ्तार शहरी भारत की रफ्तार से काफी ज्यादा रहेगी। **सन् 2007 तक ग्रामीण क्षेत्रों में मध्य और उच्च वर्ग की आय वाले परिवारों की कुल तादाद 11 करोड़ से अधिक हो जाएगी, जबकि शहरी क्षेत्रों में यह आंकड़ा छह करोड़ तक भी नहीं पहुंच सकेगा।** साबुन, शैंपू जैसे उपभोक्ता उत्पाद बनाने वाली कंपनी हिंदुस्तान लीवर के अधिकारियों का आकलन है कि आज की तारीख में भारत के शहरों में साबुन, टूथपेस्ट और क्रीम जैसी तेज कारोबारी चाल वाली उपभोक्ता वस्तुओं (एफएमसीजी) पर कुल 495 अरब रुपये की राशि उपभोक्ता की जेब से खर्च की जाती है, जबकि ग्रामीण क्षेत्रों के लिए यह आंकड़ा 635 अरब रुपये से अधिक है। ग्रामीण भारत के इस कारोबारी प्रोफाइल का ही नतीजा है कि विज्ञापन कंपनियों में ग्रामीण उपभोक्ताओं को रिझाने की होड़ मच गई है। बेवजह नहीं कि आमिर खान आपको एक विज्ञापन में देहाती नवयुवक के गेटअप में नजर आते हैं और ग्रामीण बालाओं को पांच रुपये में कोक दिलवाते हैं। ठंडा मतलब कोका कोला के पीछे देहाती बाजार को दुहने का दर्शन काम कर रहा है। इसी तरह बिस्कुट, पाउच शैंपू, मंजन, सौंदर्य प्रसाधन, सीमेंट, घी, डिस्टेंपर और दूसरी चीजों की मार्केटिंग में गांव के परिवेश को झलकाया जा रहा है। कंपनियां 'वीडियो आन व्हील्स' जैसी ताजी अवधारणाओं के साथ आगे आ रही हैं जिनमें देहाती इलाकों में गाड़ियों पर मार्केटिंग की फिल्में दिखाई जाती हैं। देहाती मार्केटिंग वाले इस सिनेमा का भी एक महत्वपूर्ण सूचनात्मक पहलू है। विज्ञापन भी जनमानस को सूचित करने की भूमिका निभाते हैं। और अगर वे साथ में मनोरंजन भी कर रहे हों तो सोने पर सुहागा है। लेकिन क्या कार्पोरेट विज्ञापन अभियान और सरकारी वृत्तचित्र उस रिश्ते की कमी को भविष्य में पूरा कर पाएंगे जो हमारे ग्राम समाज और सिनेमा के बीच दशकों से कायम था। सच यह है कि सोद्देश्य फीचर फिल्मों का अभाव हमारे गांवों को खलता रहेगा। ग्राम शिक्षण और ग्राम जागरण का राष्ट्रीय अभियान अभी पूरा नहीं हुआ है। आज भी देश का एक औसत गांव और खासतौर पर उत्तर भारत का एक औसत गांव आधुनिक विचारधारा के साथ कदमताल नहीं कर पा रहा है। अंतरजातीय प्रेम विवाहों और विवाह पूर्व प्रेम संबंधों को हमारे हरियाणा और उत्तर प्रदेश के गांवों में आज भी इतनी नफरत से देखा जाता है कि उसके लिए रिश्तेदार खुद अपने बच्चों की हत्या गवारा कर लेते हैं। आज भी गांवों में औरतों को चुड़ैल बनाकर मार दिए जाने की या बच्चों की बलि देने की खबरें आ रही हैं। इसके अलावा राजनीति के कुछ विचलन भी हमारे ग्राम समाज को जात–पांत के खानों में बांट रहे हैं। इन सब भटकनों के प्रतिकार के लिए सिनेमा की प्रतिरोधक शक्ति बहुत जरूरी है। सिनेमा ग्रामीण आबादी के अवचेतन में पैठकर धीरे–धीरे समाज परिवर्तन का काम करता है। मुंबइया सिनेमा भले ही आज सारी ऊर्जा अनिवासी भारतीय दर्शकों को रिझाने में लगा रहा हो, लेकिन देर–सवेर उसे समझना होगा कि फिल्म इंडस्ट्री की दीर्घकालीन कारोबारी सफलता का राज ग्रामीण भारत में ही छिपा है। फिल्मकारों की पहली चिंता आज यह है कि फिल्में चल नहीं पातीं। 95 फीसदी फिल्में पहले हफ्ते में ही बाक्स आफिस पर दम तोड़ जाती हैं। यह स्थिति इसलिए है कि ये फिल्में देहाती जनमानस को खुद से जोड़ नहीं पातीं। ग्राम समाज के मूल्यों और विश्वासों को पूरा आदर नहीं दे पातीं। अगर फिल्मकार इसका ध्यान रखें तो मजाल है कि फिल्म पिट जाए। क्या लगान की पटकथा से वे कोई सबक नहीं लेना चाहेंगे? ❑

सी–51, तुलसी अपार्टमेंट,
सेक्टर–14, रोहिणी, दिल्ली–110085

ग्रामीण विकास में रेडियो की भूमिका

☞ लक्ष्मीशंकर वाजपेयी

नेशनल रीडरशिप सर्वे के निष्कर्षों के अनुसार पत्र–पत्रिकाओं के पाठकों की संख्या 18 करोड़ है, टेलीविजन दर्शकों की संख्या 38 करोड़ 36 लाख और रेडियो के श्रोताओं की संख्या 68 करोड़ 6 लाख है। सबसे ज्यादा धमाका करने वाले इंटरनेट माध्यम की पहुंच मात्र 60 लाख लोगों तक ही है।

इस तरह गौर से देखें तो पत्र–पत्रिकाओं के पाठक रेडियो श्रोताओं के लगभग चौथाई और टेलीविजन दर्शक आधे से कुछ ज्यादा ठहरते हैं। रेडियो माध्यम की व्यापकता एवं शक्ति को और अधिक समझाने में ये आंकड़े भी हमारी मदद करेंगे –

- रेडियो प्रसारण की 90 प्रतिशत से अधिक क्षेत्रफल तक पहुंच है।
- रेडियो प्रसारण देश की 99 प्रतिशत जनसंख्या तक पहुंचते हैं।
- किसी एक दिन रेडियो सुनने वालों का औसत 30 करोड़ से अधिक होता है।
- देश में 11 करोड़ से अधिक रेडियो परिवार हैं।
- देश में साढ़े बारह करोड़ से अधिक रेडियो सेट हैं जिनमें लगभग 6 करोड़ एफएम सेट हैं।

दुनिया के सबसे बड़े प्रसारण तंत्रों में से एक आकाशवाणी निश्चय ही समस्त माध्यमों में सबसे व्यापक, शक्तिशाली एवं विश्वसनीय माध्यम बना हुआ है। यह तो माध्यम की जनता तक पहुंच की बात है लेकिन इसके विपरीत जनता की माध्यम तक पहुंच की सोचें तो गांवों में साक्षरता की स्थिति देखते हुए प्रिंट माध्यम उतना कारगर नहीं ठहरता। जहां तक टेलीविजन का सवाल है, बिजली सप्लाई की स्थिति के चलते जितना टेलीविजन पहुंचा है, उसमें मात्र दूरदर्शन ही है जो ग्रामीण भारत के बारे में कुछ सोचता है अन्यथा निजी चैनलों की दुनिया ही और है जिसमें बाजार है, मुनाफा है, प्रतिद्वंदिता है। हां, समाचार चैनलों ने अवश्य गांवों की ओर रुख किया है। उल्लेखनीय है कि आकाशवाणी न केवल देश के दूर–दराज रेगिस्तानी या दुर्गम पहाड़ी क्षेत्रों के छोटे–छोटे गांवों तक पहुंचने वाला एकमात्र माध्यम है वरन इसके विशाल श्रोतावर्ग में ग्रामीण श्रोताओं की भागीदारी हमेशा ही नगरीय श्रोताओं से ज्यादा रही है। इस प्रकार जब हम ग्रामीण विकास में संचार माध्यमों की भूमिका पर विचार करते हैं तो निर्विवाद रूप से रेडियो की भूमिका अत्यंत प्रभावशाली ढंग से उभरकर आती है। यह भी अत्यंत महत्वपूर्ण है कि प्रारंभ से ही ग्रामीण विकास में आकाशवाणी का एक प्रमुख सरोकार भी रहा है।

इस संदर्भ में सहज ही स्मरण हो आता है कि आज भी उड़ीसा एवं केरल के कुछ क्षेत्रों में किसान एक ऐसी प्रजाति के चावल की खेती करते हैं जिसे वो 'रेडियो राइस' के नाम

☞ लेखक भारतीय प्रसारण सेवा में अधिकारी हैं तथा सुपरिचित कमेंटेटर एवं प्रसारणकर्ता हैं।

से जानते हैं। यूं इसका वास्तविक नाम कुछ और ही था किंतु इसके बारे में उन्होंने रेडियो से जाना था इस कारण इसे 'रेडियो राइस' नाम से ही पुकारने लगे। यह ग्रामीणों के जीवन पर रेडियो के गहरे प्रभाव का एक छोटा–सा प्रतीक है। ऐसे सैकड़ों उदाहरण दिए जा सकते हैं जहां रेडियो ने गांवों और गांववालों के जीवन में अपने कार्यक्रमों के माध्यम से कई छोटे–बड़े बदलाव किए हैं।

रेडियो ने ग्रामीण जनजीवन के साथ जनमानस में भी अनेक परिवर्तन किए हैं। आज से 40–45 वर्ष पहले के गांवों के बारे में सोचिए। वातावरण अशिक्षा और अंधविश्वास से भरा हुआ था जिसमें नए प्रगतिशील विचारों के लिए कोई स्थान ही नहीं था। जब परिवार नियोजन कार्यक्रम प्रारंभ हुआ और प्रचारकर्ता गांवों में जाते थे तो कई जगह उन्हें मारपीट, गाली–गलौज का सामना करना पड़ता था। मन में एक ही बात बसी थी कि बच्चे भगवान की देन हैं और सरकार उनके निजी मामले में दखल क्यों दे। कुछ ही वर्षों में अगर गांवों में परिवार नियोजन की बात सुनी जाने लगी या प्रचारकर्ताओं का स्वागत होने लगा तो इसके पीछे सबसे बड़ा योगदान रेडियो का ही रहा जिसने नियमित रूप से अपने ग्रामीण कार्यक्रमों, महिला एवं अन्य कार्यक्रमों के माध्यम से लोगों की, उन्हीं की बोली में, समयवार परिवार नियोजन से जुड़ी भ्रांतियों को दूर किया तथा उसके लिए अनुकूल वातावरण बनाया। छुआछूत जैसी भयावह कुरीतियों को कम करने में तथा अन्य अनेक कुरीतियों की भयावहता कम करने में भी रेडियो की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

ग्रामीण विकास और रेडियो की चर्चा करते समय यह भी कम दिलचस्प संयोग नहीं है कि भारतीय प्रसारण की शुरुआत के वर्षों में 1935 में अविभाजित भारत के पेशावर (उत्तर पश्चिम सीमा प्रांत) और इलाहाबाद (तत्कालीन संयुक्त प्रांत) से निजी श्रोतावर्ग के लिए कार्यक्रम प्रसारित करने प्रारंभ किए। आगे चलकर ये केंद्र आकाशवाणी के नेटवर्क में तो समाहित हुए ही, इन्होंने ग्रामीण प्रसारणों के महत्व की भी आधारशिला रखी। इन दोनों केंद्रों से ग्रामीण कार्यक्रमों की सफलता से प्रेरित होकर आकाशवाणी ने ग्रामीण प्रसारण को अपनी समूची प्रसारण पद्धति का अनिवार्य अंग बना लिया। तय हुआ कि हर आकाशवाणी केंद्र से ग्रामीण श्रोतावर्ग के लिए आधे घंटे का विशेष कार्यक्रम प्रसारित करना चाहिए। इसमें मौसम का हाल, बाजार भाव, कृषि, पशुपालन, हस्तशिल्प, स्वास्थ्य, स्वच्छता आदि विषयों को स्थानीय बोली में सूत्र संचालन के साथ सम्मिश्रित किया जाता था। मनोरंजन के लिए क्षेत्र विशेष का लोकसंगीत होता था।

ग्रामीण प्रसारणों के प्रसार के लिए गांवों में सामुदायिक रेडियो सेट प्रदान करने का प्रयास किया गया। आजादी से पूर्व इस कार्य को प्रांतीय सरकारों की पहल पर छोड़ दिया गया किंतु आजादी के बाद प्रथम पंचवर्षीय योजना में तो सामुदायिक रेडियो श्रवण को बाकायदा योजना के अंग के रूप में शामिल किया गया। केंद्र सरकार ने हर सामुदायिक रेडियो सेट के लिए प्रांतीय सरकारों को आधा खर्च देने की पेशकश की। रेडियो सेटों के रखरखाव का दायित्व प्रांतीय सरकारों को करना था। सन् 1965–66 तक सामुदायिक रेडियो सेटों की संख्या डेढ़ लाख से अधिक हो गई थी। यह योजना थोड़ी–बहुत बाधाओं के बावजूद अपने उद्देश्यों में काफी हद तक सफल रही। (कुछ प्रांतों में तो सामुदायिक रेडियो सेटों की योजना अभी तक सीमित स्तर पर चल रही है)

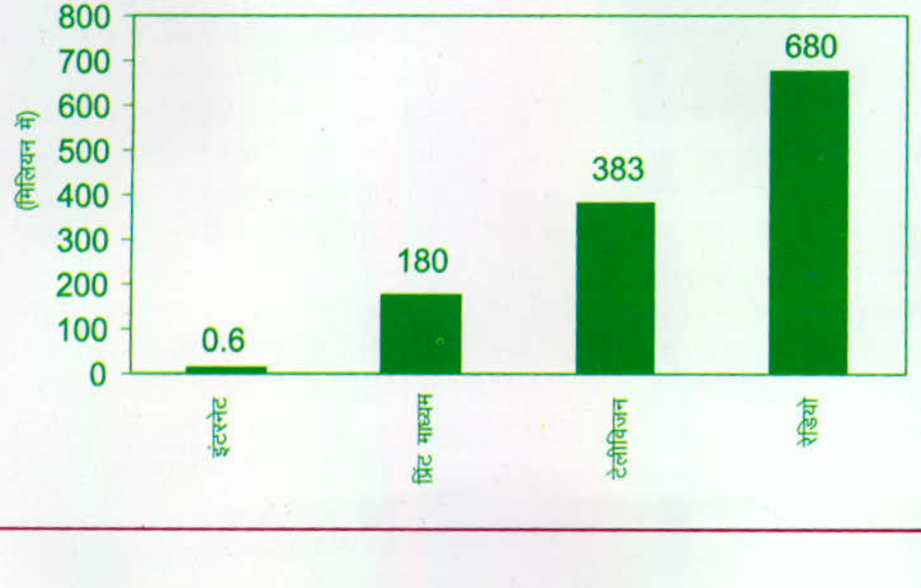

प्रथम पंचवर्षीय योजना दस्तावेज में भारत सरकार ने *विकास में संचार की भूमिका* को परिभाषित करते हुए कहा था "इस योजना के क्रियान्वयन के लिए योजना की व्यापक जानकारी एक मूलभूत कदम है। योजना की प्राथमिकताओं की समझ हर व्यक्ति को बड़े राष्ट्रीय उद्देश्यों के प्रति उसकी भूमिका को पहचानने के योग्य बनाएगी। संचार के सभी उपलब्ध साधनों को विकसित किया जाना चाहिए, चाहे लिखित माध्यमों से या उच्चरित शब्दों के माध्यम से" आकाशवाणी ने तुरंत ही प्रथम पंचवर्षीय योजना के इस आह्वान को आत्मसात कर लिया और विकास में जनमाध्यम के नाते अपनी भूमिका निर्वाह का दायित्व संभाल लिया।

आकाशवाणी ने इस बात को गहराई से महसूस किया कि देश की अधिकांश आबादी गांवों में रहती है जो अशिक्षित होने के कारण अखबार नहीं पढ़ सकती। दूरदर्शन का विकास नहीं हुआ था इसलिए राष्ट्र और राष्ट्र की सरकार को सर्वाधिक अपेक्षाएं भी स्वाभाविक रूप से रेडियो से थीं। इसीलिए उसने विकास प्रक्रिया में अपने योगदान के लिए कार्यक्रमों को उसी स्वरूप में ढाला।

यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि आकाशवाणी के ग्रामीण कार्यक्रम, ग्रामीण विकास का बहुत बड़ा संसाधन बने। इस प्रक्रिया को और प्रभावशाली बनाने के लिए कार्यक्रमों के सामान्य प्रसारण के अलावा अनेक रणनीतियां बनाई गईं।

सन् 1956 में यूनेस्को के सहयोग से पुणे (तत्कालीन पूना) में रेडियो एवं किसानों में तालमेल के लिए 'रेडियो रूरल फोरम' बनाए गए। पुणे केंद्र से फोरम के लिए आधे घंटे का

आकाशवाणी

भारत में रेडियो प्रसारण की शुरुआत पिछली सदी में बीस के दशक के पूर्वार्द्ध में हुई। पहला कार्यक्रम 1923 में 'रेडियो क्लब ऑफ बंबई' द्वारा प्रसारित किया गया। इसके बाद 1927 में प्रसारण सेवा का गठन मुबंई और कोलकाता में प्रयोग के तौर पर किया गया। तत्पश्चात सरकार ने कंपनियों को अपने नियंत्रण में ले लिया और भारतीय प्रसारण सेवा के नाम से उनका परिचालन आरंभ किया। 1936 में इसे आकाशवाणी (आल इंडिया रेडियो) नाम दिया गया। 1947 में भारत की स्वतंत्रता के समय आकाशवाणी के 6 केंद्र और 18 ट्रांसमीटर थे। इसके प्रसारण की कवरेज क्षेत्र की दृष्टि से 2.5 प्रतिशत और जनसंख्या के लिहाज से मात्र 11 प्रतिशत थी। अब आकाशवाणी नेटवर्क में 208 केंद्र हैं, जिनकी कवरेज 90 प्रतिशत क्षेत्र और समूची 1 अरब से अधिक जनसंख्या तक है। भारत जैसे विविध भाषाओं वाले देश में आकाशवाणी 24 भाषाओं और 146 बोलियों में प्रसारण करता है।

विशेष कार्यक्रम प्रसारित होता था। फोरम में 150 गांवों से चुने गए 20 लोग होते थे और हर फोरम का एक अध्यक्ष एवं एक सचिव होता था। फोरम के लोग किसानों के साथ बैठकर कार्यक्रम सुनते, फिर किसानों के प्रश्नों का उत्तर देते। यदि कोई उत्तर नहीं आता होता तो विशेषज्ञों से पूछकर अगले कार्यक्रमों में उत्तर दिलवाते।

यूनेस्को के डा. पाल न्यूराथ के नेतृत्व में समाजशास्त्रियों के एक समूह ने इस कार्यक्रम का आकलन किया। उनकी रिपोर्ट रेडियो की प्रशंसा से भरी हुई थी।

"...आशाओं से बढ़कर सफलता फोरम वाले गांवों में ज्ञान की वृद्धि चमत्कारिक है जबकि बिना फोरम वाले गांवों में यह लगभग नगण्य है। फोरमों ने स्वयं को निर्णय लेने वाली संस्थाओं के रूप में विकसित कर लिया है और गांवों की सामूहिक भलाई में इनकी भूमिका ग्राम पंचायतों से भी अधिक महत्वपूर्ण हो गई है। फोरम, ग्रामीण जनतंत्र के अत्यंत महत्वपूर्ण औजार बन गए हैं।"

इस प्रयोग की सफलता को देखकर 1959 में हर केंद्र पर फोरम गठित करने का निश्चय किया गया। फोरम के लिए हफ्ते में दो बार कार्यक्रम प्रसारित होने लगे। सन् 1964 तक 7,500 फोरम थे जबकि देश में कुल 30 आकाशवाणी केंद्र थे यानी प्रति केंद्र 250 फोरम। इसी तरह का प्रयोग दक्षिण भारत में हुआ जहां सत्तर के दशक में 'फार्म स्कूल आन एयर' की स्थापना हुई। इसमें किसानों के लिए प्रासंगिक विषय लेकर पूरा पाठ्यक्रम प्रसारित किया जाता था। इसमें श्रोताओं को अपना नाम रजिस्टर कराना पड़ता था। बंगलौर केंद्र ने पाठ्यक्रम के आधार पर परीक्षा लेने की घोषणा की तो 20,000 किसानों ने परीक्षा के लिए प्रार्थनापत्र दिए। बंगलौर विश्वविद्यालय के सहयोग से परीक्षा ली गई और शीर्ष स्थान पाने वाले ग्रामीणों को ट्रैक्टर समेत अनेक आकर्षक पुरस्कार दिए गए।

ट्रांजिस्टर क्रांति के बाद सामुदायिक रेडियो श्रवण योजनाएं पार्श्व में चली गई; लोगों के पास निजी ट्रांजिस्टर होने लगे। कई केंद्रों में निजी स्तर पर 'चर्चा मंडल' जैसे समूह होते हैं जो कृषि कार्यक्रमों में सक्रिय भागीदारी निभाते हैं। इनके अतिरिक्त भी अन्य अनेक विचार आजमाए गए ताकि ग्रामीण कार्यक्रमों को प्रभावशाली बनाया जा सके। इनमें एक विचार था – स्टूडियो से बाहर जाकर किसानों के बीच अधिकाधिक रिकार्डिंग करना। बाह्य रिकार्डिंग के लिए आवश्यक सुविधाएं उपलब्ध कराई गई। कस्बों, गांवों में लगने वाले कृषि मेलों, प्रदर्शनियों में आकाशवाणी की टीमें पहुंचने लगीं। प्रांतीय सरकारों के ग्रामीण विभागों के अधिकारी या कृषि विश्वविद्यालयों के विशेषज्ञ गांवों में पहुंचते तो उनकी बात गांव से बाहर बड़े दायरे में रेडियो के माध्यम से पहुंच जाती। आकाशवाणी केंद्रों पर कृषि कार्यक्रम अधिकारी के नेतृत्व में कृषि एवं गृह एकांश की स्थापना भी ऐसा ही एक और विचार था जो कृषि कार्यक्रमों को प्रभावशाली बनाने में कारगर रहा। इस एकांश में एक कृषि रिपोर्टर एवं आलेख लेखक को भी रखा गया। इस एकांश को कृषि के साथ ग्रामीण विकास के हर पहलू पर कार्यक्रम नियोजन तथा निर्माण की जिम्मेवारी सौंपी गई। कृषि कार्यक्रमों को क्षेत्र विशेष के लिए प्रभावपूर्ण बनाने के लिए तथा उनमें सभी प्रकार के विषयों के समावेश के लिए कृषि सलाहकार समितियों का गठन किया गया है जिसमें आकाशवाणी केंद्र के प्रसारण क्षेत्र से संबद्ध कृषि एवं ग्रामीण विकास से जुड़े सभी विभागों के अधिकारी एवं अन्य विशेषज्ञ शामिल होते हैं। ये समिति कृषि एवं ग्रामीण विकास संबंधी तीन महीनों के कार्यक्रमों की योजना बनाने में महत्वपूर्ण सलाह देती है तथा ये सुनिश्चित करती है कि कोई भी विषय छूटने न पाए।

वर्तमान में आकाशवाणी केंद्रों से आमतौर पर किसानों एवं ग्रामीणों के लिए तीन प्रकार के कार्यक्रम प्रसारित होते हैं – सुबह–सुबह कृषि संबंधी सलाह का कार्यक्रम कि आज के दिन किसानों को क्षेत्रीय मौसम एवं जलवायु के मद्देनजर क्या–क्या करना उचित होगा। दोपहर को प्रायः कृषि के आधुनिक पहलुओं पर चर्चा की जाती है। शाम को आधा या पौने घंटे का मुख्य कार्यक्रम स्थानीय बोली में होता है। इस कार्यक्रम में कृषि, पशुपालन, बागवानी, हस्तशिल्प, कुटीर उद्योग से लेकर स्वास्थ्य, स्वच्छता समेत ग्रामीण जीवन के हर पहलू पर कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं। कृषि, बागवानी, पशुपालन आदि विविध क्षेत्रों के विशेषज्ञ नई से नई कृषि तकनीकों, उपकरणों, बीजों, प्रजातियों आदि की जानकारी देते रहते हैं। सरकारी अधिकारी केंद्र सरकार एवं राज्य सरकार की विविध योजनाओं की जानकारी प्रदान करते हैं जिनसे ग्रामीण लाभ उठा सकें। किसानों को होने वाली किसी भी प्रकार की समस्याओं का समाधान भी विशेषज्ञों द्वारा कराया जाता है। कृषि विश्वविद्यालयों द्वारा या संस्थाओं द्वारा किए जा रहे नए–नए अनुसंधानों के विषय में भी बताया जाता है। मौसम का हाल, प्रमुख मंडियों के बाजार भाव आदि भी कार्यक्रम का आवश्यक अंग होते हैं। अंधविश्वासों, लड़के–लड़की में भेद मिटाने, नशामुक्ति, शिक्षा, साक्षरता का प्रसार करने, छुआछूत, जाति भेद मिटाने, सांप्रदायिक सद्भाव बढ़ाने आदि के लिए भी तरह–तरह के कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं। लोकसंगीत एवं लोकनाट्य भी इन कार्यक्रमों का अनिवार्य अंग होते हैं। इस कार्यक्रम को प्रायः दो कलाकार स्थानीय बोली में बातचीत की अनौपचारिक एवं आत्मीय शैली में प्रस्तुत करते हैं। इन कलाकारों की ग्रामीणों के बीच

लोकप्रियता किसी के लिए भी ईर्ष्या का कारण बन सकती है। बड़े आकाशवाणी केंद्रों पर (जैसे दिल्ली केंद्र) शाम का कार्यक्रम दो भागों में प्रसारित होता है। एक भाग कृषि संबंधी विषयों को केंद्र में रखता है जबकि दूसरा भाग ग्रामीण जीवन एवं ग्रामीण विकास पर केंद्रित रहता है। आमतौर पर शाम के कार्यक्रमों के कुछ दिन महिलाओं, युवाओं और बच्चों को समर्पित किए जाते हैं। ग्रामीण महिलाओं, युवाओं और बच्चों को अभिव्यक्ति प्रदान करने वाला यह एक सशक्त मंच बनकर दायित्व निभाता है। यह उनकी आवश्यकता वाले कार्यक्रम को लाता ही है तथा उनमें छुपी प्रतिभाओं को भी उजागर करता है। ग्रामीण कार्यक्रमों की महिला कम्पीयर्स ने पुरुष कम्पीअरों के साथ कार्यक्रम प्रस्तुत करके जागरूकता और स्त्री–पुरुष समानता का एक स्वस्थ वातावरण बनाया है।

ग्रामीण उद्योगों, कुटीर उद्योगों को विकसित करने में भी रेडियो ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। अनेक पारंपरिक हस्तशिल्प कलाओं को संरक्षण देने तथा लुप्त होने से बचाने में इसने सार्थक हस्तक्षेप किया। हस्तशिल्प विकास की सरकारी योजनाओं की जानकारी, कुटीर उद्योगों के ऋण की व्यवस्था कैसे हो, उनका विपणन कैसे हो, आदि अनेक विषयों पर नियमित जानकारी दी जाती है। साथ ही कुशल हस्तशिल्पियों, कुटीर उद्योगों में सफलता पाने वाले उद्यमियों से भेंटवार्ताएं प्रसारित कर उन्हें मंच देने एवं बेरोजगारों को स्वरोजगार हेतु प्रेरित करने में भी रेडियो की भूमिका सराहनीय रही है।

ग्रामीण विकास में एक कार्यक्रम श्रृंखला ने बहुत उल्लेखनीय भूमिका निभाई है, वो है *आकाशवाणी गांव में*। इस कार्यक्रम में आकाशवाणी की टीम एक गांव विशेष में जाती है जहां विभिन्न सरकारी विभागों के अधिकारी तथा विशेषज्ञ भी एकत्रित होते हैं। इस कार्यक्रम के माध्यम से एक गांव का संपूर्ण विकास, गांव में चल रही सरकारी योजनाओं की समीक्षा, विकास के रास्ते में आ रही रुकावटें या कमियां सामने आती हैं तथा अधिकारियों का पक्ष भी ग्रामीणों तक पहुंचता है और एक सार्थक संवाद होता है।

वर्तमान में आधुनिक संचार तकनीकों का लाभ उठाते हुए लगभग हर केंद्र से 'फोन इन कार्यक्रम' नियमित रूप से प्रसारित होते हैं जिनमें विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञ या उच्च सरकारी अधिकारी सीधे–सीधे ग्रामीणों के सवाल एवं समस्याएं सुनते हैं तथा उनके उत्तर देते हैं। इससे जहां उच्च अधिकारियों को विभिन्न सरकारी योजनाओं के क्रियान्वयन के संबंध में जमीनी वास्तविकताओं का पता लगता है वहीं ग्रामीणों को अपनी बात सीधे–सीधे उच्चाधिकारियों, विशेषज्ञों तक पहुंचाने का अवसर मिलता है। यह संवाद हमारे लोकतंत्र को भी एक मजबूत आधार प्रदान करता है। फोन इन कार्यक्रम का संचालन भी संबंधित विषय पर अधिकाधिक जानकारी दिलवाकर इसे सफल बनाने में योगदान देता है।

आदिवासी क्षेत्रों के दूरदराज गांवों में विभिन्न जनजातीय कार्यक्रमों की भूमिका भी विशेष उल्लेखनीय रही है। चाहे मध्य प्रदेश का बस्तर जैसा क्षेत्र हो या पूर्वोत्तर प्रदेश या अंडमान निकोबार द्वीप समूह या झारखंड का आदिवासी अंचल या उड़ीसा के आदिवासी क्षेत्र; यहां आकाशवाणी केंद्रों ने स्थानीय जनजातीय बोलियों में कार्यक्रम प्रसारित करके जिस जागरूकता का प्रसार कर आदिवासियों का शोषण रोकने का प्रयास किया है, सरकारी योजनाओं का लाभ दिलाने या साक्षरता का प्रसार करने जैसे प्रयास करके जनजातियों को राष्ट्र की मुख्यधारा में लाने में सहयोग दिया है, वह भी ग्रामीण विकास में रेडियो की भूमिका का सराहनीय अध्याय है।

ग्रामीण कार्यक्रमों के नियमित प्रसारण का यह अर्थ कदापि नहीं है कि आकाशवाणी ने ग्रामीण विकास का सरोकार मात्र इन्हीं कार्यक्रमों पर छोड़कर अपने कर्तव्य की इतिश्री कर ली है। किसी भी आकाशवाणी केंद्र से ग्रामीण कार्यक्रमों को छोड़कर जो बाकी कई घंटों का तीन सभाओं में प्रसारण होता है उसमें भी काफी कुछ ऐसा होता है जो ग्रामीणों के लिए लाभप्रद होता है। सामान्य कार्यक्रमों में जो वार्ताएं, परिचर्चाएं, रूपक, भेंटवार्ताएं आदि प्रसारित होते हैं उनमें ग्रामीण विकास से भी जुड़े विषय होते हैं। साथ ही विविध प्रकार के कानूनी मुद्दों, उपभोक्ता संरक्षण, मानवाधिकार संबंधी विषयों या अन्य सामाजिक आर्थिक, पर्यावरण संबंधी या वैज्ञानिक विषयों से ग्रामीण जन भी लाभान्वित होते हैं। साहित्यिक, सांस्कृतिक या अन्य कार्यक्रमों में भी वे बढ़–चढ़कर भागीदारी निभाते हैं। शैक्षिक कार्यक्रमों से ग्रामीण बच्चे भी लाभ उठाते हैं। केंद्र के महिला कार्यक्रमों में सप्ताह के कुछ दिन ग्रामीण महिलाओं के लिए तय किए जाते हैं। उद्योग या श्रमिकों के कार्यक्रमों से भी वे जानकारियां प्राप्त करते हैं। यूं भी आमतौर पर किसी भी कार्यक्रम के ग्रामीण श्रोता ही अधिक होते हैं।

आकाशवाणी की त्रि–स्तरीय प्रसारण योजना (राष्ट्रीय स्तर, क्षेत्रीय स्तर तथा स्थानीय स्तर) में स्थानीय रेडियो केंद्रों की योजना एक अभिनव कदम है। लगभग 80 स्थानीय रेडियो केंद्र वर्तमान में प्रसारण कर रहे हैं। ये केंद्र छोटे शहरों या कस्बों में खोले गए हैं जिनका उद्देश्य स्थानीय संस्कृति, कला को अभिव्यक्ति प्रदान करना है। यूं कई ज़िलों में एक आकाशवाणी केंद्र होता था जिससे गांव की प्रतिभाओं के लिए अपेक्षाकृत कम अवसर थे। स्थानीय रेडियो केंद्र पूरी तरह स्थानीय

आकाशवाणी समाचार और समसामयिक विषय

1939–40 में आकाशवाणी से 27 समाचार बुलेटिन प्रसारित होते थे जबकि इस समय रोजाना 346 बुलेटिन प्रसारित होते हैं। इसकी कुल प्रसारण अवधि 42 घंटे 30 मिनट की है। इनमें से 88 बुलेटिन दिल्ली से घरेलू सेवा में प्रसारित होते हैं, और 45 क्षेत्रीय समाचार यूनिटें प्रतिदिन 64 भाषाओं और बोलियों में 194 क्षेत्रीय समाचार बुलेटिन प्रसारित करती हैं। एआईआर एफ एम, दिल्ली से हर घंटे न्यूज हेडलाइंस प्रसारित की जाती हैं। एआईआर न्यूज आन फोन की शुरुआत 1998 में की गई। यह सेवा निर्दिष्ट फोन नंबरों पर अंग्रेजी और हिंदी में ताजा समाचार सुर्खियां (न्यूज हेडलाइंस) उपलब्ध कराती हैं। आकाशवाणी चेन्नई ने तमिल भाषा में न्यूज आन फोन सेवा शुरू की। समाचार सेवा प्रभाग प्रासंगिक विषयों पर अनेक समसामयिक कार्यक्रम प्रसारित करता है। इनमें परिचर्चाएं, प्रश्नोत्तर, समाचार, फीचर, रेडियो ब्रिज आदि शामिल हैं।

प्रतिभाओं को अवसर देने के लिए ही हैं। इन केंद्रों से ग्रामीण प्रतिभाओं को सामने लाने का एक और अवसर मिला है।

राष्ट्रीय स्तर के प्रसारणों में भी ग्रामीण विकास के विविध पहलुओं को भली–भांति उजागर किया गया है। आकाशवाणी के अखिल भारतीय कार्यक्रम में 'कागज से धरती तक' क्रम में अनेक ग्रामीण योजनाओं के क्रियान्वयन का लेखा–जोखा प्रस्तुत किया गया है। जैसे इंदिरा आवास योजना, ग्रामीण पेयजल योजना, प्रधानमंत्री आवास योजना, ग्रामीण गरीबी उन्मूलन योजनाएं, ग्रामीण स्वरोज़गार योजनाएं इत्यादि। इसी प्रकार एक अन्य शृंखला *जनमंच* में केंद्रीय मंत्रियों को आमंत्रित करके देशभर के आकाशवाणी केंद्रों से प्राप्त जनसाधारण के प्रश्नों के उत्तर दिलवाए जाते हैं। इस कार्यक्रम में कृषि मंत्री व ग्रामीण विकास मंत्री भी कई बार आ चुके हैं। राष्ट्रीय कार्यक्रम में ग्रामीण साक्षरता, महिला साक्षरता आदि के मुद्दों को भी प्रभावी रूप से उठाया गया है। अन्य अनेक ग्रामीण विषयों/समस्याओं पर कई प्रकार के कार्यक्रमों का समावेश किया गया है। आकाशवाणी की राष्ट्रीय प्रसारण सेवा, जो रात्रिकालीन प्रसारण करती है तथा लगभग पूरे देश में पहुंचती है, अपने पत्रिका कार्यक्रम *विविधा* में लगातार ग्रामीण विकास से जुड़े विविध विषयों पर जानकारी देती रहती है। इनके अतिरिक्त आकाशवाणी महानिदेशालय द्वारा कुछ विशेष धारावाहिक भी प्रसारित किए जाते रहे हैं जिनका मूल उद्देश्य ग्रामीण जीवन में जागरूकता का प्रसार करना रहा। *तिनका तिनका सुख* एक ऐसी ही धारावाहिक नाटक शृंखला थी जिसमें ग्रामीण जीवन की अनेक समस्याओं को बड़ी अनौपचारिकता एवं आत्मीयता से उठाया गया। *तरु* धारावाहिक भी ग्रामीण जीवन से संबंधित था जिसमें दलित जीवन को केंद्र बिंदु में रखा गया था। कुछ अन्य धारावाहिकों में भी ग्रामीणों की भागीदारी उत्साहवर्धक रही और उन्होंने ज्ञान के प्रसार में भरपूर भूमिका निभाई।

ग्रामीण प्रतिभाओं को राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय मंच प्रदान करने में भी आकाशवाणी का अनूठा योगदान रहा है। चाहे ग्रामीण कार्यक्रम के लिए लोकसंगीत हो या केंद्र के अन्य संगीत कार्यक्रमों में लोकसंगीत का प्रसारण हो, आकाशवाणी से नए–नए कलाकारों के स्वर परीक्षण की तथा उन्हें विभिन्न ग्रेड देने की स्थापित प्रक्रिया है। ये कलाकार रेडियो के माध्यम से लोकप्रिय हुए हैं तथा आकाशवाणी की संगीत सभाओं के माध्यम से इन्हें अलग पहचान मिली। इनमें अनेक कलाकार या उनकी मंडलियां हैं जिन्होंने बिल्कुल सुदूर गांव से उभरकर अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी कार्यक्रम दिए हैं। ये कलाकार अनेक देशों में 'फेस्टिवल ऑफ इंडिया' जैसे कार्यक्रमों में अपने लोकसंगीत की छाप छोड़कर आए हैं। अब उन्हें निजी तौर भी विदेशों में आमंत्रित किया जाता है।

विभिन्न कार्यक्रमों के साथ–साथ विभिन्न आकाशवाणी केंद्रों से प्रसारित नाटकों, झलकियों तथा अखिल भारतीय कार्यक्रम में प्रसारित नाटकों का भी उल्लेख अत्यंत आवश्यक है जिन्होंने कई दशकों से ज्वलंत राष्ट्रीय, सामाजिक मानवीय समस्याओं को उठाया है तथा सामाजिक कुरीतियों, अंध–विश्वासों के विरुद्ध आवाज़ उठाई है। इन्होंने एक मौन सामाजिक क्रांति में अपनी सार्थक भूमिका निभाई है। ग्रामीण परिवेश में पिछले 50 वर्षों में आमूलचूल बदलाव आया है। जातपांत, ऊंच–नीच, छुआछूत, लड़के–लड़की में भेद, नारियों की दशा, विधवाओं की स्थिति, नशा या निरक्षरता जैसे अनेक मोर्चों पर उल्लेखनीय सफलता मिली है। इनमें रेडियो की अपनी एक भूमिका है। स्वास्थ्य संबंधी जागरूकता लाने में भी रेडियो का योगदान काफी महत्वपूर्ण रहा है। बच्चों का टीकाकरण या झाड़फूंक की बजाय डाक्टर के पास जाना या सुरक्षित प्रसव या अनेक भयावह रोगों को देवी प्रकोप न मानकर इलाज के लिए आगे आने में भी रेडियो प्रसारणों का बड़ा योगदान है।

आज के संचार परिदृश्य में आकाशवाणी को अपनी भूमिका पर, तमाम उपलब्धियों के बावजूद, विचार करने की आवश्यकता है। सबसे बड़ी चुनौती है आकाशीय चैनलों द्वारा परोसे जा रहे सस्ते मनोरंजन की। इसके लिए रेडियो को नई से नई विधाओं के द्वारा अपने कार्यक्रमों विशेषकर ग्रामीण कार्यक्रमों की लोकप्रियता, प्रासंगिकता एवं उपयोगिता को बनाए रखना होगा। इसके लिए इन कार्यक्रमों को अधिकाधिक रोचक, श्रोता सहभागी, उपयोगी बनाने की आवश्यकता है। आज नई से नई विधाओं के साथ–साथ नई से नई तकनीकों के माध्यम से गांव–गांव तक और हर ग्रामीण तक पहुंचना समय की आवश्यकता है ताकि गांवों की नई पीढ़ी आकाशीय चैनलों की चमक–दमक में न उलझ पाए।

एक बात और भी महत्व की है। अभी तक राष्ट्रीय स्तर पर प्रसारित होने वाला कोई कृषि कार्यक्रम नहीं है। राष्ट्रीय स्तर पर साहित्य, संस्कृति, फिल्म, विज्ञान आदि के लिए तो नियमित कार्यक्रम होते हैं किंतु कृषि के लिए नहीं। अब यूं भी देश में लाखों प्रगतिशील कृषक हैं जो सुशिक्षित हैं और नई से नई कृषि तकनीकों का प्रयोग करना चाहते हैं तथा दुनियाभर में हो रहे कृषि क्षेत्र के परिवर्तनों के साथ चलना चाहते हैं। राष्ट्रीय स्तर पर कृषि कार्यक्रम ऐसे उन्नत कृषकों के लिए तो अत्यंत उपयोगी होगा ही साथ ही देशभर के कृषकों, ग्रामीणों के लिए भी एक सार्थक मंच का काम करेगा। यूं गांवों के इस देश में आवश्यकता तो एक अलग कृषि चैनल की है जिसे शुरू करने की घोषणा प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने स्वतंत्रता दिवस की 56वीं वर्ष गांठ पर दिए अपने भाषण में की तो है, यह चैनल कब तक शुरू हो पाएगा, यह अभी तय नहीं है। किंतु इसमें कोई शक नहीं है कि कृषि चैनल ग्रामीण विकास में रेडियो की भूमिका को और प्रभावशाली बनाएगा। ❑

के. 210, सरोजिनी नगर,
नई दिल्ली–110023

"मैं सारी संस्कृतियों का प्रतिनिधि होने का दावा करता हूं क्योंकि मेरा धर्म तो, चाहे उसे जो संज्ञा दी जाए, सारी संस्कृतियों की पूर्णता चाहता है। मैं जहां भी जाता हूं वहीं मुझे घर जैसा लगता है क्योंकि मैं दूसरे धर्मों का भी उतना ही आदर करता हूं जितना अपने धर्म का करता हूं।"

महात्मा गांधी

ग्रामीण विकास में टी.वी. की भूमिका

☞ दलीप सूद

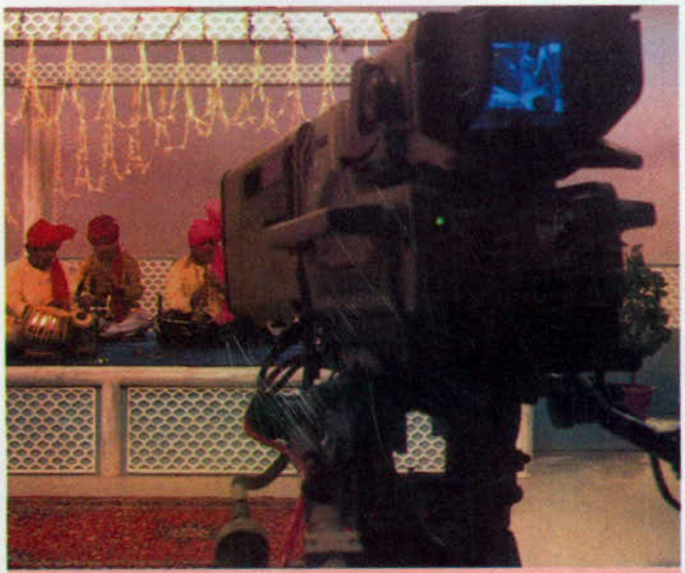

संचार के किसी भी माध्यम की बुनियादी भूमिका या शर्त होती है कि वह सूचना प्रदान करे, लोगों को शिक्षित करे और मनोरंजन प्रदान करे। टी.वी. इन तीनों ही कसौटियों पर न केवल खरा उतरता है बल्कि इन तीनों को ही सर्वाधिक और संप्रेषणीय ढंग से साध पाने में भी समर्थ है। टी.वी. एक प्रभावशाली माध्यम है और बड़े पैमाने पर लोगों को प्रभावित करता है। ग्रामीण जनजीवन पर वर्तमान कार्यक्रमों के प्रभावों का ब्यौरा देते हुए लेखक ने इस संदर्भ में कुछ सुझाव भी दिए हैं कि किस तरह के कार्यक्रम ग्रामीणों पर ज्यादा प्रभाव छोड़ सकते हैं।

आज के संचार माध्यमों में सर्वाधिक प्रभावशाली माध्यम है टीवी. यानी छोटा परदा। मौजूदा समय में उपलब्ध संचार माध्यमों में प्रसार की दृष्टि से टी.वी. बेशक सबसे आगे नहीं है लेकिन असरदारी के लिहाज से टी.वी. ने न केवल प्रिंट मीडिया को, बल्कि अन्य सभी संचार माध्यमों को काफी पीछे धकेल रखा है।

देखे, सुने और पढ़े जा सकने की समग्रीभूत गुंजाइश के कारण ही टी.वी. ने अन्य संचार माध्यमों को अपने से पीछे छोड़ रखा है। इसी संगम ने टी.वी. के असर को गहरा और सटीक कर दिया है, साथ ही उसके प्रति लोगों के आकर्षण में भी दिनोंदिन इजाफा होने की स्थिति पैदा कर दी है।

टी.वी. के प्रति व्यापक जनाकर्षण के ग्राफ का क्रमशः चढ़ते जाना इसलिए भी संभव हुआ है क्योंकि टी.वी. के रूप में संचार माध्यम की बुनियादी भूमिका का सर्वतोमुखी सध पाना भी सार्थक हुआ है। संचार के किसी भी माध्यम की बुनियादी भूमिका और एक तरह से शर्त यह होती है कि यह (1) मनोरंजन प्रदान करे; (2) सूचना प्रदान करे, और (3) लोगों को शिक्षित करे। टी.वी. इन तीनों ही कसौटियों पर न केवल खरा उतरता है बल्कि इन तीनों को ही सर्वाधिक प्रभावी और संप्रेषणीय ढंग से साध पाने में भी समर्थ है। मनोरंजन प्रदान करना तो टी.वी. का मुख्य उद्देश्य है ही, साथ ही साथ इसी मनोरंजन की चाशनी में लपेटकर वह लोगों को नाना प्रकार की सूचनाएं भी उपलब्ध कराता है और अपने प्रकट तथा भांति–भांति के अंतर्निहित संदेशों के जरिए देखने वालों को शिक्षित भी करता है। सपाट सूचनाओं और सीधी शिक्षा के जो सूत्र अमूमन नीरस ही रह जाने के कारण लोगों को आकर्षित करने में नाकाम रहकर निशाने से चूके तीर की तरह सिर के ऊपर से गुजर जाते हैं, वे भी टी.वी. की रंगरंगीली और मनोरंजक दुनिया में न केवल लोगों के आकर्षण का केंद्र बनते हैं बल्कि गौर से समझे भी जाते हैं।

हालांकि ऐसी भी कई घटनाएं यदा–कदा प्रकाश में आती हैं जब टी.वी. पर किसी विशेष कार्यक्रम को देखकर बच्चों का कोमल मानस कुछ गलत करने पर उतारू हो जाता है और परिणामस्वरूप अंग–भंग की सीमा तक आकर वे स्वयं मुसीबत में फंस जाते हैं। इसके अलावा ऐसा भी कभी–कभार होता है, जब किसी आपराधिक या जासूसी सीरियल से विचार (आइडिया) ग्रहण करके कुछ लोग उसी अंदाज में अपराध कर बैठते हैं। लेकिन खतरों की ये आशंकाएं वैसी ही हैं जैसाकि विज्ञान का दुरुपयोग। विज्ञान या उससे संचालित कोई भी तकनीकी जितनी सुविधाएं अपने साथ लाती है उतनी ही खतरों की

आशंकाएं भी उसके साथ जुड़ी रहती हैं। खतरे दरअसल विज्ञान या उससे संचालित किसी तकनीकी में नहीं बल्कि उसके उपयोग की समझ और विवेक के अभाव के नतीजे हैं। बहरहाल, इन खतरों से भी कम से कम इतना तो शुभ संकेत मिलता ही है कि छोटे परदे का यह संचार माध्यम अपने आप में किस कदर प्रभावी है।

टी.वी. की सघन प्रभावशीलता कई क्षेत्रों में असर करती है। जीवन से जुड़े लगभग हर क्षेत्र में टी.वी. व्यापक रूप से प्रभावकारी है और जीवन की तमाम गतिविधियों में आज इसकी छाप और उसका असर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। ऐसा ही क्षेत्र है **ग्रामीण विकास** जोकि छोटे परदे की रंगीली दुनिया और उसके विभिन्न कार्यक्रमों के तहत अवतरित होते तमाम प्रत्यक्ष तथा अंतर्निहित संदेशों से बहुविध प्रभावित होता है। ग्रामीण विकास से जुड़े लगभग प्रत्येक संदर्भों को टी.वी. के जरिए न केवल अधुनातन की सूचना मिलती है बल्कि इस संबंध में पर्याप्त शिक्षा भी मिलती है कि ग्रामीण विकास के संदर्भ विशेष को किस तरह से संचालित किया जाए अथवा इस सिलसिले में कार्ययोजना को किस भांति निर्धारित किया जाए।

आज गांवों में भी टी.वी. का खासा प्रसार हुआ है और ग्रामीणजन भी इस छोटे परदे के सामने टकटकी लगाकर बैठे नजर आते हैं। दूरदराज तक के हर गांव में तो टी.वी. का प्रसार अभी नहीं हुआ है – बिजली ही भारत के आधे से अधिक गांवों में अभी कायदे से नहीं पहुंची है, ऐसे में टी.वी. हर गांव या हर घर में होने की तो कल्पना भी नहीं की जा सकती–लेकिन टी.वी. के प्रति ग्रामीण जनमानस में जो आकर्षण है उससे स्पष्ट है कि टी.वी. के प्रसार के मामले में गांवों और शहरों का विभेद अब मिट गया है। छोटे परदे की व्याप्ति के लिहाज से देखें तो हर बदलता कैलेंडर भारत के ग्रामीण समुदाय को शहरों के और करीब ला देता है। इंस्टीट्यूट ऑफ रिसर्च ऑन मास मीडिया द्वारा किए गए एक राष्ट्रीय सर्वेक्षण के अनुसार वर्ष 2003 में अप्रैल माह तक देश के कुल 32.07 प्रतिशत गांवों में टी.वी. की पहुंच हो गई थी, जबकि वर्ष 2002 की इसी अवधि तक यह प्रतिशत 31.44 और वर्ष 2001 में 30.68 रहा। जिन गांवों तक टी.वी. का प्रसार हो चुका है उनमें से औसतन 46.72 प्रतिशत घरों में वर्ष 2003 के अप्रैल माह तक टी.वी. सेट स्थापित हो चुके थे – यह प्रतिशत सिक्किम में सबसे कम (7.38) तथा केरल में सबसे अधिक (83.51) आंका गया। गांवों में टी.वी. सेट स्थापित किए जाने की रफ्तार भी वर्ष–प्रति वर्ष बढ़त पर है – वर्ष 2002 में औसतन 44.36 प्रतिशत ग्रामीण घरों तक टी.वी. सेट पहुंच चुके थे जबकि वर्ष 2001 में यह प्रतिशत 42.66 ही दर्ज किया गया था।

यह तो है आंकड़ों की बात, जो बताती है कि हमारे जिन गांवों तक टी.वी. का प्रसार हो चुका है, वहां भी घर–घर तक टी.वी. के सेट नहीं पहुंच पाए हैं। लेकिन इससे यह अर्थ नहीं निकाला जा सकता कि जिन ग्रामीण घरों में टी.वी. सेट नहीं हैं, वे छोटे परदे की जादुई दुनिया से वंचित हैं। तमाम आधुनिकता के बावजूद हमारे गांवों की बुनावट आज भी इतनी समष्टिगत और आत्मीय है कि आम ग्रामीण के लिए इसमें कोई फर्क नहीं कि उसके अपने घर में टी.वी. सेट है या नहीं। टी.वी. सेट का मालिक कोई एक व्यक्ति हो सकता है, लेकिन उस पर प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों और उनकी शिक्षा–सूचना–मनोरंजन का काम गांव का हर व्यक्ति उठाता है। अपने दैनिक जीवन से लेकर ग्रामीण विकास के विभिन्न संदर्भों में उन शिक्षाओं तथा सूचनाओं का आवश्यकतानुसार इस्तेमाल भी हर व्यक्ति के अधिकार में होता है और उन्हें वह समय–समय पर क्रियान्वित भी करता है।

टी.वी. के सघन प्रभाव और उसके कार्यक्रमों में निहित शिक्षाओं व सूचनाओं के ऐसे ही क्रियान्वयनों से ग्रामीण विकास की तस्वीर पूरी होती है। सभी कार्यक्रमों के सभी रूप ग्रामीण विकास के संदर्भ में कारगर भूमिका ही निभाएं, यह भी संभव नहीं। क्योंकि छोटे परदे के मुख्यतः मनोरंजनात्मक होने के कारण उसके हर कार्यक्रम में ऐसे सार–संदेशों की बहुत गुंजाइश भी नहीं रहती, जो विशेषतः विकास की गति और धारा को किसी तरह से प्रभावित कर सकें।

स्पष्ट है कि टी.वी. कार्यक्रमों के विभिन्न रूप ग्रामीण विकास से संबंधित विभिन्न पक्षों को स्वयं में निहित सार–संदेशों के जरिए सीधे तौर पर तो प्रभावित करते ही हैं, साथ ही जनमानस तैयार करके भी असर डालते हैं जिसका नतीजा अक्सर तो कालांतर में, किंतु

तालिका–1

ग्रामीण दर्शकों पर समाचार–आधारित कार्यक्रमों का प्रभाव क्षेत्र

	संख्या	प्रतिशत
कुल दर्शक	1,64,77,411	7.58
पुरुष	1,02,78,609	62.38
महिलाएं	26,13,317	15.86
बच्चे	35,85,485	21.74

*वर्ष 2001 तक की स्थिति

तालिका–2

ग्रामीण दर्शकों पर गैरकथात्मक कार्यक्रमों का प्रभाव क्षेत्र (प्रतिशत में)

	डाक्युमेंटरी	कृषि	शैक्षिक	चैट शो
कुल दर्शक	9.87	12.36	5.79	2.52
पुरुष	36.33	47.58	16.72	40.16
महिलाएं	39.48	40.35	26.58	23.12
बच्चे	24.19	12.07	54.70	36.72

*वर्ष 2001 तक की स्थिति

दूरदर्शन

भारत की राष्ट्रीय प्रसारण सेवा दूरदर्शन विश्व के सबसे बड़े स्थानीय प्रसारण संगठनों में से एक है। भारत जैसे विकासशील देश में दूरदर्शन प्रसारण का विशेष महत्व है, जहां साक्षरता की दर बहुत कम है और विविध संस्कृतियां और अनेक भाषाएं हैं। दूरदर्शन का पहला प्रसारण 15 सितंबर, 1959 को आकाशवाणी भवन, नई दिल्ली में स्थित एक कामचलाऊ स्टूडियो से किया गया। 500 वाट शक्तिवाला ट्रांसमीटर दिल्ली के 25 कि.मी. वृत्ताकार क्षेत्र में कार्यक्रम प्रसारित कर सकता था। वर्ष 1965 में समाचार बुलेटिन के साथ नियमित प्रसारण शुरू हुआ। सात वर्ष बाद मुंबई में दूसरे टेलीविजन केंद्र से प्रसारण सेवा शुरू हुई। 1975 तक कोलकाता, चेन्नई, श्रीनगर, अमृतसर और लखनऊ में भी टेलीविजन केंद्र स्थापित किए जा चुके थे।

भारत में उपग्रह टेक्नोलाजी से संबंधित पहला प्रयोग 1975–76 से सेटेलाइट इंस्ट्रक्शनल टेलीविजन एक्सपेरिमेंट (साइट) कार्यक्रम के अंतर्गत किया गया था। संयोग से सामाजिक शिक्षा के लिए इस तरह की आधुनिक प्रौद्योगिकी उपयोग करने का विश्व में यह पहला प्रयास था। रंगीन प्रसारण की शुरुआत 1982 में नई दिल्ली में एशियाई खेलों के दौरान हुई। इस समय दूरदर्शन के 17 चैनलों से कार्यक्रम दिखाए जा रहे हैं। डी डी नेशनल और डी डी मेट्रो, स्थल ट्रांसमीटरों और उपग्रह, दोनों ही माध्यमों से उपलब्ध हैं। डी डी स्पोर्ट्स, डी डी भारती, डी डी इंडिया (जो पहले डी डी वर्ल्ड था), डी डी ज्ञानदर्शन और 12 क्षेत्रीय चैनल उपग्रह के माध्यम से उपलब्ध हैं। शीघ्र ही दूरदर्शन अपना न्यूज चैनल भी शुरू करने जा रहा है।

दूरदर्शन तीन स्तरों वाली बुनियादी कार्यक्रम प्रसारण सेवा है–राष्ट्रीय, प्रादेशिक और स्थानीय। राष्ट्रीय कार्यक्रम में उन घटनाओं और मुद्दों पर जोर दिया जाता है, जिनमें समूचे राष्ट्र की दिलचस्पी होती है। इन कार्यक्रमों में समाचार और सामयिक विषय, विज्ञान, कला और संस्कृति, पर्यावरण, सामाजिक मुद्दों के बारे में पत्रिका कार्यक्रम और वृत्तचित्र, सीरियल, संगीत, नृत्य, नाटक और फीचर फिल्म शामिल हैं। क्षेत्रीय कार्यक्रम निर्दिष्ट समय पर डी डी नेशनल पर दिखाए जाते हैं, जिन्हें क्षेत्रीय भाषा उपग्रह चैनलों पर भी देखा जा सकता है, जो राज्य विशेष के हितों को पूरा करने के लिए संबद्ध क्षेत्र की भाषा और बोलियों में प्रसारित किए जाते हैं। स्थानीय कार्यक्रम किसी खास स्थान से संबंधित होते हैं और इनमें स्थानीय विषयों और स्थानीय लोगों को शामिल किया जाता है।

कभी–कभार तत्काल भी प्रकट हो जाता है। प्रस्तुत है टी.वी. कार्यक्रमों के विभिन्न रूपों का अलग–अलग विवेचन कि वे ग्रामीण विकास के मामले में कितने और किस तरह प्रभावी साबित होते हैं।

समाचार आधारित कार्यक्रम

इस तरह के टी.वी. कार्यक्रमों में मोटे तौर पर दो प्रकार के कार्यक्रम शामिल हैं – (1) विशुद्ध समाचार कार्यक्रम; और (2) समाचारों तथा सामयिक घटनाओं एवं गतिविधियों पर आधारित कार्यक्रम। छोटे परदे की दुनिया में आज हालांकि ऐसे भी कई चैनल हैं जो हर समय समाचार–आधारित कार्यक्रम प्रसारित करते रहते हैं–उनके कार्यक्रमों का रूप भले ही वाचिक समाचार, रिपोर्ट और इंटरव्यू आदि से लेकर रूपक आदि तक विस्तृत होता है, किंतु सबका आधार समाचार और सामयिकी ही होता है। लेकिन पूर्णतः खबरी चैनलों के बावजूद गांवों में अमूमन वैसे ही चैनल बाहुल्यपूर्वक देखे और पसंद किए जाते हैं जो मनोरंजन और सूचना की अन्य सामग्रियों के साथ ही समाचारों आदि को भी समय–समय पर परोसते हों। इसकी वजह शायद यह है कि ढेर सारे चैनलों के बोझ से आम ग्रामीण आर्थिक सहित तमाम अन्य कारणों के मद्देनजर बचना चाहता है। दूसरे, यह भी कि केबल के जरिए छोटे परदे पर अवतरित होने वाले उपग्रही चैनलों की पैठ शहरों के करीबी गांवों तक थोड़ी–बहुत हो गई है लेकिन दूरस्थ गांवों में उनकी पहुंच आज भी नहीं हो पाई है।

बहरहाल, टी.वी. कार्यक्रमों के विभिन्न रूपों में समाचार आधारित कार्यक्रम एक महत्वपूर्ण खंड की तरह हैं जो प्रतिदिन की घटनाओं से अपने दर्शकों को अवगत कराते हैं लेकिन गांवों में ऐसे कार्यक्रमों के प्रति कोई खास जागरूकता नहीं है। वर्ष 2001 तक की स्थिति के अनुसार समाचार आधारित टी.वी. कार्यक्रमों का प्रभाव क्षेत्र महज 7.58 प्रतिशत दर्शकों तक ही सीमित है। हर रोज के समाचारों को जानने के लिए ग्रामीण जन आज भी टी.वी. को मुख्य जरिया नहीं मानते। इसके लिए वे आज भी अख़बारों पर निर्भर हैं। टी.वी. के समाचारों की भूमिका उनकी दृष्टि में सिर्फ यही है कि उसके जरिए उन्हें तत्काल खबर मिल जाती है लेकिन विस्तार से जानने के लिए उन्हें अखबारों की ही प्रतीक्षा रहती है। समाचारों पर आधारित अन्य कार्यक्रम तो ग्रामीण क्षेत्रों में और भी कम देखे जाते हैं।

जो ग्रामीण वर्ग समाचार आधारित कार्यक्रमों को देखता भी है, उनमें पुरुषों की संख्या सबसे अधिक होती है। महिलाओं और 14 वर्ष की उम्र तक के बच्चों की संख्या तो आधी से भी कम है। (तालिका–1)

छोटे परदे पर समाचार–आधारित कार्यक्रमों के प्रति ग्रामीणजनों में जागरूकता कम होने के बावजूद ऐसे कार्यक्रमों की भूमिका ग्रामीण विकास के सिलसिले में काफी है। ग्रामीण विकास के विभिन्न पहलुओं से संबंधित नई योजनाओं आदि की संकेतात्मक जानकारी उसे इन कार्यक्रमों के जरिए ही पहले–पहल मिलती है।

ग्रामीण विकास के लिहाज से टी.वी. के समाचार आधारित कार्यक्रमों की भूमिका अमूमन यहीं खत्म हो जाती है। नवीन योजनाओं आदि की विस्तृत जानकारी के लिए आम ग्रामीण आगे अखबारों आदि के पन्ने पलटता है और इन योजनाओं से लाभ उठा सकने की प्रविधियों को जानने के लिए विभिन्न सरकारी

कार्यालयों के चक्कर काटता है। समाचारों के वर्णन या विवेचन के लिए अपने देश में अखबारों का जो अंदाज है, उससे किसी प्रविधि की तत्काल जानकारी उपलब्ध करा सकने की उनसे उम्मीद भी नहीं की जा सकती। ऐसे में ले–देकर सरकारी कार्यालय ही बचते हैं, जहां यदि ग्रामीणों को टी.वी. पर देखी–सुनी योजनाओं आदि की प्रविधियों के बारे में तत्काल जानकारी मिल जाती है, तब तो ठीक–अन्यथा समाचार आधारित टी.वी. कार्यक्रमों द्वारा किया गया प्रयास भी व्यर्थ जाता है।

ग्रामीण विकास संबंधी अनेक सार्थक योजनाएं अक्सर इसलिए भी नहीं चल पातीं क्योंकि उनकी प्रथम घोषणा और उनकी प्रविधियों के बारे में स्थानीय स्तर पर व्यावहारिक जानकारियों की उपलब्धता में कोई तालमेल नहीं होता। विभिन्न समाचारों और समाचार– आधारित कार्यक्रमों में आए दिन अनेक सार्थक योजनाओं की राष्ट्रीय मुनादी तो कर दी जाती है, किंतु उसकी प्रविधियों के बारे में कोई भी व्यावहारिक जानकारी गांव के स्तर पर महीनों तक उपलब्ध नहीं रहती। परिणाम यह होता है कि ग्रामीण विकास की हर योजना की घोषणा आम ग्रामीणों को आम तौर पर लफ्फाजी या सब्जबाग लगती है, जिनका सातत्य अंततः ऐसे समाचार आधारित कार्यक्रमों पर ही उनके विश्वास को खंडित करने का परिणाम लाता है।

ग्रामीण विकास के परिप्रेक्ष्य में समाचार आधारित टी.वी. कार्यक्रम निश्चित ही बहुत महत्वपूर्ण योगदान कर सकते हैं बशर्ते कि प्रथम घोषणा का व्यावहारिक 'फालोअप' भी तत्काल और व्यापक रूप से हो।

कृषि कार्यक्रम

कृषि संबंधी टी.वी. कार्यक्रम हालांकि हर चैनल से प्रसारित नहीं होते–शायद व्यावसायिकता का आग्रह उन्हें ऐसे कार्यक्रमों के प्रसारण से रोकता है या फिर वे स्वयं पर गंवई होने का ठप्पा नहीं लगाना चाहते–लेकिन इस तरह के कार्यक्रम ग्रामीण क्षेत्रों में देखे जाने वाले गैर–कथात्मक टी.वी कार्यक्रमों में सबसे आगे हैं। फिलहाल मात्र एक चैनल

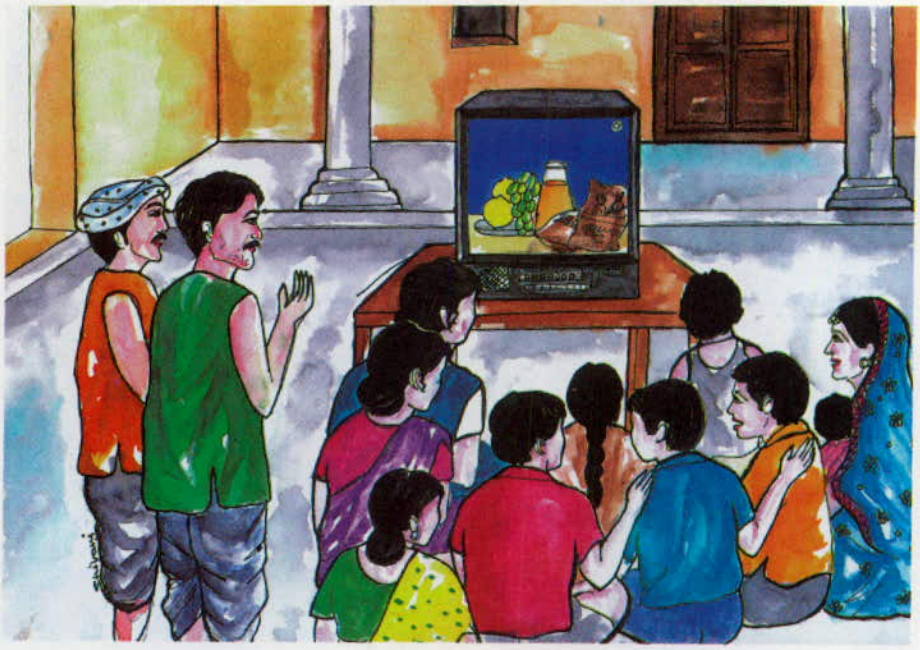

दूरदर्शन ही कृषि संबंधी कार्यक्रमों को नियमित रूप से प्रसारित कर रहा है।

ऐसे कार्यक्रमों से भले ही समग्र ग्रामीण विकास का मकसद नहीं सधता, किंतु भारतीय गांवों की गतिविधियों की मुख्यधारा चूंकि कृषि से ही संबंधित है इसलिए इस तरह के कार्यक्रमों से कम से कम कृषि संबंधी समझ तो विकसित होती ही है, जो अंततः कुल मिलाकर ग्रामीण विकास की धारा को ही गति देने का काम करती है। बुआई, रोपाई से लेकर फसल कटाई तक के हर खेतिहर चरण कृषि संबंधी टी.वी. कार्यक्रमों के विषय होते हैं और इनके जरिए आम ग्रामीणों को खेती के संबंध में तमाम नई तकनीकों आदि की जानकारी मिलती है। हमारे गांवों में खेती की नई तकनीकों और अधुनातन अनुसंधानों आदि से लाभ उठाने की प्रवृत्ति परंपरागत रूप से हालांकि कम ही है, फिर भी ऐसे कार्यक्रमों के जरिए सफल खेती के जिन तरीकों पर प्रकाश डाला जाता है, उनके बारे में अवगत होने का चलन ग्रामीण जनों में है। जिज्ञासा के इस चलन को अमल रूप में तब्दील करने की प्रवृत्ति में कम दर से ही सही किंतु वर्ष–दर–वर्ष इज़ाफा भी होता जा रहा है। उम्मीद की जानी चाहिए कि एक दिन ऐसा भी आएगा जब खेती संबंधी सार्थक दिशा–निर्देश टी.वी. के कृषि कार्यक्रमों से प्राप्त हो सकेंगे और तब छोटे परदे के अन्य चैनल भी शायद कृषि को एक महत्वपूर्ण विषय के तौर पर स्वीकार करें।

वर्ष 2001 तक की स्थिति के अनुसार टी.वी. सीरियल जैसे एकमात्र कार्यक्रम–रूप को छोड़कर कृषि संबंधी टी.वी. कार्यक्रमों के दर्शक गांवों में सर्वाधिक हैं। इस अवधि के दौरान ऐसे कार्यक्रमों का प्रभाव क्षेत्र 12.36 प्रतिशत ग्रामीण जनों पर देखा गया। इन कार्यक्रमों के दर्शकों में 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चों की संख्या हालांकि काफी कम है, किंतु कृषिकर्म से सीधा सरोकार रखने वाले पुरुषों व महिलाओं की तादाद खासी अच्छी है। संतोष की बात यह है कि कृषि कार्यक्रमों को देखने वाले पुरुषों और महिलाओं की तादाद में बहुत ज्यादा अंतर भी नहीं है। इन कार्यक्रमों के दर्शक वर्ग में 2001 तक की स्थिति के अनुसार पुरुषों की संख्या 47.58 प्रतिशत रही जबकि महिलाओं की तादाद 40.35 प्रतिशत तथा बच्चों की 12.07 प्रतिशत थी। (तालिका–2)

कृषि संबंधी कार्यक्रमों ने अतीत में ऐसे भी कई अभियानों को सफल बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, जिनके परिणामस्वरूप कई क्षेत्रों के गांवों में समृद्धि आई और ग्रामीण विकास का उद्देश्य महत्तर रूप से सध सका। हरितक्रांति की सफलता और दुग्ध क्रांति की गुजरात की कामयाबी में पशुपालकों की व्यापक जागरूकता आदि के पीछे ऐसे कार्यक्रमों का भी खासा योगदान रहा है – हालांकि तब

टी.वी. की अपेक्षा रेडियो कहीं ज्यादा प्रभावी माध्यम साबित हुआ था क्योंकि तब टी.वी. का प्रचलन और प्रसार उतना नहीं था।

डाक्युमेंटरी फिल्म

छोटे परदे पर समय–समय पर प्रसारित होने वाली डाक्युमेंटरी फिल्मों का भी ग्रामीण विकास के मामले में काफी योगदान है। हर विषय पर बनी डाक्युमेंटरी फिल्में तो नहीं, बल्कि ग्रामीण विकास से संबंधित विषयों पर बनी इस कोटि की फिल्में अपने मकसद में काफी हद तक कारगर होती हैं।

इस तरह की फिल्मों का अपना एक समृद्ध इतिहास है और वे हमेशा से लोगों को शिक्षित तथा सूचित करते हुए उनके व्यापक जागरण का लक्ष्य पूरा करती रही हैं। ऐसी फिल्में पहले मात्र बड़े परदे के लिए बनती थीं और सिनेमाघरों के अलावा गांव–गांव तक प्रचार अभियानों के जरिए उनका प्रदर्शन होता था। लेकिन अब टी.वी. फार्मेट में भी बनने लगी हैं,

छोटे परदे पर प्रसारित डाक्युमेंटरी फिल्मों का प्रभाव क्षेत्र गांवों में भी व्यापक है। टी.वी. कार्यक्रमों के अन्य कई रूपों की अपेक्षा आम ग्रामीण जन इन फिल्मों को बहुतायत से देखते हैं। इन फिल्मों से चूंकि उन्हें जानकारियां मिलती हैं, इसलिए भी उनकी रुचि बनी रहती है। वर्ष 2001 तक टी.वी. देखने वाले ग्रामीण जनों में से 6.87 प्रतिशत लोगों तक ऐसी डाक्युमेंटरी फिल्मों का प्रभाव रहा है।

विभिन्न विषयों पर वास्तविक दृष्टि से जानकारियां देने के लिए ख्यात डाक्युमेंटरी फिल्मों के ग्रामीण दर्शनों के बारे में एक रोचक तथ्य यह भी है कि पुरुषों की अपेक्षा महिलाएं इन फिल्मों को ज्यादा देखती हैं और नई से नई बातें जानने के प्रति स्वाभाविक रूप से उतावले समझे जाने वाले बच्चों की संख्या इस बाबत पुरुषों से भी कम है। देखें (तालिका 2)

डाक्युमेंटरी फिल्मों ने जहां ग्रामीण विकास से संबंधित विभिन्न पक्षों की प्रगति आदि के बारे में यथास्थिति की जानकारी आम ग्रामीण को दी है, वहीं उन्हें प्रेरित भी किया है कि वे विभिन्न तौर–तरीके अपनाकर और विभिन्न सरकारी योजनाओं से लाभ उठाकर अपना जीवनस्तर बेहतर करते हुए अपने परिवेश के विकास की ओर उन्मुख हों। इन फिल्मों ने सामुदायिक विकास की दिशा में भी आम ग्रामीणों को जागरूक बनाने का काम किया है।

पर्यावरण और जनस्वास्थ्य के प्रति चेतना फैलाने में भी डाक्युमेंटरी फिल्मों का खासा योगदान रहा है। इन विषयों पर बनी फिल्मों ने लोगों को यह तो हालांकि नहीं बताया कि पर्यावरण की संरक्षा और जनस्वास्थ्य की उपलब्धि किस तरह होती है, लेकिन उन्हें इस संबंध में सचेत और सतर्क जरूर कर दिया है। बाकी का काम लोगों ने आमतौर पर स्वयं कर लिया। डाक्युमेंटरी फिल्में ग्रामीण विकास के क्षेत्र में तब और कारगर हो सकेंगी, यदि इनके विषयों में पर्याप्त विविधता तथा स्थानीयता को अपेक्षाकृत और ज्यादा व्यावहारिक बनाया जाए।

धारावाहिक

टी.वी. कार्यक्रम का यह रूप न केवल शहरों में बल्कि गांवों में भी सर्वाधिक लोकप्रिय है। लेकिन इसके बावजूद यह रूप ग्रामीण विकास के सरोकारों से सबसे कम जुड़ता है। कारण यह है कि टेलीविजन के बुनियादी तत्वों की त्रयी (शिक्षा, सूचना व मनोरंजन) में से मनोरंजन का तत्व ऐसे कार्यक्रमों के जरिए कुछ इस तरह उभरता है कि बाकी दोनों तत्व अपेक्षाकृत दब से जाते हैं और कभी–कभी तो उनके लिए कोई गुंजाइश भी नहीं बचती।

आमतौर पर मनोरंजन का ही डंका पीटने वाले ऐसे कार्यक्रमों का असर भी व्यापक और गहरा होता है। यह असर शहरों की अपेक्षा गांवों में कहीं अधिक खुलकर नजर आता है, जहां वह सोच–समझ के तौर–तरीकों से लेकर पहनावे के रंग–ढंग तक जा पसरता है। इस तरह से देखें तो धारावाहिकों में बंधे टी.वी. कार्यक्रम ग्राम विकास के विभिन्न पक्षों में से केवल उस पक्ष में प्रभावकारी माने जा सकते हैं, जो रहन–सहन तथा जीवनस्तर से संबंधित हो। समग्र ग्रामीण विकास की दृष्टि से यह पक्ष भी कम महत्वपूर्ण नहीं है क्योंकि हर विकास की परिणति अंततः जीवनस्तर में सुधार के रूप में ही होती है।

इस तरह सीमित ही सही, किंतु ग्रामीण जनजीवन को तुरत–फुरत प्रभावित करने वाले टी.वी. धारावाहिक का प्रभाव क्षेत्र टी.वी. देखने वाले ग्रामीण दर्शकों के 13.65 प्रतिशत हिस्से तक है। वर्ष 2001 की इस स्थिति से स्पष्ट है कि टी.वी. धारावाहिक ग्रामीणजनों के बीच इस हद तक सर्वाधिक लोकप्रिय हैं कि टी.वी. कार्यक्रमों के अन्य सभी रूप पीछे छूट जाते हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में टी.वी. धारावाहिकों की व्यापक लोकप्रियता को देखते हुए ग्रामीण विकास के क्षेत्र में उनके उपयोग की सुनियोजित कोशिशें की जानी चाहिए। सरकारी, गैर सरकारी स्तर पर विशिष्ट रूप से ऐसे धारावाहिक बनाए और प्रसारित किए जाने चाहिए जो विशेषकर ग्रामीण महिलाओं से संबंधित हों और अपने सार–संदेशों के जरिए ग्रामीण विकास के विभिन्न पक्षों के संदर्भ में उनके योगदान को नियोजित कर सकें। तभी टी.वी. कार्यक्रमों के इस अत्यंत लोकप्रिय रूप का समग्र ग्रामीण विकास के लिए सार्थक उपयोग हो सकेगा, नहीं तो इनके जरिए रहन–सहन के स्तर पर परिलक्षित मात्र सतही और क्षणिक बदलाव अपना छद्म रचते ही रहेंगे।

टेलीफिल्म

यह विधा नितांत टेलीविजनी विधा है जिसका प्रचलन टी.वी. के प्रसार के चलते ही हुआ है। धारावाहिक के वर्चस्व के कारण टेलीफिल्मों को टी.वी. की दुनिया की मुख्यधारा तो नहीं कहा जा सकता, लेकिन धारावाहिकों के बाद कथात्मक वर्ग में इसी का स्थान है। एक बार में ही किसी कहानी के समाप्त होने की गुंजाइश के कारण ऐसे लोग भी टेलीफिल्में खूब देखते हैं जो धारावाहिक की टुकड़े–टुकड़े में बंटी कहानी के लिए कई–कई दिनों तक इंतजार नहीं कर पाते या अपनी अन्य व्यस्तताओं के कारण उन्हें इंतजार करने लायक समय नहीं मिल पाता।

यही वजह है कि ग्रामीण क्षेत्रों में टेलीविजन देखने वाले पुरुषों और बच्चों की संख्या धारावाहिक देखने वाले पुरुषों और बच्चों से कहीं अधिक है। इसकी वजह यही है कि ग्रामीण पुरुष और बच्चे टी.वी. धारावाहिक देखने से इसलिए आमतौर पर कतराते हैं

तालिका–3

ग्रामीण दर्शकों पर कथात्मक कार्यक्रमों का प्रभाव क्षेत्र (प्रतिशत में)

	धारावाहिक	टेलीफिल्म	प्रहसन (हास्य संबंधी)
कुल दर्शक	13.65	11.92	10.83
पुरुष	9.62	37.58	21.39
महिलाएं	64.14	27.96	42.27
बच्चे	22.24	34.46	36.34

*वर्ष 2001 तक की स्थिति

तालिका–4

ग्रामीण दर्शकों पर भागीदारी–प्रधान कार्यक्रमों का प्रभाव क्षेत्र (प्रतिशत में)

	क्विज़ शो	गेम शो
कुल दर्शक	3.68	2.46
पुरुष	17.46	20.44
महिलाएं	23.72	31.14
बच्चे	58.81	48.42

*वर्ष 2001 तक की स्थिति

क्योंकि कहानी का अलग हिस्सा जानने के लिए उन्हें दिनों–दिन इंतजार करना पड़ता है जबकि भारतीय गांवों का जनजीवन कुछ इस तरह का है कि उसमें पुरुषों और बच्चों के लिए किसी सुनिश्चित दिन और सुनिश्चित समय पर नियमित रूप से वक्त निकाल पाना बहुधा संभव नहीं होता। देखें (तालिका 3)

ग्रामीण विकास में योगदान की दृष्टि से टेलीफिल्म सर्वाधिक कारगर विधाओं में से एक है। टेलीफिल्मों की शुरुआत ही इस नजरिए से हुई कि विकास संबंधी अभियानों को बढ़ावा देने के लिए छोटे परदे की घर–घर तक पहुंची ताकत का किस तरह उपयोग किया जाए। यही कारण है कि अधिकतर टेलीफिल्मों के विषय विकास संबंधी रहे हैं और उनमें भी ग्रामीण विकास संबंधी विषयों का वर्चस्व रहा है क्योंकि भारतीय आबादी का बाहुल्य गांवों से ही ताल्लुक रखता है।

ग्रामीण विकास के विभिन्न पक्षों में टेलीफिल्में इसलिए भी प्रभावी साबित हुई हैं क्योंकि वे रूखा उपदेश नहीं देतीं। टेलीफिल्मों की प्रभावशीलता का यह एक प्रमुख कारण है, जो खासकर ग्रामीण परिप्रेक्ष्य में उनके सार–संदेशों को आमतौर पर व्यर्थ नहीं जाने देता।

इसलिए ग्रामीण विकास के विभिन्न पहलू विषय के तौर पर जिस तरह से टेलीफिल्मों में चित्रित हुए हैं, उस तरह और उस प्रभावशीलता से टी.वी. की किसी अन्य विधा या रूप में अब तक नहीं हुए हैं। सामुदायिक विकास से लेकर जन स्वास्थ्य, जल संरक्षण, पर्यावरण संरक्षण, बाल विकास, आवास निर्माण, ग्रामोद्योग, स्वच्छता आदि तमाम विषयों पर बनी टेलीफिल्मों ने समय–समय पर ग्रामीण जनमानस को प्रेरित करते हुए ग्राम विकास को गति दी है। साक्षरता के प्रति जनजागरूकता का प्रसार करने में तो टेलीफिल्मों ने उल्लेखनीय भूमिका का निर्वाह किया है। ऐसी कई फिल्में मौजूदा दौर में भी दिखाई जा रही हैं।

प्रहसन

इस कोटि के टी.वी. कार्यक्रम एकांकी और धारावाहिक दोनों ही तरह के होते हैं। इन कॉमेडी यानी हास्य प्रधान कार्यक्रमों को कथात्मक वर्ग के अंतर्गत माना जाता है।

प्रहसन का दर्शक वर्ग भी अच्छा–खासा है। माना जाता है कि जो समाज या वर्ग जितने अधिक तनावों से होकर गुजरता होता है, उनके बीच प्रहसन उतना ही अधिक देखा जाता है। इसीलिए आज के शहरी जनजीवन में, खासकर महानगरों में, जहां जीवनशैली अत्यंत गतिशील है और जहां जीवनयापन की शर्त ही कमोबेश तनावकारी है; प्रहसन खूब देखे जाते हैं। शहरों के निरंतर फैलने और ग्रामीण जनजीवन पर भी शहरी छाप के बढ़ते जाने के कारण तनाव का प्रसार गांवों में भी हो गया है। इस नाते और हंसने–हंसाने के प्रति मनुष्य की स्वाभाविक रुचि के कारण प्रहसन की लोकप्रियता गांवों में भी कम नहीं है।

ऐसी लोकप्रियता के बावजूद प्रहसनों का योगदान ग्रामीण विकास के मामले में सीधा–सीधा नहीं है। आमतौर पर प्रहसनों के विषय ऐसे होते हैं जिनसे ग्रामीण विकास के किसी पक्ष का कोई सरोकार नहीं होता। उल्टे, कई प्रहसनों में तो ग्रामीण परिवेश का प्रयोग ही उपहास के सृजन के लिए किया जाता है। परिस्थितियों और रूढ़ जीवनशैली पर व्यंग्य करने वाले प्रहसन ही ग्रामीण विकास के संदर्भ में इस नजरिए से थोड़ा–बहुत योगदान कर पाते हैं कि उन्हें देखकर आम ग्रामीणजनों की रूढ़ मानसिक तथा अवैज्ञानिक सोच में बदलाव आता है। यह बदलाव अंततः ग्रामीण विकास को जितना प्रभावित कर पाता है, उतने ही उपयोगी साबित होते हैं ग्रामीण विकास की दृष्टि से प्रहसन।

शैक्षिक कार्यक्रम

इस तरह के टी.वी. कार्यक्रमों के अंतर्गत प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों में किसी विषय विशेष पर तथ्यात्मक और सिलसिलेवार जानकारियों का बाहुल्य रहता है। विभिन्न विषयों पर प्रसारित होने वाले पत्रिका जैसे टी.वी. कार्यक्रम भी इसी कोटि के अंतर्गत आते हैं।

छोटे परदे पर फिलहाल कई ऐसे चैनल हैं जो शैक्षिक कार्यक्रमों के प्रति ही पूरी तरह समर्पित हैं। उनके केंद्रीय विषय प्रकृति, पर्यावरण, वन्य जीवन, जंतु संसार आदि से संबंधित हैं। लेकिन जैसाकि केबल के जरिए प्रसारित अन्य उपग्रही चैनलों का हाल है, ये चैनल भी दूरस्थ गांवों तक अपनी पैठ नहीं बना पाते। पाठ्यक्रम आधारित भी एक चैनल है, जिसकी पहुंच तो कई उपग्रही चैनलों से बेहतर है लेकिन गांवों में उसके प्रति जनरुचि उतनी नहीं है।

शैक्षिक कोटि के टी.वी. कार्यक्रम, जो और जितने गांवों में उपलब्ध हो पाते हैं, उन्हें देखते तो वैसे अमूमन हर तरह के दर्शक हैं किंतु उनमें बच्चों की संख्या सर्वाधिक है। वर्ष 2001 तक की स्थिति के अनुसार टी.वी. के ग्रामीण दर्शकों के बीच शैक्षिक कार्यक्रमों का प्रभाव क्षेत्र 14 वर्ष तक के आयु वर्ग में 54.70 प्रतिशत रहा। ऐसे कार्यक्रमों को देखने वालों में महिलाओं का प्रतिशत 26.58 तथा पुरुषों का 16.72 प्रतिशत आंका गया। (तालिका 2)

ग्रामीण विकास में योगदान की दृष्टि से शैक्षिक कार्यक्रम सीधे तौर पर तभी प्रभावी हो पाते हैं जब उनके विषय ग्रामीण विकास के किसी पक्ष से प्रत्यक्ष तौर पर जुड़ते हों। ऐसा हालांकि बहुत कम होता है क्योंकि शैक्षिक कार्यक्रमों का मुख्य सरोकार अलग होता है। पर्यावरण संरक्षण और जीव–जंतुओं के अस्तित्व को बनाए रखना जरूर शैक्षिक कार्यक्रमों का पसंदीदा विषय है और इसके जरिए ग्रामीण विकास के अभियानों में प्रकारांतर से मदद भी मिलती है। वैसे, शैक्षिक फिल्में ग्रामीणजनों को स्वस्थ व जागरूक मानस बनाने में भी मदद करती हैं। इस लिहाज से भी ग्रामीण विकास के मामले में उनकी भूमिका प्रकारांतर से रेखांकित होती है।

लेकिन सच तो यह है कि छोटे परदे की दुनिया में शैक्षिक कार्यक्रमों का चलन ही अभी ठीक से स्थापित नहीं हो पाया है। ऐसे कार्यक्रमों में प्रस्तुति की दृष्टि से और रचनात्मकता तथा विषयवस्तु की दृष्टि से स्पष्ट व व्यावहारिक ग्रामोन्मुखता का समावेश किया जा सके, तो ग्रामीण विकास की दिशा में शैक्षिक फिल्में मील का पत्थर साबित हो सकेंगी। इसके अलावा भाषा के स्तर पर भी इन कार्यक्रमों को जमीन पर उतरना होगा।

चैट शो

जिन टी.वी. कार्यक्रमों के अंतर्गत दो या दो से अधिक लोग आपस में बैठकर किसी विषय पर चर्चा या विचार–विमर्श करते हैं, उन्हें 'चैट शो' कहते हैं। इसका विषय कुछ भी हो सकता है–घर, परिवार, आपसी संबंध, मानव व्यवहार, घटना, सरोकार, मुद्दा वगैरह। ग्रामीण विकास के विभिन्न पहलू भी इस तरह के कार्यक्रमों के विषय हो सकते हैं, लेकिन दुर्भाग्य से आमतौर पर ऐसा होता नहीं है। 'चैट शो' के कार्यक्रमों में सर्वाधिक उपेक्षित कोई विषय है तो वह ग्रामीण विकास और उससे संबंधित मसले ही हैं। वैसे, कभी–कभार ग्रामीण विकास के मसले भी 'चैट शो' के विषय बन जाते हैं लेकिन ऐसा होना ऊंट के मुंह में जीरे जैसा ही होता है। आमतौर पर घर, परिवार या सामाजिक सरोकार का कोई मुद्दा ही इन कार्यक्रमों का विषय बनता है। सामाजिक मामलों से संबंधित विषय भी 'चैट शो' के पसंदीदा विषय हैं किंतु ऐसे कार्यक्रमों को समाचार–आधारित कार्यक्रमों की श्रेणी में गिना जाता है।

दरअसल 'चैट शो' के अंतर्गत जिन विषयों को उठाया जाता है, उनका संबंध ग्रामीण विकास से नहीं होता। ग्रामीण विकास और उनसे संबंधित विषयों को यदि 'चैट शो' के दौरान चर्चा का विषय बनाए जाने का चलन चल निकले, तो ऐसे कार्यक्रम काफी उपयोगी हो पाएंगे। विमर्शित विषय के पक्ष–विपक्ष में सांगोपांग चर्चा की अपनी प्रकृति के कारण 'चैट शो' ग्रामीण विकास की दिशा में काफी महत्वपूर्ण भूमिका निभाने की गुंजाइश रखते हैं।

क्विज़ शो

इस तरह के टी.वी. कार्यक्रमों को जन–भागीदारी प्रधान कार्यक्रमों की श्रेणी में गिना जाता है, क्योंकि ऐसे कार्यक्रमों में हिस्सेदारी के लिए जनसामान्य को आमंत्रित किया जाता है और उनसे किसी एक या अधिक विषय से संबंधित प्रश्न पूछे जाते हैं और विभिन्न समूहों में बंटे भागीदार अथवा प्रतियोगियों को उनका उत्तर देना होता है।

आम दर्शकों को अपने साथ जोड़ने के लिए इस तरह के कार्यक्रम छोटे परदे के लगभग हर चैनल पर प्रसारित किए जाते हैं इनके विषयों में भी खासी विविधता होती है, लेकिन ग्रामीण विकास और उससे संबंधित मसलों का यहां भी पर्याप्त अभाव है। पर्यावरण संरक्षण और जन स्वास्थ्य से संबंधित कुछ मसले जरूर 'क्विज़ शो' की प्रस्तुतियों के दौरान समय–समय पर उठाए गए हैं, जिनसे ग्रामीण विकास संबंधी अभियानों को प्रत्यक्ष न सही मगर अप्रत्यक्ष और प्रकारांतर से लाभ अवश्य पहुंचा है।

सीधे प्रेरित करने की क्षमता हालांकि 'क्विज़ शो' में टी.वी. कार्यक्रमों के अन्य रूपों की तुलना में कुछ कम है, मगर अपने सामान्य दर्शकों की जानकारी बढ़ाकर वे उन्हें ग्रामीण विकास के विभिन्न अभियानों को सफल बनाने की दिशा में प्रकारांतर से प्रेरित अवश्य कर सकते हैं बशर्ते कि उनके विषयों के तौर पर ग्रामीण विकास से संबंधित मसले भी शामिल हों और भाषा से लेकर विषय सरोकार तक के संदर्भ में अधिकतम स्थानीयता का समावेश हो पाए। कहना न होगा कि ग्रामीण विकास के क्षेत्र में 'क्विज़ शो' का नियोजन अभी समुचित रूप से नहीं हो पाया है।

गेम शो

टी.वी. कार्यक्रमों का यह रूप भी जन–भागीदारी प्रधान कार्यक्रमों को कोटि मे गिना जाता है। 'क्विज़ शो' की तरह ही इनमें भी लोगों की हिस्सेदारी होती है और लोग ही इन कार्यक्रमों की सफलता का पैमाना होते हैं।

जहां तक गांवों का प्रश्न है, 'गेम शो' को वहां 'क्विज़ शो' की अपेक्षा भी कम देखा जाता है, क्योंकि जिस तरह के खेलों की इन कार्यक्रमों के दौरान प्रतियोगिता की जाती है, वैसे खेल ग्रामीण जनजीवन से मेल नहीं खाते। फिर भी खेलों के प्रति रुझान और आकर्षण चूंकि बड़ों की अपेक्षा बच्चों में अधिक होता है, इसलिए गांवों में जितने भी लोग 'गेम शो' की प्रस्तुतियां देखते हैं, उनमें बच्चों की संख्या सर्वाधिक होती है।

गेम शो के विषय यदि ग्रामीण विकास के विभिन्न पक्षों से उठाए जाएं और उनमें प्रतियोगिता, खेल यदि ग्रामीण जनजीवन से तादात्म्य स्थापित कर पाएं अथवा ग्रामीण खेलों के अनुरूप हो पाएं, तो इसमें शक नहीं कि ग्रामीण विकास के मामले में गेम शो भी समुचित रूप से योगदान कर पाएंगे। अन्यथा जैसी आज

की स्थिति है, ग्रामीण विकास के मामले में गेम शो की भूमिका लगभग अप्रभावी ही है।

स्पॉट

इस कोटि के अंतर्गत दस सेकेंड से लेकर एक मिनट तक के वे टी.वी. कार्यक्रम आते हैं जिनका मकसद कोई न कोई संदेश देना होता है और जिनकी प्रकृति गैर–विज्ञापनी होती है। इस तरह के संदेशों के विषय आमतौर पर सामाजिक सरोकारों से संबंधित होते हैं जिनमें ग्रामीण विकास से जुड़े विभिन्न मसले भी समय–समय पर अवतरित होते हैं।

घोर व्यावसायिक दृष्टिकोण वाले चैनलों को छोड़कर ऐसे तमाम टी.वी. चैनल, जो जागरूक होते हैं और समाज निर्माण के प्रति अपनी भूमिका मानते हैं, समय–समय पर स्पॉटों के माध्यम से प्रसारण करते हैं। विभिन्न सरकारी योजनाएं भी स्पॉटों के माध्यम से प्रोत्साहित की जाती हैं और उन्हें सफल बनाने के लिए प्रकारांतर से जनसामान्य का आह्वान किया जाता है। ग्रामीण विकास से जुड़ी तमाम योजनाएं भी इन स्पॉटों का विषय बनती रही हैं। जनस्वास्थ्य (खासकर पोलियो उन्मूलन, एड्स बचाव, टी.वी. व कुष्ठ का निदान आदि) से लेकर साक्षरता, पर्यावरण संरक्षण, ग्रामीण मार्ग निर्माण जैसे अनेक मसलों पर प्रसारित टेलीस्पॉटों ने ग्रामीण विकास के विभिन्न अभियानों के प्रति जागरूकता का प्रसार करते हुए उन्हें दिशा देने का काम किया है।

अल्पावधिक श्रेणी के इन टी.वी. कार्यक्रमों की उपयोगिता ग्रामीण विकास की दृष्टि से और अधिक बढ़ाए जाने की जरूरत है तथा इसके लिए इस विधा में पर्याप्त गुंजाइश भी है। कम अवधि का होने के कारण इनकी बारंबारता भी ग्रामीण जनमानस पर अनुकूल प्रभाव छोड़ने में समर्थ रहती है।

विज्ञापन

यह कोटि भी छोटे परदे पर अवतरित होने वाली अल्पावधिक प्रस्तुतियों की है लेकिन इसके अंतर्गत प्रसारित संदेशों की प्रकृति व्यावसायिक होती है। विज्ञापन प्रसारित करने वाले के व्यावसायिक हित को साधने में सक्षम ये टी.वी. प्रस्तुतियां भांति–भांति के नए उत्पादों और बाजार में प्रवर्तित तमाम उपभोक्ता सामग्रियों की जानकारी देती हैं तथा उनकी विशिष्टताओं के बारे में बताती हैं। इस लिहाज से ये प्रस्तुतियां लोगों के जीवनस्तर और रहन–सहन को प्रभावित करती हैं।

विज्ञापनों की प्रस्तुतियों का ग्रामीण विकास के मामले में कोई सीधा दखल तो अमूमन नहीं होता, लेकिन जनसामान्य के रहन–सहन और जीवनस्तर को उनके द्वारा जिस तरह प्रभावित किया जाता है, उसका कमोबेश असर ग्रामीण विकास के अभियानों की गति पर भी पड़ता है। शहरों में उपग्रही चैनलों की बहुलता के कारण छोटे परदे पर विज्ञापनों के अवतरित होते ही जहां लोग चैनल बदलकर कुछ और देखने लगते हैं तथा विज्ञापनों के झोंके के गुजर जाने की प्रतीक्षा करते हैं, वहीं गांवों में लोग ऐसा आमतौर पर कम ही करते हैं और विज्ञापनों को भी देखते हैं।

गांवों में विज्ञापन देखने वालों की संख्या हालांकि अल्पावधि श्रेणी में 'स्पॉटों' से अधिक नहीं है, लेकिन जितनी भी है उसमें महिलाओं का जोर ज्यादा है। वर्ष 2001 तक की स्थिति के अनुसार टी.वी. के कुल ग्रामीण दर्शकों में से 4.67 प्रतिशत लोगों तक विज्ञापनों का प्रसार और प्रभाव रहा है।

ग्रामीण विकास में विज्ञापनों को और उपयोगी बनाने तथा गांवों में उन्हें और प्रभावी साबित करने के लिए उनके लहजे में उसी तरह ग्रामीण पुट बढ़ाना होगा जिस तरह कि उनकी रचनात्मकता पर विशेष ध्यान दिया जाता है। **सौभाग्य से भारतीय विज्ञापनों के पीछे सक्रिय मेधा विश्वस्तर की है, इसलिए उम्मीद की जानी चाहिए कि विज्ञापनों की प्रस्तुति जल्दी ही और सुधरेगी जिससे ग्रामीण विकास में उनकी भूमिका अलग से पहचानी जा सकेगी।**

गीत आधारित कार्यक्रम

इस विधा के अंतर्गत प्रस्तुत किए जाने वाले टी.वी. कार्यक्रम गीतों पर आधारित होते हैं। इन कार्यक्रमों के दौरान प्रस्तुत गीत भी कई तरह के होते हैं–फिल्मी, गैर–फिल्मी, भजन आदि।

गीत चूंकि अपने–आप में व्यापक जनरुचि का विषय है, इसलिए गीत आधारित टी.वी. कार्यक्रम भी खूब लोकप्रिय होते हैं। गांवों में भी इस प्रकार के कार्यक्रमों को रुचिपूर्वक देखा जाता है। वर्ष 2001 तक की स्थिति के अनुसार टी.वी. के ग्रामीण दर्शकों में से 8.94 प्रतिशत लोगों तक गीत आधारित कार्यक्रमों का प्रभाव पाया गया। इनमें सर्वाधिक संख्या महिलाओं की 51.16 प्रतिशत दर्ज की गई। पुरुषों की भागीदारी हालांकि सबसे कम 16. 72 प्रतिशत पाई गई, जबकि 14 वर्ष की उम्र के बच्चों का प्रतिशत 32.12 दर्ज किया गया।

लोकप्रियता की ऐसी स्थिति के बावजूद जहां तक ग्रामीण विकास का प्रश्न है, गीत आधारित कार्यक्रम खास प्रभाव नहीं छोड़ पाते–क्योंकि एक तो उनमें प्रस्तुत किए जाने वाले गीत आमतौर पर विशुद्ध मनोरंजनात्मक कोटि के होते हैं, दूसरे उनकी संयोजकात्मक कम्पेयरिंग और विषय आदि भी ग्रामीण विकास के विभिन्न मुद्दों से बहुधा नहीं जुड़ते। हाल में एक प्रयोग के तौर पर कुछ गीत आधारित कार्यक्रमों को साक्षरता विकास से जोड़कर अवश्य दिखाया जा रहा है, जिनके परिणाम प्रकारांतर से ग्रामीण विकास के संदर्भ से ही जुड़ते हैं। इस तरह के कार्यक्रमों में दिखाए जाने वाले गीतों को उनकी श्रव्य–दृश्य प्रस्तुतियों के साथ ही साथ सब–टाइटिलों के जरिए पाठ्यरूप में भी अवतरित किया जा रहा है। गीतों का यह पाठ्यरूप साक्षरता अभियान की सफलता हेतु एक रुचिकर आकर्षण साबित हो रहा है। ❑

एच–454, डी.डी.ए. फ्लैट्स, नारायणा विहार, नई दिल्ली–110028

"आज का मनुष्य जड़ और निर्जीव यंत्रों पर अभिमान करने लगा है। लेकिन मेरी तो यह श्रद्धा है कि मनुष्य रूपी अद्भुत और सूक्ष्म यंत्र दूसरा कौन–सा है? उसे स्वयं ईश्वर ने बनाया है। मनुष्यकृत जड़ यंत्र में चैतन्य नहीं होता। ऐसे यंत्रों पर लोग क्यों अभिमान करते हैं, यह मेरी समझ में नहीं आता।"

महात्मा गांधी

भारत में सामुदायिक रेडियो का भविष्य

☞ हरवीर सिंह

सामुदायिक रेडियो एक ऐसा संसाधन है जो भारत जैसे देश के लिए सूचना प्रसार और मनोरंजन का सबसे उचित और किफायती माध्यम साबित हो सकता है। इस लेख में लेखक ने सामुदायिक रेडियो के बेहतर भविष्य की संभावनाओं को देखते हुए इस संदर्भ में कुछ महत्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत किए हैं।

किसी भी देश या समाज के लिए सूचना का प्रसार आज सबसे महत्वपूर्ण युग में प्रवेश कर गया है, इसलिए आने वाले समय में सूचना की उपलब्धता और उसका बेहतर उपयोग किसी भी क्षेत्र या समुदाय की तकदीर बदलने में सक्षम होगा। लेकिन सूचना का माध्यम क्या हो, इसको लेकर कई तरह के विकल्प और तर्क सामने आ सकते हैं। जहां तक भारत जैसे विकासशील देश का मामला है तो यहां की आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों को देखते हुए एक ऐसा माध्यम ही सफल साबित हो सकता है जो अपनी किफायती कीमत के चलते समाज के सबसे कमजोर वर्ग तक की पहुंच में हो। इसके साथ ही इसके जरिए जानकारी को लोगों तक पहुंचाने के लिए लागत भी कम से कम आए। और वह माध्यम है रेडियो। इसलिए सामुदायिक रेडियो एक ऐसा संसाधन है जो भारत जैसे देश के लिए सूचना प्रसार और मनोरंजन का सबसे उचित माध्यम है। यही वह कारण है जिसके चलते देश में इसके बेहतर भविष्य को लेकर दो राय नही हो सकती है। इसके पक्ष में एक बड़ा तर्क यह भी है कि दूरदराज तक फैले उस ग्रामीण क्षेत्र की जरूरत को इसके जरिए पूरा किया जाना संभव है जहां अभी भी देश की 70 फीसदी आबादी बसर करती है और उसके पास संसाधनों की उपलब्धता भी सीमित है।

इन सभी बातों पर गौर करने के पहले हमें देश में रेडियो की मौजूदा स्थिति और देश में इसके इतिहास पर नजर डालने की जरूरत है। भारत में ब्राडकास्टिंग की शुरुआत 23 जुलाई, 1927 को मुंबई स्थित एक कंपनी इंडियन ब्राडकास्टिंग कंपनी लिमिटेड ने की थी। डेढ़ किलोवाट के ट्रांसमीटर से शुरू किए गए इस प्रसारण को एक माह बाद कोलकाता से भी शुरू कर दिया गया। उसके बाद तत्कालीन ब्रिटिश सरकार ने 1936 में आल इंडिया रेडियो (एआईआर) की स्थापना की। देश की आजादी के साल 1947 में देश में रेडियो के छह स्टेशन थे और यह तीन करोड़ से कुछ अधिक लोगों तक अपना प्रसारण पहुंचाते थे। समय के साथ अब इनकी संख्या 200 को पार कर गई है और लगभग पूरे देश में इनकी पहुंच है। वहीं निजी क्षेत्र के प्रवेश से रेडियो प्रसारण का स्वरूप भी बदल रहा है और यह अधिक व्यावसायिक रूप में सामने आ रहा है। यहां भारत में रेडियो के इतिहास का हवाला देने का एक कारण यह है कि इसकी शुरुआत के कुछ दिनों के बाद ही इसके सामुदायिक स्वरूप की शुरुआत हो गई थी। उद्देश्य था–देश की ग्रामीण जनता तक जानकारी पहुंचाना। उसमें भी कृषि क्षेत्र की तरक्की के लिए किसानों को जरूरी जानकारी पहुंचाने का प्रयास इसका प्रमुख कारण था। यही वजह है कि 1949 में रूरल ब्राडकास्टिंग के लिए प्रायोगिक परियोजना शुरू की गई। सात स्टेशनों से 20 कार्यक्रम शुरू किए गए और गांवों में 200 श्रोता क्लब बनाए गए। ग्रामीण क्षेत्रों में 200 रेडियो सेट वितरित किए गए। रूरल रेडियो फोरम स्थापित किए गए और इनमें 10 से लेकर 200 तक सदस्य बनाए गए। हालांकि सबसे पहले ग्रामीण क्षेत्र के लिए प्रसारण 1935 में इलाहाबाद के पास नैनी और पेशावर स्थित रेडियो स्टेशनों से शुरू हुआ था। ईसाई मिशनरियों के कृषि शोध संस्थानों ने यह शुरू किया था। स्वतंत्रता के बाद गांवों के लिए शुरू किए गए कार्यक्रम के जरिए लोगों के सवालों के जवाब देने की व्यवस्था की गई। इसके अलावा दस मिनट के कार्यक्रम के जरिए लोगों के सवालों के जवाब देने के साथ बाजार और मौसम की जानकारी भी दी जाती थी। इसके बाद रेडियो की लोगों में पहुंच बढ़ी और रेडियो फार्म स्कूल स्थापित किए गए। इनके माध्यम से किसानों को बाकायदा कृषि से जुड़े विषयों पर शिक्षित किया गया। वहीं आल इंडिया रेडियो में फार्म एंड होम यूनिट स्थापित की गई। इसमें खासतौर से कृषि स्नातकों की नियुक्ति की गई और अमेरिका की तर्ज पर फार्म रेडियो आफीसर (एफआरओ) नियुक्त किए गए लेकिन समय के साथ इनको मुख्यधारा में शामिल कर लिया गया। इसके चलते इनकी पहचान भी समाप्त हो गई। इस समय आकाशवाणी के सभी स्टेशनों से 16 भाषाओं में 60 से 90 मिनट के कार्यक्रम ग्रामीण क्षेत्रों के लिए प्रसारित किए जा रहे हैं।

यहां एक और तथ्य बताने की जरूरत है कि छठे दशक में अमेरिकी मदद से कुछ विश्वविद्यालयों में रेडियो स्टेशन शुरू किए गए। पंतनगर कृषि विश्वविद्यालय भी उनमें से एक था। असल में अमेरिका में बहुत पहले से किसानों के अपने रेडियो स्टेशन काम करते रहे हैं और एफआरओ वहां की तर्ज पर ही नियुक्त किए गए थे। उस दौरान देश के हर कृषि विश्वविद्यालय को एक अमेरिकी

☞ कृषि और ग्रामीण विषयों के विशेष संवाददाता, दैनिक हिंदुस्तान

विश्वविद्यालय से जोड़ा गया था क्योंकि भारत को अमेरिकी सहायता (यूएसएड) कार्यक्रम से मदद मिलती थी। इसे बाद में तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने बंद कर दिया था और उस समय किया गया यह महत्वपूर्ण प्रयास अपने शुरुआती दौर में ही शीतयुद्ध की भेंट चढ़ गया। देश में किसानों की तरक्की और हरित क्रांति की सफलता में रेडियो के योगदान के लिए एक उदाहरण काफी होगा। तंजावुर में चावल की किस्म एडीटी–27 किसानों के बीच बहुत लोकप्रिय हुई। इस किस्म की जानकारी किसानों को रेडियो से मिली थी और उसके चलते किसानों ने इस किस्म का नाम ही 'रेडियो चावल' रख दिया।

जहां तक सामुदायिक रेडियो का सवाल है तो उसके लिए सरकार दिशा–निर्देश भी बना चुकी है। एक तरफ इसके चैनल चलाने के लिए शुल्क भी काफी कम रखा गया है साथ ही इसके लिए कम क्षमता के ट्रांसमीटर की तकनीक का जो विकल्प दिया गया है, वह इसे कम खर्चीला भी बनाता है। सामुदायिक रेडियो के अपने महत्व हैं और इसको कई श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। मसलन शहरों में एफएम रेडियो मनोरंजन के साधन से लेकर सामुदायिक रेडियो तक का काम कर सकते हैं।

इन सबसे अलग यहां एक विकल्प समाज के उस वर्ग और देश के उन क्षेत्रों के लिए पेश करने की कोशिश की जा रही है जहां रेडियो की उपयोगिता बाकी जगहों से कहीं ज्यादा साबित हो सकती है। यह क्षेत्र है – ग्रामीण और कृषि क्षेत्र। इस आलेख में ऊपर देश में कृषि और ग्रामीण क्षेत्र के लिए किए जा रहे प्रसारण के बारे में भी बताया गया है। लेकिन अब स्थितियां बदल रही हैं और एक नए तरह के ढांचे और अत्याधुनिक तकनीक पर आधारित होने के साथ ही बेहतर गुणवत्ता की जानकारी मुहैया कराने वाले तंत्र को स्थापित करने की जरूरत है। समय के साथ गांवों और कृषि क्षेत्र में आए बदलाव और इससे जुड़े लोगों के शैक्षिक स्तर व विकास के बारे में उनकी अपेक्षा के अनुरूप तंत्र को विकसित करने की जरूरत है।

देश में यह तंत्र परोक्ष रूप से तब्दील भी

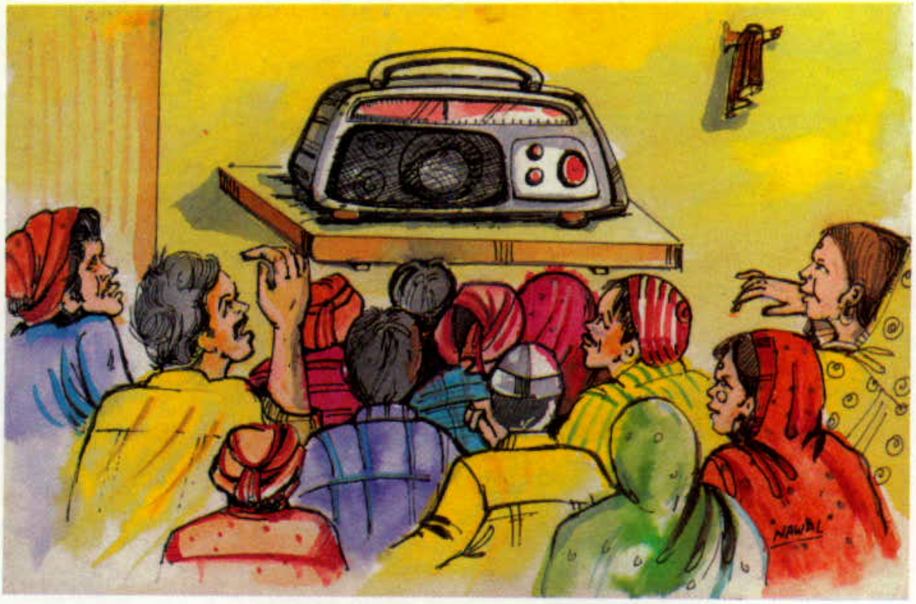

हो रहा है बशर्ते कि यहां दिए जा रहे मॉडल के रूप में उसका उपयोग किया जाए। प्रधानमंत्री ने 'कृषि वाणी' और 'किसान चैनल' देश में शुरू करने की घोषणा इस साल के स्वतंत्रता दिवस के अपने भाषण में की। लेकिन यह मौजूदा समय की जरूरत को पूरा करने वाला विकल्प नहीं बन सकता है, ऐसा मेरा मानना है। **ग्रामीण भारत और कृषि या ग्रामीण अर्थव्यवस्था के दूसरे क्षेत्रों में लगे लोगों की जरूरत को किसी एक राष्ट्रीय चैनल से पूरा किया ही नहीं जा सकता है। यह बात नीति निर्धारकों और इनके बारे में फैसला लेने वाले लोगों को सोचनी होगी।** इसके लिए स्थानीय जरूरतों को जानकर उनको पूरा करने की नीति अपनानी होगी और यह काम स्थानीय भाषाओं के बिना संभव नहीं है क्योकि इस स्वरूप में दी जाने वाली जानकारी से लोग स्वयं को जुड़ा महसूस करेंगे। स्थानीय भाषा से यहां सीधा अर्थ क्षेत्र विशेष की बोलचाल की भाषा से है।

अब बात आती है इस काम को पूरा करने में सक्षम मॉडल की। देशभर में 500 से अधिक जिले हैं। अगर हर जिले में इस तरह स्थानीय एफएम चैनल स्थापित कर दिया जाए जो वहां की जरूरतों को पूरा करता हो तो उद्देश्य को हासिल किया जा सकेगा। अब सवाल उठता है कि इस काम को पूरा करने के लिए एक तंत्र खड़ा करने की जरूरत होगी। लेकिन **वास्तविकता यह है कि यह तंत्र देश के करीब आधे जिलों में खड़ा हो चुका है। और दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002–07) के दौरान इसे देश के हर जिले में खड़ा करने का लक्ष्य रखा गया है। यह तंत्र है – कृषि विज्ञान केंद्र (केवीके) का।** देश में 220 से अधिक केवीके स्थापित हो चुके हैं। इनको चलाने के लिए सरकार करोड़ों रुपये हर साल देती है। इनका जिम्मा स्थानीय स्तर पर किसानों को उनकी जरूरत के आधार पर जानकारी मुहैया कराने के साथ ही उनको खेती की नई तकनीक और बीमारियों पर नियंत्रण के बारे में मदद करने का है। इसलिए हर केवीके के साथ एक रेडियो स्टेशन स्थापित कर सामुदायिक रेडियो का जाल बिछाने के काम को अंजाम दिया जा सकता है। सरकार कृषि और ग्रामीण क्षेत्र में संचार माध्यमों के लिए जो पैसा खर्च करना चाहती है, उसका उपयोग केवीके में रेडियो स्टेशन स्थापित करने में किया जा सकता है। साथ ही देश के अधिकांश जिलों का भौगोलिक आकार एफएम रेडियो की पहुंच में आ सकता है। केवीके में वैज्ञानिकों के साथ ही ऐसे लोगों को भी नियुक्त करने की व्यवस्था की जाए जो रेडियो के तकनीकी और सूचना पक्ष के संचालन में दक्ष हों। यह स्टेशन बहूपयोगी साबित हो सकते हैं। साथ ही इनके लिए प्रसारण का समय भी बहुत लंबा रखने की जरूरत नहीं है क्योंकि स्थानीय जरूरतों को

ध्यान में रखते हुए जो उत्पाद तैयार किए जाएंगे, वह बहुत अधिक भी नहीं होंगे।

यह मॉडल अपने आप में देश के लिए अनूठा कदम साबित हो सकता है क्योंकि केवीके और सामुदायिक रेडियो एक–दूसरे के पूरक के रूप में स्थापित हो सकते हैं। मसलन क्षेत्र में अगर फसलों के लिए किसी नई तकनीक की जानकारी केवीके देना चाहता है तो जहां एक ओर वह रेडियो के माध्यम से क्षेत्र के सभी किसानों तक पहुंच बना सकता है वहीं इसके प्रदर्शन के लिए किए जाने वाले किसी आयोजन की सूचना भी लोगों तक सीधे पहुंचाई जा सकती है। साथ ही साथ बाहर से आए वैज्ञानिकों और विशेषज्ञों की बात भी लोगों तक पहुंचाने के लिए रेडियो स्टेशन का उपयोग किया जा सकता है। यानी लक्षित समूह और उसके लिए काम कर रहे लोगों के बीच यह एक संवाद सूत्र की तरह से काम करेगा। स्थानीय भाषा में कार्यक्रम तैयार करना भी इस तरह के छोटे स्टेशनों के जरिए संभव हो सकेगा और लोगों को इसके साथ जोड़ने में अहम भूमिका निभा सकता है।

केवीके और उसके साथ काम कर रहे सामुदायिक रेडियो स्टेशन के माध्यम से जहां फसलों के लिए जरूरी तकनीक, नई प्रजातियां और बीमारियों से बचाव जैसी अहम सूचना लोगों तक पहुंचाई जा सकती हैं वहीं इसके विपणन से जुड़ी जानकारी भी लोगों तक पहुंचाने का काम इसके जरिए संभव है। मसलन फसलों की मंडियों में दैनिक कीमत और बाजार में उसकी आवक के बारे में जानकारी किसी भी किसान के लिए अहम है। साथ ही राज्य के अन्य हिस्सों और देश के अन्य हिस्सों से लेकर अंतर्राष्ट्रीय बाजार में चल रही कीमतों से तुलना की जानकारी भी लोगों तक पहुंचाई जा सकती है। यहां तक कि जिले में हो रही बारिश का उस दिन किसानों के लिए क्या महत्व है या उसका फसलों पर क्या असर होगा और अब किसानों को क्या कदम उठाने चाहिए, इन सभी बातों की जानकारी देने का काम यह स्टेशन कर सकता है। इसके जरिए फोन इन कार्यक्रम शुरू करके सवाल–जवाब के जरिए सीधे संवाद का माध्यम बनाया जा सकता है।

वास्तविकता यह है कि यह तंत्र देश के करीब आधे जिलों में खड़ा हो चुका है। और दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002–07) के दौरान इसे देश के हर जिले में खड़ा करने का लक्ष्य रखा गया है। यह तंत्र है – कृषि विज्ञान केंद्र *(केवीके)* का।

इस तरह से कहा जा सकता है कि **जिस सूचना क्रांति के तहत इंटरनेट को गांवों तक पहुंचाने की बात की जा रही है, केवीके में रखे कंप्यूटरों के जरिए जहां उससे उपलब्ध जानकारी को इन स्टेशनों के जरिए सभी लोगों में बांटा जा सकता है वहीं समाज की दूसरी जरूरतों को ध्यान में रखते हुए आवश्यक प्रसारण भी इस स्टेशनों के जरिए संभव है।** इसके आगे एक व्यावहारिक बात यह है कि जिस देश के अधिकांश गांवों में बिजली की उपलब्धता को लेकर सवाल खड़ा रहता है वहां टेलीविजन जैसे माध्यम के मुकाबले रेडियो हमेशा बेहतर विकल्प है। जहां यह काम में बाधा नहीं डालता है और इसके हर स्थान पर उपयोग की संभाव्यता है वहीं इसके लिए बिजली की उपलब्धता का मोहताज भी नहीं होना पड़ता है। बीस रुपये के मामूली बैटरी खर्च के जरिए कई माह तक इसका उपयोग संभव है। अब इससे किफायती माध्यम की कल्पना करना कैसे संभव है!

एक महत्वपूर्ण पक्ष है – इन स्टेशनों के संचालन का। इसे सामुदायिक रेडियो की परिभाषा में रखते हुए सामुदायिक स्तर पर भी इसके संचालन का विकल्प है और स्थानीय निकायों को यह जिम्मा दिया जा सकता है। दूसरे, सरकार अब जो केवीके स्थापित कर रही है, उनमें अधिकांश की जिम्मेदारी में गैर–सरकारी संगठनों (एनजीओ) को प्राथमिकता दे रही है। ऐसे में दोनों काम एनजीओ को ही सौंपे जा सकते हैं और अगर एनजीओ ईमानदारी से काम करते हैं तो उनके ऊपर किसी एक विचारधारा को जोड़ने का आरोप भी नहीं लगाया जा सकेगा। वहीं जो लोग निर्धारित मानकों और मानदंडों के तहत काम नहीं करेंगे, उनके स्थान पर किसी दूसरे एनजीओ को यह काम सौंपा जा सकता है। लेकिन इस काम को अंजाम देने के लिए एक नई केंद्रीय योजना बनाकर उसके माध्यम से संसाधनों का आवंटन किया जाना चाहिए और यह काम कृषि मंत्रालय के जिम्मे ही होना चाहिए। इसका कारण यह है कि ग्रामीण भारत से व्यावहारिक संबध कृषि मंत्रालय का ही हो सकता है, बाकी मंत्रालयों या विभागों का नहीं। हर राज्य में कृषि विभाग और पशुपालन विभाग हैं और राज्य कृषि विश्वविद्यालय हैं और इसे कृषि विस्तार का नेटवर्क माना जाता है। विस्तार का काम यह रेडियो स्टेशन आधा कर सकता है।

अगर सरकार पूरी ईमानदारी के साथ कृषि और ग्रामीण क्षेत्र के विकास को महत्व देती है तो उपर्युक्त संभावनाओं पर अमल करते हुए सामुदायिक रेडियो जैसे किफायती माध्यम के जरिए देश के इस क्षेत्र को सूचना क्रांति से रूबरू कराया जा सकता है। इस समय देश की यह एक सबसे बड़ी जरूरत भी है क्योंकि ग्रामीण अर्थव्यवस्था की मजबूती के बिना हम एक विकसित भारत का सपना नहीं देख सकते हैं। इसलिए इसे ध्यान में रखते हुए हमें सामुदायिक रेडियो की भूमिका का महत्व समझना होगा। ❑

सी–3/58, सादतपुर एक्सटेंशन, दिल्ली

"गांवों में नवजीवन का संचार करने के लिए आज आवश्यकता ऐसे आत्मत्यागी, बुद्धिमान और देशप्रेमी कार्यकर्ताओं के दल की है जो अनन्य सेवाभाव से गांवों में चरखे का संदेश फैलाएं और इस तरह ग्रामीण लोगों के निस्तेज नेत्रों में आशा की ज्योति जलाएं। यह सहयोग का एक महान प्रयास और सही व्यस्क शिक्षा है। इस प्रवृत्ति से चरखे की मूक किंतु निश्चित और जीवनदायी चक्रगति की तरह मूक और निश्चित क्रांति आएगी।"

महात्मा गांधी

ग्रामीण क्षेत्रों में सूचना और संचार प्रौद्योगिकी की नई लहर

☞ हेमंत जोशी

यूं तो आज के युग में जनसंचार और दूरसंचार की बातें अलग–अलग करना ही बेमानी है क्योंकि कन्वर्जेंस के इस दौर ने सूचना प्रौद्योगिकी में हुए विकास के कारण रेडियो, टेलीविजन, इंटरनेट, टेलीफोन और मोबाइल की दूरी को इतना कम कर दिया है कि अब ये माध्यम एक–दूसरे के बिना अधूरे लगते हैं। हाल ही में एक डब्ल्यूएलएल मोबाइल कंपनी ने तो अपने विज्ञापन में मोबाइल सेवा को कभी मोबाइल, कभी कम्प्यूटर भी कहा है। लेकिन सूचना और संचार प्रौद्योगिकी की इस लंबी छलांग से विश्वभर में एक चिंता भी है। जैसे–जैसे जनसंचार और दूरसंचार के क्षेत्र में सूचना प्रौद्योगिकी की वजह से दूरी कम हो रही है अर्थात कन्वर्जेंस हो रहा है वैसे–वैसे दुनिया भर में लोगों के बीच की खाई बढ़ती जा रही है। एक ओर वह लोग हैं जिनके पास संचार के सभी साधन हैं और दूसरी ओर वह लोग हैं जिनके पास संचार के न्यूनतम साधन भी नहीं हैं। इसी वस्तुस्थिति को डिजिटल डिवाइड कहा गया है।

ऐसी ही अंकीय विषमताओं को दूर करने के लिए और विश्वभर में गरीबी उन्मूलन और विकास के चक्र को तेज़ी से चलाने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ के नेतृत्व में सूचना व्यवस्था के अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन भी आयोजित किए जा रहे हैं जिनके तहत सदस्य राष्ट्रों के बीच विमर्श के कई दौर हो चुके हैं। इसी कड़ी में हाल ही में क्वालालम्पुर में लैंगिक विषमताओं पर विमर्श हुआ। पिछले दिनों दिल्ली में यूनेस्को ने *विकास संचार और सूचना तथा संचार प्रौद्योगिकी* पर मानस मंथन की एक अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी भी आयोजित की। इस संगोष्ठी में अन्य बातों के अलावा गरीबी उन्मूलन में विकास संचार की भूमिका, सामाजिक भागीदारी, पारदर्शी और जवाबदेह प्रशासन, विकेंद्रीकरण, स्वास्थ्य और पर्यावरण के लिए नई सूचना और प्रौद्योगिकियों के प्रयोग पर गंभीरता से विचार किया गया।

जिन नई प्रौद्योगिकियों को भविष्य के लिए महत्वपूर्ण माना गया उनमें कम लागत वाले टेलीफोन और सामुदायिक रेडियो का विशेष स्थान था। सस्ते टेलीफोन कनेक्शन और सस्ते कम्प्यूटरों के बिना सूचना प्रौद्योगिकी पर आधारित जनसंचार संभव नहीं है, भले ही वह पर्यावरण, स्वास्थ्य, रोजगार आदि की जानकारियां हों या ई–प्रशासन, ई–वाणिज्य और ई–शिक्षा हो।

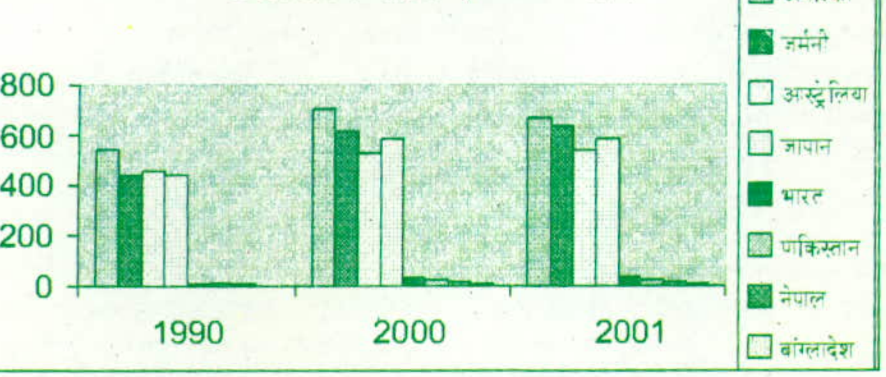

सूचना प्रौद्योगिकी समाज की विभिन्न आवश्यकताओं का आधार बनती जा रही है। विश्व विकास रिपोर्ट के अनुसार भारत में वर्ष 1998 तक प्रति हजार व्यक्ति 2.7 कम्प्यूटर और वर्ष 2000 तक प्रति दस हजार लोगों के बीच 0.23 इंटरनेट कनेक्शन थे। लेकिन इस सबके बावजूद भारत जैसा देश डिजिटल विभाजन की आड़ में विकास की संभावनाओं को दरकिनार नहीं कर सकता। नवगठित सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय ने इस प्रौद्योगिकी का लाभ भारत की विकास प्रक्रिया को दिलाने के लिए पिछले दो वर्षों में उल्लेखनीय कार्य किए हैं।

मीडिया लैब एशिया

अंकीय विषमताओं को दूर करने के लिए भारत सरकार के सूचना प्रौद्योगिकी विभाग ने अमेरिका की मेसाचुसेट्स इंस्टिट्यूट ऑफ टेक्नोलाजी के साथ एक परियोजना आरंभ की है। मीडिया लैब एशिया नाम की इस परियोजना का उद्देश्य भारत और अन्य विकासशील देशों में सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में लोगों के बीच की खाई पाटना है। पिछले वर्ष 15 अगस्त को प्रधानमंत्री ने गरीबी मिटाने और विकास की गति तेज करने के लिए जो घोषणाएं की थीं उनमें मीडिया लैब एशिया परियोजना भी शामिल की गई थी।

इस परियोजना की खास बात यह है कि इसमें ग्रामीण भारत की जरूरतों को ध्यान में रखते हुए चार विशेष क्षेत्रों में उच्चस्तरीय शोध करवाने का प्रावधान है। सबसे पहले तो कम कीमत वाले कम्प्यूटर विकसित करना बहुत आवश्यक है और इसके लिए विश्व कम्प्यूटर की संकल्पना को मूर्त रूप देना है।

☞ लेखक, भारतीय जनसंचार संस्थान में सहायक प्रोफेसर हैं।

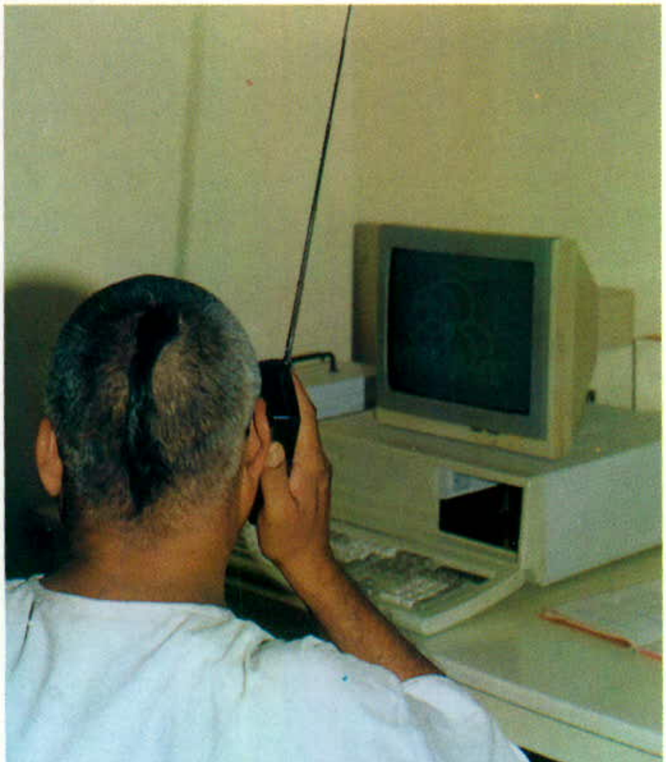

में ही मिलने लगे। राष्ट्रीय सूचना केंद्र ने अपनी इसी योजना को और आगे बढ़ाते हुए सिक्किम और सात पूर्वोत्तर राज्यों में ब्लॉक स्तर तक कम्प्यूटर संजाल स्थापित किया है। इस योजना के तहत अब तक इन राज्यों के 487 ब्लाकों में उसने सामुदायिक सूचना केंद्र खोले हैं।

सूचना क्रांति के केंद्र में दूरसंचार प्रौद्योगिकी रही है, भले ही इस टेक्नोलॉजी का सबसे बेहतर उपयोग जनसंचार के लिए ही हुआ। उपग्रह संचार का प्रयोग संप्रेषण के दो महत्वपूर्ण तरीकों के लिए किया जा सकता था। पहला प्रयोग तो दूरदराज के क्षेत्रों तक टेलीफोन की सुविधाएं उपलब्ध करवाना था। दूसरा प्रयोग दूरदर्शन और आकाशवाणी के प्रसारणों को व्यापक बनाना था। 1982 में एशियाई खेलों के दौरान दूरदर्शन के लिए तकरीबन हर रोज एक ट्रांसमीटर लगाने का जो सिलसिला आंरभ हुआ, उसने जल्दी ही टेलीविजन प्रसारणों की पहुंच लगभग 98 प्रतिशत कर दी थी।

सन् 1984 में राजीव गांधी के नेतृत्व में जो टेक्नोलॉजी मिशन बने, उनमें सबसे महत्वपूर्ण मिशन टेलीफोनी से संबद्ध था जिसने अपना लक्ष्य हर गांव तक टेलीफोन पहुंचाना रखा था। इसी लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए सी–डॉट ने देश में ही आधुनिकतम टेलीफोन एक्सचेंज बनाने की जिम्मेदारी ली थी। इस मिशन की कामयाबी के आज पर्याप्त प्रमाण मौजूद हैं। आज देशभर में सार्वजनिक टेलीफोन केंद्रों (पीसीओ) का जाल फैल गया है। वर्ष 1996 तक प्रति हजार व्यक्ति केवल 0.7 पीसीओ थे जो वर्ष दो हजार तक बढ़कर 4.5 हो गए और 2003 के अंत तक इनकी संख्या प्रति हजार व्यक्ति 26 तक पहुंचने की उम्मीद है। एक महत्वपूर्ण बात यह है कि यह सभी पीसीओ केवल महानगरों और बड़े शहरों तक ही सीमित नहीं हैं बल्कि आज देश के कोने–कोने में, गांव–गांव में पीसीओ दिखलाई पड़ते हैं।

इसी दौरान योजना आयोग का एक कार्यालय राष्ट्रीय सूचना केंद्र (नेशनल इंफार्मेटिक सेंटर) देश के हर जिले को उपग्रह आधारित कम्प्यूटर संजाल से जोड़ने में लगा हुआ था। यह कार्यालय अब संचार और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय का अंग बन चुका है। उसकी इस सफलता का प्रमाण यह है कि जहां पिछले कई आम चुनावों में परिणामों का तीव्र गति से संचार संभव हुआ, वहीं हर राज्य और जिले के आंकड़ों का अंकीयकरण (डिजिट–लाइजेशन) भी हो पाया। इसी तरह भारतीय भाषाओं में कम्प्यूटर उपलब्ध कराने की जो मुहिम कानपुर स्थित भारतीय प्रौद्योगिक संस्थान से आंरभ हुई उसकी वजह से विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग की मदद से पुणे में सी–डैक नामक संस्था बनी जिसने अपनी प्रौद्योगिकी की मदद से आंध्र प्रदेश और मध्य प्रदेश में भूमि के आंकड़ों का कम्प्यूटरीकरण करना आंरभ किया। इसी संगठन ने जहां भारत के पहले सुपर कम्प्यूटर का निर्माण किया वहीं समस्त भारतीय भाषाओं में कम्प्यूटर पर काम करने का एक मानक साफ्टवेयर भी ईजाद किया।

सन् 2001 की विश्व विकास रिपोर्ट से प्राप्त आंकड़ों से पता चलता है कि हम अपनी तमाम उपलब्धियों के बावजूद विश्व के विकसित देशों से कहीं पीछे हैं। टेलीफोनी के क्षेत्र में अमेरिका के पास सन् 2000 तक प्रति हजार व्यक्ति 700 टेलीफोन लाइनें थीं, जर्मनी में 611, आस्ट्रेलिया में 525 और जापान में 586 लाइनें थीं, वहीं भारत में इस शताब्दी के आगमन तक प्रति हजार व्यक्ति कुल 32 लाइनें थीं। दक्षेस के अन्य राष्ट्रों में प्रति 1000 लोगों के लिए पाकिस्तान में 22, नेपाल में 12 और बंग्लादेश में 4 टेलीफोन थे। सन 2003 की विश्व मानव विकास रिपोर्ट में इस स्थिति में कोई विशेष सुधार भारत, नेपाल, पाकिस्तान और बंग्लादेश में तो नहीं आया, भले ही विकसित देशों की स्थिति में कुछ सुधार हुआ हो। अब भारत में प्रति हजार व्यक्तियों में 38, पाकिस्तान में 23, नेपाल में

इसके बाद सबके लिए बिट अवधारणा को रखा गया है जिसका मतलब ग्रामीण भारत में कम लागत पर घर–घर में इंटरनेट संपर्क उपलब्ध कराना। गांव के युवाओं में अंकीय संचार के प्रति दिलचस्पी बनाने के लिए ***कल के साधन*** नाम की परियोजना का प्रावधान है जो उन्हें कम लागत पर सूचना संचार के साधन उपलब्ध कराएगी। इन तीनों क्षेत्रों का समुचित विकास होने के बाद ही हम अंकीय ग्राम अर्थात् डिजिटल विलेज की संकल्पना को मूर्त रूप दे पाएंगे।

आज तो यह सब बातें आपको किसी स्वप्न–सी दिखाई देती होंगी लेकिन जिस गति से सूचना प्रौद्योगिकी का विकास हो रहा है, उसके चलते वह दिन दूर नहीं जब भारत में गांव–गांव में लोग सूचना और संचार क्रांति के वह सभी लाभ प्राप्त कर पाएंगे जो आज बड़े शहरों और विशेषकर महानगरों में लोगों को उपलब्ध हैं। इस दिशा में राष्ट्रीय सूचना केंद्र ने कई वर्षों पहले काम करना आंरभ भी कर दिया था। उसने भारत के हर जिले को केंद्रीय सूचना नेटवर्क से जोड़ दिया। इसी के परिणामस्वरूप पिछले कुछ आम चुनावों और राज्यों के चुनावों के नतीजे हमें एक–दो दिन

13 और बांग्लादेश में 4 टेलीफोन हैं।

मोबाइल टेलीफोन के क्षेत्र में अमेरिका में वर्ष 2000 तक प्रति हजार व्यक्तियों में 398 लोगों के पास मोबाइल फोन थे जबकि इसकी तुलना में भारत में इतने ही लोगों के बीच 4 सेलफोन थे। वर्ष 2001 में जहां अमेरिका में इनकी संख्या बढ़कर 451 हो गई वहीं भारत में इस एक वर्ष में यह संख्या अब तक केवल 6 हो पाई है। इसका एक बड़ा कारण यह है कि गांवों तक टेलीफोन पहुंचाने में किसी व्यावसायिक कंपनी को लाभ नहीं है। अमेरिका में सरकार ने किसी भी कंपनी को शहरों में व्यवसाय करने की इजाजत देते समय ऐसी शर्तें रखी हैं जिनके तहत कंपनियों को बड़े शहरों में दूरसंचार के ठेके प्राप्त करते समय यह स्वीकार करना होता है कि वह गांवों के एक निश्चित क्षेत्रफल को भी अपनी सेवाएं मुहैया कराएंगे। भारत में अभी ऐसा कोई प्रावधान नहीं है इसीलिए हमारे यहां कोई भी व्यवसायी ग्रामीण इलाकों में दूरसंचार में निवेश करने को बाध्य नहीं है। यह भी सच है कि गांवों तक टेलीफोन जैसी सुविधाओं को पहुंचाना कम से कम आज तक तो वाणिज्यिक तौर पर लाभदायक नहीं है।

सूचना प्रौद्योगिकी : कुछ तथ्य

- **वित्तवर्ष 2001–2002 के दौरान भारतीय इलेक्ट्रॉनिकी एवं सूचना प्रौद्योगिकी उद्योग ने लगभग 81,000 करोड़ रुपये का उत्पादन दर्ज किया।**
- **अर्थव्यवस्था के ज्ञान–विज्ञान आधारित उभरते हुए सेवा क्षेत्र में भारत की विशेषज्ञता की प्रतिष्ठा को विश्वभर में बढ़ाने के अलावा, इस उद्योग ने शिक्षित भारतीय युवाओं के लिए कई लाख नए रोजगार अवसर सृजित किए हैं।**
- **विश्वव्यापी मंदी के बावजूद, भारतीय सूचना प्रौद्योगिकी क्षेत्र के वर्ष 2008 तक 57–65 अरब डालर की अपनी निर्धारित निर्यात क्षमता पूरी कर लेने का अनुमान है, जो सकल घरेलू उत्पाद का 7 प्रतिशत और कुल निर्यात का 35 प्रतिशत है।**
- **अक्तूबर, 2000 में पारित सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 ई–कॉमर्स के विकास को बढ़ावा देने और साइबर अपराधों के निवारण के लिए विधि व्यवस्था उपलब्ध कराता है।**
- **पूर्वोत्तर क्षेत्र के सात राज्यों और सिक्किम में सूचना प्रौद्योगिकी आधारित सामाजिक–आर्थिक विकास को बढ़ावा देने की दृष्टि से 487 ब्लॉकों में सामुदायिक सूचना केंद्रों की स्थापना की गई है।**
- **उत्तर प्रदेश, झारखंड, हिमाचल प्रदेश और उत्तरांचल के सभी जिलों में निकनेट के माध्यम से वीडियो कांफ्रेंसिंग नेटवर्क स्थापित किया गया। जम्मू और कश्मीर के लेह और नियोमा में भी इसकी स्थापना की गई है, जोकि इस तरह की सुविधा वाला विश्व में सबसे ऊंचा स्थान है।**
- **भारत सॉफ्टवेयर प्रौद्योगिकी पार्क (एस.आी.पी.आई.) ने त्रिची, पांडिचेरी, लखनऊ, कोलकाता, भिलाई, राउरकेला, मंगलौर और हुबली में अपने भू–केंद्र स्थापित किए हैं। इससे सॉफ्टवेयर निर्यात उद्योग को तीव्र गति से डाटा संचरण सेवा उपलब्ध हो सकेगी।**

ग्रामीण दूरसंचार

सेल्यूलर दूरभाष की तुलना में टेलीफोन के भूमिगत तंत्र की स्थिति कहीं बेहतर है क्योंकि इसका काफी बड़ा हिस्सा आज भी सार्वजनिक क्षेत्र के जिम्मे है। दूरसंचार विभाग की सन् 2002–03 की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार सरकार ने दिसंबर 2002 तक 84 प्रतिशत से अधिक गांवों को 5 लाख 3 हजार 610 ग्रामीण सार्वजनिक टेलीफोनों के माध्यम से भारत संचार निगम के नेटवर्क से जोड़ दिया है। इस काम में निजी कंपनियों ने भी 7 हजार 123 वीपीटी उपलब्ध कराए हैं। इसकी वजह से मार्च 2002 के 4.68 की तुलना में दिसंबर 2002 के अंत तक 5.10 लाख गांव ग्रामीण सार्वजनिक टेलीफोन के दायरे में आ गए हैं। इसी प्रकार गांवों में उपलब्ध डीईएल की संख्या भी इस अवधि में 90.11 लाख से बढ़कर 1 करोड़ 6 लाख 65 हजार हो गई है।

दिसंबर में प्रधानमंत्री ने ग्रामीण संचार सेवक योजना का उद्घाटन किया जिसमें 1,800 ग्राम्य डाकियों की मदद से 8,000 गांवों तक पहुंचने के लिए 5 करोड़ रुपये की राशि (इनीशियल कैपिटल इन्वेस्टमेंट) देने की घोषणा की।

राष्ट्रीय दूरसंचार नीति 1999 में यह लक्ष्य रखा गया था कि मार्च 2002 तक सार्वभौमिक सेवा अनिवार्यता (यूनीवर्सल सर्विस ओब्लिगेशन) के लिए सभी गांवों में दूरसंचार और अन्य ग्रामीण क्षेत्रों में दूरभाष उपलब्ध कराए जाएंगे। इसी को ध्यान में रखते हुए 31 मार्च, 2002 तक 4 लाख 68 हजार सोलह ग्रामीण सार्वजनिक टेलीफोन उपलब्ध कराए गए थे। इसी दौरान 90 लाख 25 हजार डी ई एल भी ग्रामीण क्षेत्रों में लगाए गए। 2003 में 39,439 गांवों तक दूरसंचार सुविधाएं पहुंचाने का लक्ष्य रखा गया है जिससे हम गांवों तक, संचार की सुविधाएं पहुंचा पाएंगे।

ग्रामीण सार्वजनिक टेलीफोन मुहैया करने के लिए भूमिगत तारों के अलावा सीमित घेरे में बेतार (वायरलैस लोकल लूप) और दूरसंचार पर आधारित टेलीफोन भी इस्तेमाल किए जाएंगे। सन् 2001–02 में 24 लाख 64 हजार सीधी एक्सचेंज लाइनें उपलब्ध कराई गईं थीं। सन् 2002–03 के लिए ऐसी 13 लाख 34 हजार लाइनों का लक्ष्य रखा गया था लेकिन 2002 के दिसंबर तक ही 15 लाख 14 हजार लाइनें मुहैया करा दी गई थीं।

गांवों में शैक्षिक, सामाजिक, आर्थिक विकास के मद्देनजर लोग अब ग्रामीण सार्वजनिक टेलीफोन या पीसीओ के बजाय खुद के टेलीफोन लेने के लिए आगे आ रहे हैं। टेलीफोन उपभोक्ताओं की बढ़ती हुई मांग को देखते हुए भूमिगत तारों वाली स्विच व्यवस्था, सीमित क्षेत्र में वायरलैस व्यवस्था, मध्यम क्षमता वाली उपग्रह व्यवस्थाओं और रेडियो व्यवस्थाओं का सहारा भी लिया जा रहा है।

स्मरणीय है कि भारत में सेटेलाइट इंस्ट्रक्शनल टेलीविजन (साइट) परियोजना और ग्रामीण किसानों के लिए दूरदर्शन से प्रसारित किए जाने वाला कार्यक्रम कृषि दर्शन आजादी के बाद देश में ग्रामीण क्षेत्रों की चिंता का ही प्रतिफलन था। इसमें कोई संदेह नहीं कि आजादी के समय के गांवों और आज के गांवों में सुविधाओं के नजरिए से जमीन–आसमान का अंतर है लेकिन आज भी संचार और जनसंचार की स्थितियां ग्रामीण क्षेत्रों में बहुत अच्छी नहीं हैं। वहीं दूसरी ओर महानगरों और शहरों में टेलीविजन, दूरभाष, मोबाइल टेलीफोन, कम्प्यूटर और इंटरनेट

का प्रसार गांवों की तुलना में कहीं ज्यादा हुआ है। यही वजह है कि न केवल अमीर–गरीब के बीच खाई बढ़ी है बल्कि सुविधा–संपन्न और सुविधा–विहीन, विकास–संपन्न और विकास–रहित समाजों का अंतर भी भारत में स्पष्ट दिखाई देता है।

संप्रेषण और संचार के लिए प्रौद्योगिकी की मौजूदगी के अलावा साक्षरता की भी महत्ता होती है। भारत में आजादी के बाद शिक्षा और साक्षरता में काफी सुधार हुआ है। हालांकि देश की बढ़ती हुई आबादी की वजह से इस क्षेत्र में होने वाला विकास बहुत कम लगता है। साक्षरता के इस व्यापक प्रचार–प्रसार की वजह से जो एक महत्वपूर्ण उपलब्धि हुई है, वह है भारतीय भाषाओं की पत्रकारिता में तेजी से हुआ विकास। एक समय था जब भारत में नवभारत टाइम्स या हिन्दुस्तान जैसे समाचार–पत्र ही राष्ट्रीय समाचार–पत्र माने जाते थे और बाकी बहुत से अखबारों को हम क्षेत्रीय कहकर निचले दर्जे का अखबार मानते थे। आज सूचना प्रौद्योगिकी में हुए विकास की बदौलत कल तक प्रादेशिक, आंचलिक या क्षेत्रीय कहलाने वाले समाचार–पत्रों की प्रसार संख्या इन राष्ट्रीय अखबारों से कहीं अधिक है। हाल में प्रकाशित राष्ट्रीय पाठक सर्वेक्षण के अनुसार दैनिक जागरण और दैनिक भास्कर के विभिन्न संस्करणों की कुल प्रसार संख्या 1 करोड़ से कहीं अधिक है। इसके अलावा अमर उजाला, राष्ट्रीय सहारा और आज जैसे समाचार–पत्र हमारे राष्ट्रीय माने जाने वाले अखबारों से कहीं अधिक पढ़े जा रहे हैं। **इसी सर्वेक्षण में एक और बात स्पष्ट रूप से उभरकर आई है कि अंग्रेजी की तुलना में समाचार पत्रों का विकास अब भारतीय भाषाओं में कहीं हो रहा है। मुद्रित माध्यम को ग्रामीण क्षेत्रों तक पहुंचाने में सूचना प्रौद्योगिकी और विशेषकर इस प्रौद्योगिकी के भारतीय भाषाओं में उपयोग की विशेष भूमिका है।**

डिजिटल विभाजन और गांव

कम्प्यूटर और सूचना प्रौद्योगिकी के लाभ आज विश्व के इस भीषण डिजिटल विभाजन में आने वाले कई वर्षों तक गांवों और गरीब जनता तक नहीं पहुंचने वाले हैं और वह भी तब जब भारत ही नहीं विश्व के अनेक देश आने वाले कुछ वर्षों में केवल इलेक्ट्रानिक वाणिज्य या व्यापार तक ही सीमित नहीं रहना चाहते बल्कि इन देशों ने इलेक्ट्रानिक प्रशासन की घोषणा भी कर दी है। यह सही है कि मध्य प्रदेश में ई–प्रशासन को लेकर सरकार ने अच्छा कार्य किया है लेकिन यह तथ्य भी किसी से छिपा नहीं है कि विभाजन के बाद छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश दोनों ही राज्यों में विद्युत संकट गहराया है। जब तक हम गांव–गांव तक विद्युत का बेरोकटोक इंतजाम नहीं कर पाते, सूचना प्रौद्योगिकी का भव्य रथ वहीं खड़ा रहेगा, जहां वह आज खड़ा है।

सूचना प्रौद्योगिकी का देश के सामाजिक–आर्थिक विकास में इस्तेमाल करने की गरज से सरकार ने जो कार्यक्रम बनाए, उसके तहत आरंभिक चरण में देश के अन्य भागों से लगभग कटे हुए उत्तर–पूर्वी राज्यों और सिक्किम के 486 प्रखंडों में सामुदायिक सूचना केंद्र स्थापित करने का निर्णय लिया गया था। ये केंद्र वीसैट और उपग्रह की मदद से इंटरनेट कनेक्टिविटी प्राप्त कर रहें हैं। पहले पांच वर्षों में इन्हें चलाने के लिए केंद्र सरकार से सहायता प्राप्त होगी और बाद के वर्षों में इन्हें चलाना राज्य सरकारों का दायित्व होगा।

इसके अलावा सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय ने जनता के लिए सूचना प्रौद्योगिकी और इस प्रौद्योगिकी में भारतीय भाषाओं के प्रयोग के अलावा कृषि, स्वास्थ्य, शिक्षा, प्रशासन जैसे क्षेत्रों में भी इस टेक्नोलॉजी का प्रयोग करने की योजनाएं बनाई हैं। इनका लाभ विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोगों को ही ज्यादा मिलेगा। लेकिन सूचना प्रौद्योगिकी की इस विकास यात्रा के लिए देश की दूरसंचार व्यवस्था को बहुत कुछ करना होगा। जब तक हम ग्रामीण अंचलों में रहने वाले लोगों को दूरसंचार की सुविधाएं उपलब्ध नहीं कराते, तक तक हम भले ही लोगों का सूचना कियोस्क और पीसीओ पर निर्भर होने का दावा करें, हम ई–शिक्षा, ई–वाणिज्य और ई–प्रशासन जैसी आधुनिक सुविधाओं का स्पष्ट लाभ देश की ग्रामीण जनता को नहीं दे पाएंगे।

देश में सूचना प्रौद्योगिकी के फैलते जाल का कितना लाभ ग्रामीण जनता को मिल पा रहा है, यह जानने के लिए कनाडा स्थित अंतर्राष्ट्रीय विकास अनुसंधान केंद्र ने भारत के ग्रामीण क्षेत्रों का एक अध्ययन करवाया जिसे चेन्नई की स्वामीनाथन शोध फाउंडेशन ने अंजाम दिया। इस रिपोर्ट के अनुसार नई सूचना प्रौद्योगिकियों के प्रयोग का ग्रामीण क्षेत्रों में सकारात्मक असर हुआ है। स्वामीनाथन शोध संस्थान ने 1998 में दक्षिण भारत के पांडिचेरी के पांच गांवों में एक परियोजना चलाई। इसका कारण यह है कि भारत के गांवों में गरीबी सबसे ज्यादा है जहां 21 प्रतिशत से अधिक लोगों की पारिवारिक आय एक डालर प्रति दिन से भी कम है।

इस अध्ययन से सूचना प्रौद्योगिकी से ग्रामीण क्षेत्रों को मिलने वाले फायदों की एक झलक देखने को मिली। जिन पांच गांवों में ग्रामीण सूचना केंद्र बनाए गए थे, वहां 1 जनवरी, 1999 से 30 जून, 2000 तक लगभग 15 हजार लोग आए। इनमें से 18 प्रतिशत महिलाएं थीं और; तकरीबन 5 हजार ऐसे लोग थे जो सुविधाविहीन और बहुत ज्यादा गरीब थे। इन केंद्रों में आने वालों में 4,421 ऐसे बच्चे थे जिनकी उम्र 14 वर्ष से कम थी। इसी अध्ययन से यह भी पता चला कि इन केंद्रों के कुल प्रयोग का 40 प्रतिशत जहां सरकारी सूचनाओं को प्राप्त करने के लिए किया गया वहीं 32 प्रतिशत प्रयोग शिक्षा के लिए, 2 प्रतिशत रोजगार के लिए और 1.5 प्रतिशत स्वास्थ्य संबंधी जानकारियां प्राप्त करने के लिए किया गया। तात्पर्य यह है कि अपने सीमित संसाधनों के बावजूद यदि हम चाहें तो सही दृष्टि और इच्छाशक्ति की मदद से हम नई सूचना और संचार प्रौद्योगिकियों का इस्तेमाल करके ग्रामीण भारत की तस्वीर बदल सकते हैं। ❑

सी–3 प्रेस एन्क्लेव, साकेत, नई दिल्ली 110017

"अपनी नैतिक स्थिति के सही होने की आस्था ही बुद्धि के आक्रमण के खिलाफ मनुष्य का एकमात्र दुर्ग होती है।"

महात्मा गांधी

गांवों तक इंटरनेट की पहुंच वर्तमान तथा भविष्य

☞ देव प्रकाश

बीसवीं सदी के जाते हुए वर्षों में इंटरनेट के आगमन से ही ग्लोबल विलेज की अवधारणा को बल मिला है। अब दूर गांव का कोई किसान क्षण भर में पता लगा सकता है कि धान की कौन-सी नई प्रजाति उसके खेतों के लिए उपयुक्त है या कि कस्बे में बैठा कोई डॉक्टर लंदन की प्रयोगशाला में विकसित हो रही कैंसर की दवा के बारे में जान सकता है। सूचना और संचार की यह नई तकनीक इंटरनेट गांवों में कितनी उपयोगी है; प्रस्तुत लेख में लेखक इसकी कामयाबी और विस्तार की संभावनाओं के बारे में बता रहे हैं।

तीस साल के सोमरेन टुडू ने लगभग एक साल पहले कंप्यूटर देखा था। और इस एक साल में उसकी पूरी दुनिया बदल गई लगती है। झारखंड के गोड्डा जिले के सुंदर पहाड़ी प्रखंड का एक गांव है चांदना। सोमरेन वहीं का रहने वाला है। उसकी आधी पढ़ाई गोड्डा में हुई और फिर रांची में। पढ़ाई पूरी होने के कई साल बाद एक बार फिर से वह गांव में रहने लगा है। नौकरी की उम्मीद नहीं बची थी। लगभग हताशा और निराशा की स्थिति में उसके रांची के एक दोस्त ने उसे इंटरनेट पर तसर के कीड़े पालने संबंधी जानकारी उपलब्ध कराई। इंटरनेट से उसे यह भी पता चला कि इस काम के लिए ऋण कैसे और कितना मिल सकता है। और अब सोमरेन नौकरी करना नहीं चाहता। तसर के कीड़े पालकर वह अपने सुंदरपहाड़ी में ही इतना कमा ले रहा है कि खुश है। सोमरेन की खुशी को सूचना और संचार क्रांति के आलोक में देखें तो लगता है कि देश की सभी समस्याओं का हल चुटकियों में मुमकिन है। कई क्षेत्रों में इसे अपनाने से उत्साहवर्द्धक नतीजे भी सामने आए हैं लेकिन एक दूसरा पक्ष भी है।

☞ स्वतंत्र पत्रकार

सरकार को उम्मीद है कि वर्ष 2003 के अंत तक देश के सभी गांव टेलीफोन से जुड़ जाएंगे। उन गांवों के लोगों के पास इंटरनेट की सुविधा होगी, वे ई–मेल कर पाएंगे और देश के गांव एक डिजीटल नेटवर्क से जुड़े होंगे। हाल ही में उड़ीसा सरकार के एक वरिष्ठ पदाधिकारी द्वारा घोषित आंकड़े बताते हैं कि उड़ीसा के 23 हजार गांवों के लिए एक लाख बीस हजार टेलीफोन के कनेक्शन हैं और इनमें से 46,987 गांवों में इंटरनेट की सुविधा है।

लेकिन गांव में रहने वाले कितने लोग सोमरेन की तरह भाग्यशाली होते हैं? सोमरेन ग्रेजुएट है, उसे अंग्रेजी आती है तो वह इंटरनेट को समझ सकता है, ई–मेल कर सकता है पर गांवों में रहने वाली देश की एक बड़ी शिक्षित आबादी ऐसी भी है जिसके लिए अंग्रेजी अभी भी 'आतंकित' करने वाली भाषा है। इसी के साथ सवाल यह भी जुड़ा है कि आखिर इंटरनेट पर हिंदी को लोकप्रिय बनाने के प्रयास क्यों नहीं हो रहे?

बीते 15 अगस्त को हमारे देश में इंटरनेट के आगमन के करीब आठ वर्ष पूरे हो गए, पर इसका उपयोग करने वालों में कुल इंटरनेट नेटभाषा पर किए गए एक सर्वेक्षण की रिपोर्ट बताती है कि इंटरनेट पर उपयोग का 43 प्रतिशत गैर–अंग्रेजी भाषी लोग कर रहे हैं। लेकिन भारत में 9.3 प्रतिशत ही क्षेत्रीयभाषी लोग हैं, जो इंटरनेट का उपयोग करते हैं। हाल की में 'नेट संस इंडिया' द्वारा सर्वाधिक क्षेत्रीय भाषा का उपयोग करने वालों में 5.22 लाख लोगों में सबसे ज्यादा महाराष्ट्र के गांवों के लोग थे। यह संख्या लगभग 96 हजार थी और इस सर्वेक्षण में मुंबई को शामिल नहीं किया गया था। हिंदीभाषी सभी राज्यों में हिंदी का उपयोग करने वालों की संख्या मात्र 73 हजार थी जबकि तमिलनाडु में क्षेत्रीय भाषा का इंटरनेट पर प्रयोग करने वाले लोगों की संख्या 74 हजार थी।

यह बात सच है कि इंटरनेट पर हिंदी के प्रचार–प्रसार में कुछ व्यावहारिक और तकनीकी दिक्कतें भी हैं। जैसे कि हिंदी भाषा में उपलब्ध सामग्री को खोजने के लिए कोई सर्च इंजन की सुविधा न होने के कारण लोगों को दिक्कतें आ रही हैं। अंग्रेजी भाषा की प्रमुखता भी हिंदी के प्रचार–प्रसार में कहीं न कहीं बाधक है। साथ ही लोगों को जानकारी का भी अभाव है। जानकार कहते हैं कि आज हिंदी में नेट पर 250 से 300 साइटें हैं। हालांकि इंटरनेट पर रेडियो के आगमन के बाद स्थिति बदल रही है पर इंटरनेट गांव के लोगों के लिए भी सूचना तंत्र के रूप में विकसित हो, इसके लिए हिंदी को वहां भी और लोकप्रिय बनाना होगा।

बंगलौर से चालीस–पचास किलोमीटर दूर एक छोटा–सा गांव है थुंडला। इस गांव के इकलौते प्राइमरी स्कूल के बच्चे कंप्यूटर से परिचित हैं क्योंकि यहां एक कम्युनिटी लर्निंग सेंटर हैं। कर्नाटक सरकार और अजीज प्रेमजी फाउंडेशन मिलकर इस तरह के हजारों केंद्र सारे राज्य में खोलना चाहते हैं। ये केंद्र उन स्कूलों में खोले जा रहे हैं, जिनके नतीजे बहुत अच्छे नहीं हैं और जहां स्कूल छोड़ देने वाले बच्चों की दर काफी अधिक है। लोगों का अनुभव है कि जिन स्कूलों में इस तरह के केंद्र खुले हैं, वहां बच्चे और उनके मां–बाप स्कूल और पढ़ाई में ज्यादा रुचि लेने लगे हैं।

मध्य प्रदेश में ज्ञानदूत योजना के तहत आम लोगों को सूचनाएं और सेवाएं देने की शुरुआत हुई है। इसके तहत सूचना केंद्र या इनफोर्मेशन किओस्क स्थापित किए गए हैं, जहां पर ग्रामीण एक छोटी–सी फीस देकर विभिन्न दस्तावेजों की नकल प्राप्त कर सकते हैं। इस काम के लिए जिला मुख्यालय जाने और ऊपर का पैसा देकर काम करवाने की कोई आवश्यकता नहीं है। **कई बीज और खाद बनाने वाली कंपनियों ने इंटरनेट सूचना केंद्र खोले हैं और इसके जरिए किसान और उत्पादक कंपनियों के बीच का रिश्ता और प्रगाढ़ हुआ है। जानकार कहते हैं कि अब बिचौलिए की भूमिका नहीं रही।** हां, यह बात भी सच है कि ऐसे इलाकों में, जहां किसान इंटरनेट से जानकारी का लाभ ले रहे हैं, वहां किसानों की आमदमी में 15 प्रतिशत तक की वृद्धि हुई है और वे बाजार के उतार–चढ़ाव को महसूस करना सीख गए हैं। इसी तरह अपने देश में ही पांडिचेरी में कई ऐसे सूचना केंद्र हैं, जिनसे ग्रामीण महिला और पुरुष अपनी मनचाही जानकारी स्थानीय भाषा में हासिल कर सकते हैं। यहां पर सभी सरकारी योजनाओं की जानकारी और रोजगार संबंधी सूचनाएं उपलब्ध हैं। कृषि संबंधी स्थानीय जानकारी भी मिल सकती है। यदि आपको गाय या बैल बेचना या खरीदना हो तो उसका इश्तहार भी इंटरनेट पर दे सकते हैं। स्वास्थ्य संबंधी सवाल–जवाब भी ग्रामीणों में काफी लोकप्रिय हैं। वरिष्ठ कृषि वैज्ञानिक डा. एम.एस. स्वामीनाथन का मानना है कि इंटरनेट पर ग्रामीण और कृषि शिक्षा के लिए विश्वविद्यालय भी खुलना चाहिए।

ये कुछ उदाहरण मात्र हैं। इस तरह के प्रयोग आज देश के लगभग हर कोने में हो रहे हैं। इस लहर को नया नाम भी दिया जाने लगा है – विकास के लिए सूचना व संचार टेक्नोलॉजी या आईसीटी फॉर डेवलपमेंट। आई.सी.टी. यानी इनफार्मेशन एंड कम्युनिकेशन टेक्नोलॉजी। एक विकासशील देश के विकास में नई टेक्नोलॉजी की भूमिका हो सकती है, यह जांचने के पहले जान लें कि यह आईसीटी क्या बला है!

सन् 1970 और 1980 के दशक में उपग्रह टेक्नोलॉजी से आए बदलावों को संचार क्रांति या कम्युनिकेशन रिवोल्युशन का नाम दिया गया। मुख्य रूप से इस दौरान टेलीफोन और टेलीविजन सेवाओं का विस्तार हुआ। आपस में दूरियां कम हुई और हम 'ग्लोबल विलेज' की परिकल्पना की ओर बढ़े। सन् 1980 के दशक में एक नई टेक्नोलॉजी उभरी– इनफोर्मेशन टेक्नोलॉजी या सूचना तकनीकी। इस दौर को इलेक्ट्रानिक रिवोल्यूशन कहा गया। इसके चलते भीमकाय कंप्यूटर का आकार घटकर टेबल पर रखे जाने वाले पीसी या पर्सनल कंप्यूटर का हो गया। पीसी के अवतरण के साथ ही उसे चलाने के लिए सॉफ्टवेयर का निर्माण होने लगा। हार्डवेयर और सॉफ्टवेयर के सम्मिश्रण को नाम दिया गया – आईटी। लेकिन टेक्नोलॉजी की आंधी आईटी पर नहीं रुकी। 1990 के दशक के मध्य में एक और सूचना क्रांति की हवा चली–इंटरनेट के रूप में। इसके मूल में थी नेटवर्किंग, यानी कि जो अलग–अलग कंप्यूटर फैले हुए थे, उन्हें इंटरनेट के माध्यम से जोड़ दिया गया। इस विश्वव्यापी मकड़जाल को कहा गया – 'वर्ल्ड वाइड वेब।'

लेकिन इस मकड़जाल में घुसपैठ आम आदमी के लिए तब तक संभव नहीं थी, जब तक कि उसके पास कंप्यूटर और टेलीफोन न हो। यह तो माना जा रहा था कि अधिकांश गांवों में टेलीफोन की सुविधा हो गई है, या कार्य प्रगति पर है, पर कीमतों में कमी के दौर में भी एक पर्सनल कंप्यूटर 25 हजार रुपये से कम मूल्य पर उपलब्ध नहीं हो रहा है। हालांकि बंगलौर स्थित कंप्यूटर सांइसेज विभाग के वैज्ञानिकों के एक समूह ने एक ऐसा उपकरण ईजाद किया है, जिसे शायद इंटरनेट के उपयोग के लिए कम कीमत (लगभग 10 हजार) में उपलब्ध कराया जा सकता है। इसे सिंप्यूटर या 'सिंपल कंप्यूटर' का नाम दिया है। इसे चलाना आसान है और इसमें पीसी की तरह की–बोर्ड, माउस वगैरह का आंतक नहीं है। इसमें छोटा संवेदनशील स्क्रीन होता है, जिसमें स्पर्श से हरकत आ जाती है। इसे इस्तेमाल करने वाला पेन जैसे उपकरण की सहायता से अपना संदेश लिख सकता है। इसमें 'की' बटनों को दबाने की आवश्यकता नहीं होती है। केवल अपनी उंगलियों के उपप्रयोग की जरूरत पड़ती है। इसके बाद के संस्करण शायद ध्वनि सुनकर ही कार्यशील हो जाएं। इसमें स्क्रीन को छूने की भी जरूरत नहीं पड़ेगी। केवल इसके सामने बोलें और बाकी सारा काम सिंप्यूटर खुद ही कर देगा।

सिंप्यूटर विकसित करने वाले वैज्ञानिकों का दावा है कि ग्रामीण क्षेत्रों में कई प्रकार के एप्लीकेशन के लिए इसका प्रयोग किया जा सकता है। इसका मुख्य एप्लीकेशन माइक्रो बैंकिंग, कृषि जानकारी, मौसम के बारे में सूचना, दूरस्थ शिक्षा, स्वास्थ्य संबंधी आंकड़ों का संकलन और साधारण इंटरनेट ब्राउज़िंग आदि हो सकता है। यह सुरक्षित बैंकिंग सॉल्यूशन के लिए भी एक आदर्श गतिशील प्लेटफार्म साबित हो सकता है। हालांकि महाराष्ट्र में कई सहकारी बैंकों ने पहले से ही ग्रामीण ग्राहकों को उनके दरवाजों तक जाकर सुविधाएं मुहैया कराना शुरु कर दी हैं। वे अपने साथ कारोबारी प्रिंटर के साथ–साथ एक छोटा पोर्टेबल उपकरण लेकर चलते हैं,

जो ग्राहकों को बैंक के साथ लेन–देन करने में मदद करता है और उन्हें तत्काल हाथों–हाथ इसकी रसीद भी दे दी जाती है। जानकार कहते हैं कि सिंप्यूटर इस कार्य को ज्यादा कारगर तथा सुरक्षित तरीके से कर सकता है। लेकिन तमाम सुविधाओं के बावजूद तकनीकी क्रांति की क्या उपयोगिता रह जाती है, जब हमारे ग्रामीण लोगों के लिए इंटरनेट पर कोई लाभदायक जानकारी ही उपलब्ध नहीं है। एक बड़ी बात यह भी है कि सिंप्यूटर जैसे उपकरण कर ही क्या सकते हैं, जबकि हमारे ग्रामीण क्षेत्रों में बुनियादी सुविधाएं ही उपलब्ध नहीं हैं। सिंप्यूटर की माइक्रो बैंकिंग एप्लीकेशन कर ही क्या सकती है, जब हमारे गांवों में माइक्रो फाइनेंस प्रणाली का कोई अता–पता ही नहीं है। महाराष्ट्र तथा गुजरात के सहकारी संघ के अलावा कुछ और अपवाद हो सकते हैं, पर यह संख्या ज्यादा नहीं होगी।

बुंदेलखंड के पुनावली कला गांव तक जाने के लिए वाहन तो दूर की बात कोई सड़क तक नहीं है। धूल भरे रास्ते तय करने के बाद लगभग 500 मिट्टी के घरों का यह गांव अब बिजली और पानी की सुविधा पा चुका है। हालांकि बिजली कुछ ही दिन पहले आई है और पर्याप्त खंभे न होने के कारण उसका ठोस लाभ लोगों को नहीं मिल रहा। गांव के अधिकांश लोगों की गुजर–बसर खेती–बाड़ी से चलती है। शिक्षा के मामले में भी यह गांव पिछड़ा हुआ है। पर लोगों को यह जानकर आश्चर्य हो सकता है कि सूचना क्रांति के इस दौर में पुनावली गांव में साइबर कैफे खोले जाएंगे। डेवलपमेंट अल्टरनेटिव संस्था (डी.ए.), जो बुंदेलखंड के अन्य गांवों में भी साइबर कैफे खोल चुकी है, का मानना है कि गांव के क्षेत्र में खोले जा रहे सूचना के इन केंद्रों से देश की और खासकर गांवों की तकदीर बदल जाएगी।

तकदीर सचमुच बदल सकती है अगर सरकारी प्रणालियां सक्षम हों। अगर आप सिंप्यूटर के इस्तेमाल के जरिए स्वास्थ्य संबंधी बेहतर आंकड़े उपलब्ध भी कर लेते हैं तो सरकारी कर्मचारियों को इन आंकड़ों के उपयोग का तरीका आना जरूरी है अन्यथा इसके उपयोग का अर्थ ही क्या है?

दूसरी ओर अब भी सवाल कीमत का है। अगर सिंप्यूटर की कीमत वर्तमान का दसवां हिस्सा अर्थात् एक हजार रुपये भी हो जाए, तब भी इसे लेना मुश्किल होगा। तब तक यह गांववालों के लिए एक महंगा खिलौना ही बना रहेगा, जब तक कि हम इस माध्यम से लोगों को रोजगार नहीं दे सकते। यदि इंटरनेट पर स्थानीय रोजगार संबंधी सूचनाएं, विभिन्न सरकारी सहायता वाली स्कीमों की जानकारी, स्थानीय बाजार भाव, मौसम और खेती संबंधी सूचनाएं आदि मिल जाएं तो निश्चित ही यह ग्रामीणों की जरूरत वाले सरकारी विभागों से जुड़ेगा। उदाहरण के लिए यदि किसी को जन्म या मृत्यु प्रमाणपत्र चाहिए तो वह उसे इनफोर्मेशन किओस्क के माध्यम से गांव में ही प्राप्त कर ले या फिर तहसील आफिस कोई अर्जी भेजनी हो या खसरा–खतौनी, जमीन रिकार्ड की कोई जानकारी चाहिए तो वह इनफोर्मेशन किओसक से यह सब काम कर ले। लेकिन इसके लिए स्थानीय विभागों को तैयार करना होगा, उनके सभी रिकार्ड कंप्यूटरीकृत करने होंगे और निश्चित रूप से यह अपने यहां एक बड़ा और जोखिम भरा काम होगा।

एक सिक्के के दो पहलू की तरह स्थिति साफ है। यह नया माध्यम सूचना के अधिकार जैसे कानूनों को एक नया अर्थ दे सकता है; प्रशासकों, जन–प्रतिनिधियों और जनता के बीच रागात्मक संवाद का एक जरिया बन सकता है; ग्रामीणों को नए हुनर सिखा सकता है; उनके उत्पादों के लिए नए बाजार खोल सकता है; स्वास्थ्य सेवाओं की गुणवत्ता में सुधार हो सकता है और आम आदमी तथा जिला प्रशासन के बीच की दूरी भी कम हो सकती है। कुल मिलाकर सर्वांगीण विकास के रास्ते खुल सकते हैं।

संभावनाएं अपार हैं। चीन के कम्युनिस्ट नेता देंग जिआओ पेंग ने कभी विकास के संदर्भ में कहा था कि लोगों को मछली नहीं, मछली पकड़ने की छड़ी दो। लोगों को मछली पकड़ने की छड़ी दी जा रही है, पर इसके खतरे भी हैं। अगर इसके साथ इसके सभी पहलुओं पर विचार की ताकत लोगों को, किसानों को, विद्यार्थियों को न दे सकें या कि स्वविवेक की ताकत का विकास न हो पाए तो यह छड़ी भारत में अमीरी और गरीबी के बीच नए सिरे से एक 'डिजिटल लक्ष्मण रेखा' खींच देगी। ❑

मकान नं.–21, गली नं.–2,
पूर्वी गुरु अंगद नगर,
दिल्ली–110092

क्षेत्रीय प्रचार निदेशालय

क्षेत्रीय प्रचार निदेशालय सरकार और जन सामान्य के बीच दोतरफा (सूचना संप्रेषण और फीडबैक) संपर्क के रूप में काम करने वाला ग्रामोन्मुखी अंतर–वैयक्तिक संचार का सबसे बड़ा माध्यम है। निदेशालय के लक्ष्य और उद्देश्य संक्षेप में इस प्रकार हैं : (क) लोगों को लोकतंत्र, समाजवाद और धर्मनिरपेक्षता जैसे बुनियादी राष्ट्रीय सिद्धांतों के बारे में शिक्षित करना; (ख) विकास कार्यों को लागू करने के लिए जनमत जुटाना और राष्ट्र निर्माण के कार्यों में जनता को भागीदार बनाना; और (ग) सरकारी कार्यक्रमों और नीतियों तथा क्षेत्रीय स्तर पर उनके कार्यान्वयन के बारे में लोगों की प्रतिक्रियाओं से सरकार को अवगत कराना, ताकि जरूरत पड़ने पर उचित कार्रवाई और सुधारात्मक कदम उठाए जा सकें। निदेशालय लोगों तक अपना संदेश पहुंचाने के लिए मुख्यतौर पर समूह चर्चाओं, जनसभाओं, विचार संगोष्ठियों आदि जैसे अंतर–वैयक्तिक संवाद माध्यमों का इस्तेमाल करता है। कार्यक्रमों को प्रभावशाली बनाने के लिए फिल्मों, चित्र प्रदर्शनियों और मनोरंजन कार्यक्रमों का उपयोग किया जाता है। रंगोली, वाद–विवाद, निबंध लेखन, खेलकूद आदि प्रतियोगिताओं का भी आयोजन किया जाता है। क्षेत्रीय प्रचार निदेशालय का मुख्यालय नई दिल्ली में है और देशभर में इसके 22 प्रादेशिक कार्यालय और 268 क्षेत्रीय प्रचार इकाइयां हैं। वर्ष 2001–02 के दौरान क्षेत्र प्रचार इकाइयों ने प्रमुख दिवसों और सप्ताहों, मेलों और उत्सवों का कवरेज किया, जिनमें विश्व स्वास्थ्य दिवस, विश्व जनसंख्या दिवस, बाल दिवस, मानवाधिकार दिवस, विश्व स्तनपान सप्ताह, गांधी मेला, पुरी की जगन्नाथ रथयात्रा, विभिन्न स्वास्थ्य मेले और कुल्लू का दशहरा उत्सव शामिल थे।

ग्रामीण रोजगार में सूचना टेक्नोलॉजी की भूमिका

☞ प्रो.पी. पुरुषोत्तम

सूचना टेक्नोलॉजी जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं का विकल्प तो नहीं बन सकती लेकिन विकास प्रक्रिया को तेज करने में यह उत्प्रेरक की भूमिका निभा सकती है। इससे बुनियादी सेवाएं अधिक कुशल और अभिनव तरीके से उपलब्ध कराने में मदद तो मिल ही सकती है और साथ ही इसके जरिए गांवों में रोजगार के नए अवसर पैदा करने की भी अपार संभावनाएं हैं।

सूचना टेक्नोलॉजी जीवन प्रणाली को सहारा देने वाली किसी भी बुनियादी आवश्यकता जैसे पेयजल, पर्याप्त भोजन, बुनियादी स्वास्थ्य सेवाएं, साक्षरता, आवास आदि का विकल्प नहीं बन सकती, लेकिन विकास प्रक्रिया को तेज करने में यह उत्प्रेरक की भूमिका निभाती है। इससे बुनियादी सेवाएं अधिक कुशल और अभिनव तरीके से उपलब्ध कराने में मदद मिल सकती है। लोगों को जमीन संबंधी रिकार्ड, जाति प्रमाणपत्र, आय प्रमाणपत्र जैसे महत्वपूर्ण दस्तावेज सूचना टेक्नोलॉजी की मदद से बहुत कम लागत पर उपलब्ध कराए जा सकते हैं और इस तरह वे सरकार द्वारा प्रायोजित विकास कार्यक्रमों तक आसानी से पहुंच सकते हैं। जहां कहीं इस तरह की सूचनाएं इलेक्ट्रॉनिक विधि से उपलब्ध होती हैं बिचौलियों का महत्व कम होता चला जाता है। इसी प्रकार सूचना टेक्नोलॉजी का उपयोग राज्य सरकारों, स्थानीय प्रशासन, गैर–सरकारी संगठनों और ग्रामीण लोगों के समूहों तक विकास कार्यक्रमों को कारगर तरीके से पहुंचाने के लिए किया जा सकता है। इसके अलावा, इससे आंकड़ा संग्रह की रफ्तार तेज करने, आंकड़ों को सबसे निचले स्तर पर विकासकर्मियों तक पहुंचाने में मदद मिल सकती है। सूचना टेक्नोलॉजी से अनाज की खरीद, राहत सामग्री के वितरण, जमीन संबंधी लेन–देन के पंजीकरण आदि में भ्रष्टाचार और देरी दूर करके प्रशासन को बेहतर बनाने में मदद मिल सकती है।

ग्रामीण प्रक्रियाओं का नेटवर्क बनाना

जिन इलाकों में गरीबी, बेरोजगारी, निरक्षरता और सामाजिक तथा बुनियादी ढांचे संबंधी पिछड़ापन है, वहां ग्रामीण प्रक्रियाओं पर आर्थिक गड़बड़ी और संकटपूर्ण स्थितियों का असर बड़ी आसानी से पड़ जाता है। सूक्ष्म उद्यमों की प्रक्रियाओं/दस्तकारों को नेटवर्क से जोड़ने और स्व–सहायता समूहों को सार्वजनिक कार्यक्रमों से जोड़कर आपसी तालमेल कायम करना सबसे कारगर और स्थाई उपाय है। इसके लिए कार्यक्रम लागू करने वाली एजेंसियों को सूचना टेक्नोलॉजी की क्षमता का भरपूर फायदा उठाना होगा। गरीबों को विभिन्न गतिविधियों पर आधारित समूहों से जोड़कर बड़ा फायदा हो सकता है। इस नेटवर्क से निवेश बाजार के पश्चवर्ती संपर्कों तथा उत्पाद बाजार के अग्रवर्ती संपर्कों को सुदृढ़ करने में मदद मिल सकती है। नेटवर्क सदस्यों को अपनी समस्याओं को बताने, सामूहिक और उपयुक्त समाधान खोजने तथा उपायों पर अमल करने की क्षमता बढ़ा देते हैं। इस तरह

☞ लेखक राष्ट्रीय ग्रामीण विकास संस्थान, हैदराबाद में ग्रामीण उद्योग तथा रोजगार केंद्र के प्रोफेसर और अध्यक्ष हैं।

के नेटवर्क सदस्यों को क्षेत्र के अन्य व्यावसायिक संगठनों के साथ सौदेबाजी के लिए आवश्यक शक्ति और आकार उपलब्ध करा सकते हैं। इस नेटवर्किंग में सबसे महत्वपूर्ण बात समय पर व्यावसायिक सूचनाएं उपलब्ध कराना है। नेटवर्कों के संघ उत्पादक समूहों को अपनी पहुंच का दायरा दूरदराज के बाजारों तक बढ़ाने में सक्षम बना सकते हैं। असल में देश के कुछ भागों में यह पहले से ही हो रहा है। उदाहरण के लिए आंध्र प्रदेश के एक जिले में स्व–सहायता समूह के सदस्यों ने इमली इकट्ठा कर उसका प्रसंस्करण किया और बाजार में खरीददारों को बेचा। इनका पता बाजार आसूचना के माध्यम से लगाया गया और आंकड़ों को ग्रामीण बाजारों में कंप्यूटर में संकलित किया गया। इससे सदस्यों की शुद्ध आय 60 प्रतिशत बढ़ गई। इस तरह सूचना टेक्नोलॉजी ग्रामीण उत्पादकों और विकासकर्मियों को व्यावसायिक सूचनाएं एकत्र करने, प्रसंस्कृत करने और व्यक्तिगत सदस्यों, स्व–सहायता समूहों और स्व–सहायता समूहों के नेटवर्क को ये सूचनाएं शीघ्रता से वितरित करने में मदद करती है, इससे बड़े उपक्रम से होने वाली किफायत का फायदा उठाने में सहायता मिलती है। केरल में कोट्टायम में नाबार्ड और खादी बोर्ड से सहायता प्राप्त गैर–सरकारी संगठन करीब 2,500 ग्रामीण परिवारों की आवश्यकताएं पूरी कर रहा है। यह संगठन उनके सामान की सामूहिक खरीद कर लेता है। इससे यह साबित हो गया है कि नेटवर्किंग से परिवार में शामिल प्रत्येक परिवार हर महीने करीब 40 रुपये तक बचा लेता है।

अगर सूचनाओं को शीघ्रता से संप्रेषित करना है तो सूचनाओं को एकत्र और प्रचारित–प्रसारित करने वाले साधनों पर स्वयं जनता का नियंत्रण होना चाहिए न कि सरकार से पैसा लेकर काम करने वाले कर्मचारियों का। चेन्नई के एम. एस. स्वामीनाथन फाउंडेशन ने यह साबित कर दिया है कि ऐसा करना व्यावहारिक है। फाउंडेशन ने पांडिचेरी के तटवर्ती गांवों के लोगों को नेटवर्क से जोड़ने के लिए इनफो शॉप स्थापित की। इससे लोगों को मौसम संबंधी जानकारियां, ई–मेल सेवा, मंडियों में कृषि उत्पादों के ताजा भाव, रोजगार संबंधी जानकारियां और इंटरनेट सुविधाएं प्राप्त हो रही हैं। इस सफलता से प्रेरित होकर पांडिचेरी सरकार ने 208 गांवों में नेटवर्क का विस्तार किया है।

1998 में प्रधानमंत्री के प्रारंभिक निर्णयों में से एक यह भी था कि सूचना प्रौद्योगिकी विषयक राष्ट्रीय कार्यबल का गठन किया जाएगा। इस निर्णय ने इस नवोदित क्षेत्र में तेजी से प्रगति की राह की तमाम बाधाएं दूर कर दीं। इसी के चलते केंद्र, राज्य सरकारों, सूचना प्रौद्योगिकी उद्योग तथा विदेशों में रह रहे भारतीय विशेषज्ञों के बीच मजबूत साझेदारी बन सकी। सूचना प्रौद्योगिकी में भारत की सफलता को बढ़ते साफ्टवेयर निर्यात मात्र से ही नही मापा जा सकता। यह सफलता भारतीय युवाओं में राष्ट्रीय गौरव और आत्मविश्वास में हुई वृद्धि में भी निहित है।

ग्रामीण विकास के विभिन्न कार्यक्रमों के बारे में सूचनाएं सूचना टेक्नोलॉजी के माध्यम से प्रचारित–प्रसारित की जा सकती हैं। जनता को ताजा और उपयोगी सूचनाएं इंटरनेट क्योस्क के माध्यम से भी उपलब्ध कराई जा सकती हैं। अगर मंडियों के बारे में सूचनाओं (जिंसों के दाम, मांग और आपूर्ति आदि) और कृषि संबंधी सूचनाओं को (जैसे कीट–पतंगों से बचाव की चेतावनी, मृदा परीक्षण, कृषि भूमि का क्षेत्रफल, खेती के तौर–तरीकों, पशुधन प्रबंधन आदि) भी इनमें शामिल कर दिया जाए तो इन क्योस्कों को अधिक उपयोगी और व्यापक बनाया जा सकता है।

ग्रामीण क्षेत्रों में सूचना टेक्नोलॉजी के क्षेत्र में रोजगार

हर वर्ष रोजगार के एक करोड़ अवसर जुटाने के बारे में डा. एस. पी. गुप्ता की अध्यक्षता में गठित योजना आयोग के विशेष दल ने अनुमान लगाया है कि दसवीं योजना में सूचना टेक्नोलॉजी क्षेत्र में हर साल रोजगार के करीब चार लाख नए अवसर उत्पन्न किए जाएंगे। इनमें से अधिकतर में साफ्टवेयर का विकास, विभिन्न आनलाइन गतिविधियां, डाटा प्रसंस्करण और काल–सेंटर संचालन जैसे कार्य शामिल हैं। ये गतिविधियां शहरी क्षेत्रों में केंद्रित हैं और कार्पोरेट सेक्टर की मूल्य संवर्धन संबंधी आवश्यकताएं पूरी करती हैं। इसके लिए सबसे निचले स्तर की व्यावसायिक योग्यताओं की आवश्यकता होगी। निश्चय ही इस तरह के व्यवसायों में काम करने वालों को अधिक आमदनी होगी। सरकार और निगमित कंपनियां इस तरह की शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए आवश्यक बुनियादी ढांचा तैयार करने में निवेश कर रही हैं और सूचना टेक्नोलॉजी में प्रशिक्षित पेशेवरकर्मियों को रोजगार दे रही हैं। लेकिन कार्पोरेट क्षेत्र निर्माण क्षेत्रों में कम मुनाफे की वजह से इस तरह के शैक्षिक विकास और प्रोत्साहन कार्यक्रमों में भागीदारी निभाने में ज्यादा रुचि नहीं ले रहा है। इसके साथ ही कृषि और अन्य संबद्ध ग्रामीण उपक्षेत्रों में सार्वजनिक क्षेत्र का घटता निवेश ग्रामीण क्षेत्रों में सूचना टेक्नोलॉजी के अनुप्रयोग को जारी रखने तथा बढ़ावा देने के लिए अनुकूल नहीं है। हमें यह तथ्य ध्यान में रखना चाहिए कि ग्रामीण क्षेत्रों में सूचना टेक्नोलॉजी के बहुत से रोजगार पूरक किस्म के हैं जिनमें काम करने वालों,

उद्यमियों और विकास के लिए सूचना टेक्नोलॉजी के उपयोग की राष्ट्रीय नीति में इस तथ्य को ध्यान में रखा जाना चाहिए। ग्रामीण शिक्षा और व्यावसायिक प्रशिक्षण का इस तरह से पुनर्निर्धारण किया जाना चाहिए कि स्कूली शिक्षा पूरी करने वाले और स्नातक स्व–रोजगार/रोजगार की तलाश शुरू करने से पहले सूचना टेक्नोलॉजी के उपयोग का बुनियादी कौशल प्राप्त करे लें। इसके लिए ये उपाय करने होंगे :–

- सूचना टेक्नोलॉजी की अवधारणा के बारे में भ्रम दूर करना; इस दृष्टि से कंप्यूटरों को सरल बनाना, उन्हें आवाज से निर्देशित होने में सक्षम बनाना, तथा भारतीय भाषाओं के माध्यम से कंप्यूटर संचालन की सुविधा का विकास पहले कदम होंगे।
- ग्रामीण क्षेत्रों, खासतौर पर पिछड़े क्षेत्रों में न्यूनतम स्तर के सामाजिक और भौतिक आधारभूत ढांचे का निर्माण, ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक संख्या में कंप्यूटर उपलब्ध कराने भर से बात बनने वाली नहीं है और करोड़ों ग्रामीण लोगों को कंप्यूटर लगाने से ही लाभ नहीं होने वाला है। गांवों में कंप्यूटर लगा भर देने से ग्रामीण क्षेत्रों के विद्युतीकरण, स्कूल भवनों के निर्माण, प्रतिक्षित शिक्षकों की नियुक्ति, स्कूलों में मूलभूत शैक्षिक ढांचा उपलब्ध कराने और इंटरनेट के जरिए नेटवर्क सुविधा के लिए ग्रामीण संस्थाओं को टेलीफोन से जोड़ने की आवश्यकता कम नहीं हो जाती। यहां यह सवाल उठाया जा सकता है कि जब गांवों में बिजली नहीं है तो वहां कंप्यूटर कैसे चलाए जा सकते हैं। वड़ोदरा के पास कलाली में श्री कांतिभाई श्राफ के श्राफ फाउंडेशन ट्रस्ट ने इसी सिलसिले में एक प्रयोग किया है। यहां बैलों की सहायता से बिजली तैयार कर कंप्यूटर चलाए गए हैं। यह प्रयोग इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे यह बात साबित हो जाती है कि आधुनिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए परंपरागत ग्रामीण संसाधनों का सफलतापूर्वक उपयोग किया जा सकता है।
- जिन क्षेत्रों में सूचना टेक्नोलॉजी का उपयोग किया जा सकता है उनका चयन करने में इसका उपयोग करने वाले लोगों की भागीदारी तथा सूचना टेक्नोलॉजी जागरूकता कार्यक्रम तैयार करना और इसे लागू करना, जनता की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए सरकार और स्थानीय संस्थाओं के कामकाज में पारदर्शिता की आवश्यकता आदि महसूस की गई है। इससे न केवल लोग विकास कार्यों में लगी संस्थाओं के और नजदीक आएंगे बल्कि इन संस्थाओं की विश्वसनीयता भी बढ़ेगी।
- जनसंगठनों, जैसे स्व–सहायता समूहों और सबसे निचले स्तर की पंचायतीराज संस्थाओं को सूचना टेक्नोलॉजी के इस्तेमाल और गांवों के गरीब लोगों को उसके उपयोग के लिए सक्षम बनाना।
- ग्रामीण विकास में लगी सरकारी और गैर–सरकारी एजेंसियों के कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षण के माध्यम से जागरूक बनाना, और
- समाज के सबसे निचले स्तर पर नई पहल को बढ़ावा देना, खासतौर पर लागत कम करना और सूचना टेक्नोलॉजी उपयोग के नए–नए तौर–तरीकों का विकास करना, गांवों के लोगों को सूचना टेक्नोलॉजी संबंधी कौशल से युक्त करने के लिए एम.एस. स्वामीनाथन रिसर्च फाउंडेशन ने जो पहल की है, उससे ग्रामीण विकास के लिए कार्य कर रही अन्य संस्थाओं तथा व्यक्तियों को भी प्रेरणा लेनी चाहिए।

इसके अलावा सूचना टेक्नोलॉजी को उपयोग करने वाली एजेंसियों को इस टेक्नोलॉजी के अनुप्रयोग के अन्य क्षेत्रों का पता लगाने की पहल करनी चाहिए। अनुप्रयोग के लिए व्यावहारिक माड्यूल तैयार करने चाहिए और सबसे महत्वपूर्ण कार्य यह करना चाहिए कि 'लक्षित लाभार्थियों' को इस प्रक्रिया में सक्रिय भागीदारी के रूप में शामिल करना चाहिए। आदर्श स्थिति तो यह है कि इस तरह की भागीदारी से इन लोगों को सूचना टेक्नोलॉजी की शक्ति का अनुमान लगाने और उनके द्वारा निर्धारित प्राथमिकता वाले क्षेत्रों में इसके उपयोग का अवसर प्राप्त होगा।

सारांश

टेक्नोलॉजी तक पहुंच की कमी और निरक्षरता गांवों के लोगों के गरीबी से बाहर निकलने के संघर्ष में सबसे बड़ी बाधा बने हुए हैं। गरीबों को टेक्नोलॉजी की दृष्टि से सशक्त बनाना गरीबी उन्मूलन की किसी भी रणनीति का महत्वपूर्ण तत्व माना जाने लगा है। इस संदर्भ में सूचना टेक्नोलॉजी में नए युग की शुरुआत करने की क्षमता है। बाजार के सहयोग से सूचना टेक्नोलॉजी का उपयोग आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक जैसे रोजमर्रा की जिंदगी के तमाम क्षेत्रों में किया जा रहा है क्योंकि अब यह माना जाने लगा है कि इससे उत्पादकता बढ़ती है। जहां तक वर्तमान स्थिति का सवाल है, केवल धनी लोग इसका उपयोग कर रहे हैं और लाभ उठा रहे हैं। अगर इस प्रक्रिया को सिर्फ बाजार शक्तियों के हवाले छोड़ दिया जाए तो सूचना टेक्नोलॉजी में धनी लोगों को और धनी बनाने की जबर्दस्त क्षमता है, जिससे गरीब और पिछड़ सकते हैं तथा समाज में असमानताएं बढ़ सकती हैं। इसलिए ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में सूचना टेक्नोलॉजी को उसका वह महत्वपूर्ण स्थान मिलना ही चाहिए, जिसकी यह हकदार है। इस संबंध में एक आवश्यक कदम यह हो सकता है कि ग्रामीण शिक्षा और व्यावसायिक प्रशिक्षण कार्यक्रमों का नए सिरे से निर्धारण किया जाए ताकि स्कूली शिक्षा पूरी करने वाले और स्नातक सूचना टेक्नोलॉजी के उपयोग के बुनियादी कौशल से संपन्न हों और उनकी उत्पादकता तथा रोजगार प्राप्त करने की क्षमता बढ़े। सूचना टेक्नोलॉजी की क्षमता का उपयोग ग्रामीण श्रमिकों, और स्व–रोजगार में संलग्न व्यक्तियों की उत्पादकता बढ़ाने में किया जाना चाहिए। इस कार्य में सरकारी नीतियों और विकास कार्यक्रमों की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। ❑

(रोजगार समाचार से साभार)

"राजनीति से फुर्सत निकालकर हम रचनात्मक कार्य में लग जाएं और कृषि सुधार को उचित महत्व प्रदान करें तो हम किसानों को बहुत कुछ सिखा सकते हैं और उनसे सीख सकते हैं।"

महात्मा गांधी

ई-गवर्नेंस की लोकप्रियता में वृद्धि

राधाकृष्ण राव

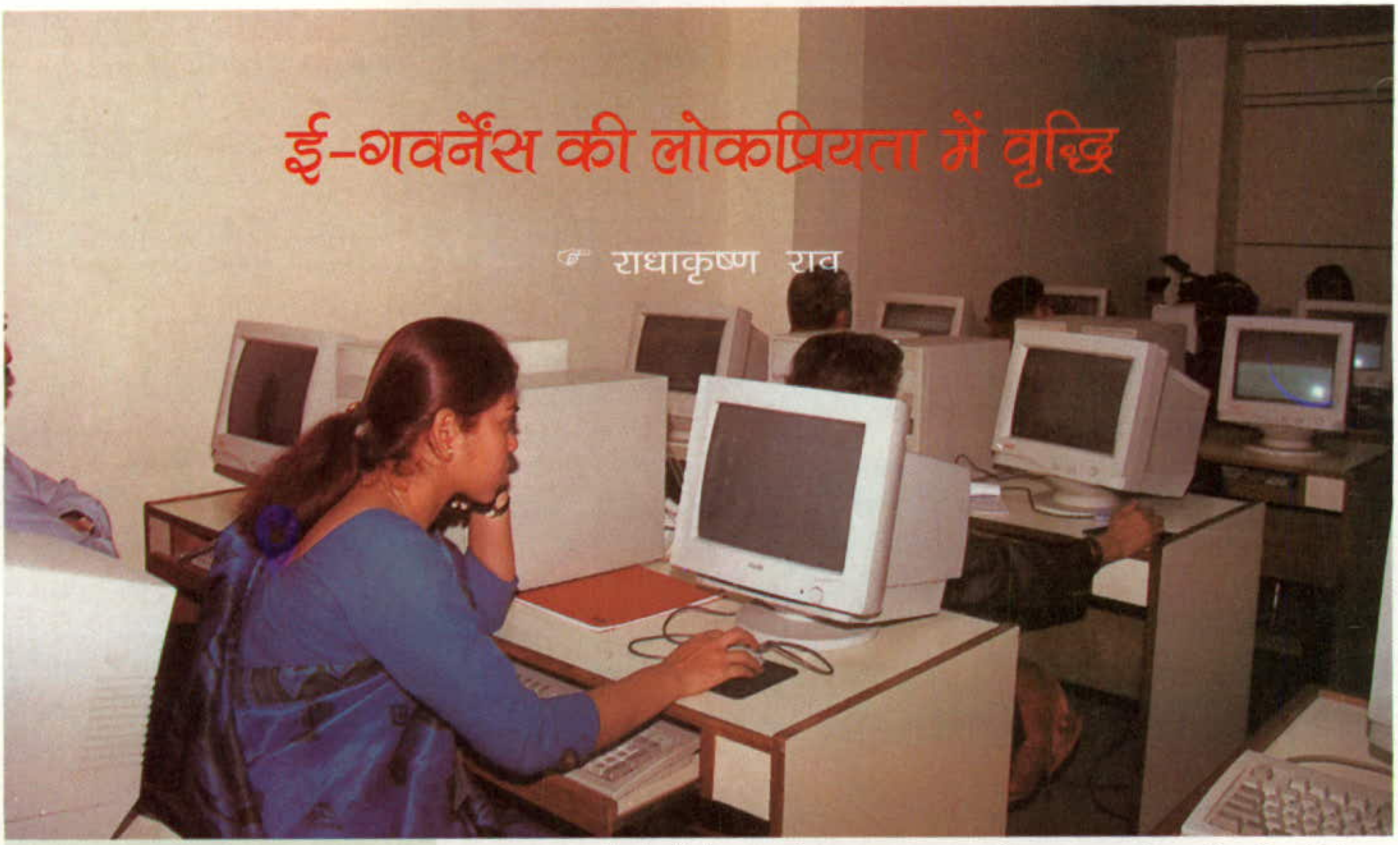

ई-गवर्नेंस लोकतांत्रिक सरकार के कामकाज के हर स्तर पर जनता और प्रशासन के बीच आने वाली बाधाओं को दूर करने का सर्वोत्तम विकल्प है। यह बात स्पष्ट है और दिखाई भी देती है कि ई-गवर्नेंस प्रशासन को जनता के अनुकूल, पारदर्शी और जवाबदेह बनाने की दिशा में एक जोरदार प्रयास है।

सूचना टेक्नोलॉजी युग ने ज्ञान पर आधारित पहल के जो द्वार खोले हैं उसका एक उत्साहजनक परिणाम ई-गवर्नेंस की अवधारणा के रूप में उभरकर सामने आया है। निश्चय ही यह लोकतांत्रिक सरकार के कामकाज के हर स्तर पर जनता और प्रशासन के बीच आने वाली बाधाओं को दूर करने का सर्वोत्तम विकल्प है। यह बात स्पष्ट है और दिखाई भी देती है कि ई-गवर्नेंस प्रशासन को जनता के लिए अनुकूल, पारदर्शी और जवाबदेह बनाने की दिशा में एक जोरदार प्रयास है। कर्नाटक, केरल, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश ने अपने प्रशासनिक तंत्र को चुस्त बनाया है। इसके लिए कई अभिनव ई-गवर्नेंस परियोजनाएं प्रारंभ की गई हैं।

दिसंबर 2002 में तत्कालीन सूचना टेक्नोलॉजी और संचार मंत्री प्रमोद महाजन ने देश के सभी राज्यों के एक-एक जिले में ई-गवर्नेंस परियोजनाएं लागू करने के लिए 309 करोड़ रुपये लागत की महत्वाकांक्षी योजना का उद्‌घाटन किया। यह परियोजना काफी हद तक कर्नाटक की 'भूमि' परियोजना से प्रेरणा लेकर प्रारंभ की गई जिसमें नागरिकों को जमीन संबंधी अभिलेख ऑनलाइन उपलब्ध कराए जाते हैं। उम्मीद है कि "इन परियोजनाओं से जनता अधिकार-संपन्न बनेगी और राज्यों को कार्यकुशलता तथा पारदर्शिता की दिशा में आगे बढ़ाने में मदद मिलेगी।

'भूमि' परियोजना की एक महत्वपूर्ण बात यह है कि आज कर्नाटक के 67 लाख किसान इसके दायरे में आ गए हैं और भू-स्वामित्व संबंधी लाखों अभिलेख इसमें दर्ज हैं। न केवल जनता ने इसकी सराहना की है बल्कि वित्तीय सहायता देने वाली अंतर्राष्ट्रीय एजेंसियों ने भी इसको सराहा है। सर्वेक्षण के निष्पक्ष विश्लेषण तथा कर्नाटक के विभिन्न भागों से मिले फीडबैक से भी इस बात की पुष्टि हो जाती है कि लोग इस परियोजना से संतुष्ट हैं क्योंकि उन्हें न तो राजस्व विभाग के कर्मचारियों की उपेक्षा और अफसरशाही का सामना करना पड़ता है, और न रिश्वत देनी पड़ती है। राजस्व विभाग के प्रशासनिक तंत्र से कोई काम निकलवाने में लालफीताशाही के कारण जो देरी होती थी, वह भी अब कम

लेखक जाने-माने स्वतंत्र पत्रकार हैं।

हो गई है। भूमि परियोजना शुरू होने से पहले किसानों और भू–स्वामियों को जमीन के मालिकाना हक, पट्टेदारी और काश्त संबंधी प्रमाणपत्र प्राप्त करने के लिए लेखपाल की मुट्ठी गर्म करनी पड़ती थी लेकिन इस परियोजना के लागू होने के बाद किसान को केवल 15 रुपये का शुल्क एक बार देना होता है और उसके बाद वे राज्यभर में फैले 168 तालुक कार्यालयों में स्थित भूमि केंद्रों से बिना किसी देरी या परेशानी के जमीन संबंधी दस्तावेज की कम्प्यूटर से निकली प्रतिलिपि प्राप्त कर सकते हैं। इन भूमि केंद्रों में लगे कम्प्यूटरों के टच स्क्रीन पर छूते ही भूमि संबंधी अभिलेख को देखा जा सकता है। भूमि परियोजना के बारे में हाल में किए गए एक अध्ययन से पता चलता है कि इस परियोजना का सबसे बड़ा फायदा सेवा की गुणवत्ता और लाभार्थियों की संतुष्टि है।

कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि भूमि परियोजना ने अपनी इन्हीं खूबियों की वजह से वर्ष 2002 के लिए कॉमन वैल्थ एसोसिएशन ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन एंड मैनेजमेंट पुरस्कार (आत्मनिर्भर शासन की स्थापना तथा नए क्षेत्रों की खोज के लिए राष्ट्र–मंडल पुरस्कार) जीता। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम और विश्व बैंक दोनों ने भव्य परिकल्पना करने और उसे कल्पनाशील तरीके से लागू करने के लिए 'भूमि' की प्रशंसा की है। इसकी सफलता से ही प्रेरित होकर तमिलनाडु, महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश जैसे राज्यों ने अपने यहां लागू करने के लिए भूमि परियोजनाओं के मॉडल विकसित किए हैं। यहां यह बताना भी प्रासंगिक होगा कि मध्य प्रदेश की ज्ञानदूत परियोजना को समाज के सबसे निचले स्तर पर विकास तथा शासन की समस्याओं को सुलझाने में कल्पनाशील दृष्टिकोण अपनाने के लिए वर्ष 2000 का स्टॉकहोम पुरस्कार मिला है।

कर्नाटक के राजस्व विभाग के अतिरिक्त सचिव राजी चावला जो भूमि परियोजना के पीछे मुख्यप्रेरक शक्ति रहे हैं, कहते हैं कि इस परियोजना का उपयोग सार्वजनिक और निजी क्षेत्र की विभिन्न परियोजनाओं के लिए डाटाबेस के रूप में किया जा सकता है। एक खास उदाहरण देते हुए वह बताते हैं कि अब यह बताना संभव हो गया है कि राज्य में काली मिट्टी वाली जमीन कहां–कहां है। इससे कृषि के विकास की परियोजनाएं बनाने में बड़ी मदद मिल सकती है। एक अन्य क्षेत्र में इस डाटा का उपयोग गरीबी रेखा से नीचे जीवन–यापन करने वालों की पहचान कर उन्हें पीले रंग वाले विशेष राशनकार्ड जारी करने में किया जा सकता है। इसी तरह निजी क्षेत्र की कृषि संबंधी फर्मे जमीन, मिट्टी और भू–आकृति संबंधी आंकड़ों का उपयोग करके अपने उत्पादों की बिक्री बढ़ा सकते हैं।

तमिलनाडु के मदुरै जिले में एन–लॉग नाम की एक निजी कंपनी आप्टिकल फाइबर नेटवर्क का फायदा उठाकर लोकल लूप टेक्नोलॉजी के जरिए दूरसंचार संबंधी सेवाएं किफायती दर पर उपलबध करा रही है। इससे जिले में बड़ा चमत्कार दिखाई देने लगा है और निजी उद्यमियों को ई–गवर्नेंस समेत बहुत–सी सेवाएं शुरू करने में मदद मिली है। पड़ोसी राज्य केरल में नागरिकों को करों के भुगतान में होने वाली परेशानियों को दूर करने के लिए फ्रेंड्स (फास्ट, रिलाएबल, इन्सटेंट, एफीशेंट नेटवर्क फार डिस्बर्समेंट सर्विसेज) नाम की सूचना टेक्नोलॉजी पर आधारित परियोजना शुरू की गई है। इससे बिचौलियों, रिश्वतखोरी, देरी और लंबी–लंबी लाइनों को समाप्त करने में मदद मिली है। असल में 'फ्रेंड्स' एक केंद्रकृत संग्रह काउंटर है जिसमें लाइसेंस के नवीकरण शुल्क से लेकर लगभग हर तरह के कर तथा उपयोग शुल्क जमा कराए जा सकते हैं। एक वर्ष के अंतराल में यह परियोजना केरल के 12 जिलों के 1.3 करोड़ लोगों की पहुंच के दायरे में आ गई है। 'फ्रेंड्स' के पीछे मूल सोच यही है कि नागरिकों को मूल्यवान ग्राहक माना जाए।

दूसरी ओर आंध्र प्रदेश की ई–सेवा परियोजना "सौकार्यम" लोगों में तत्काल बड़ी लोकप्रिय हो गई है। यह विशाखापत्तनम के बंदरगाह शहर में लागू है। इसके माध्यम से संपत्ति कर का ऑन लाइन भुगतान किया जा सकता है तथा सरकार तथा स्थानीय निकायों की कई परियोजनाओं का ब्यौरा देखा जा सकता है। इसी तरह हैदराबाद शहर में ई–सेवा केंद्र नागरिकों और अफसरशाही के बीच व्यक्तिगत संपर्क समाप्त करने की दिशा में एक नया प्रयोग है। ई–सेवा केंद्र नागरिकों से 63 प्रकार के कर और शुल्क स्वीकार करते हैं, इनमें कोई भी नागरिक बिक्री कर, बीमा प्रीमियम, संपत्ति कर, पानी–बिजली व टेलीफोन बिल का एक साथ भुगतान कर सकता है। आंध्र प्रदेश सरकार ने राज्य में ई–गवर्नेंस की संभावनाएं बढ़ाने के लिए तीन सूत्री रणनीति तैयार की है।

आंध्र प्रदेश में दूर दराज के ग्रामीण क्षेत्रों को सूचना टेक्नोलॉजी के दायरे में लाने के एक महत्वपूर्ण प्रयास के अंतर्गत एक ब्रॉड बैंड पर आधारित ग्रामीण परियोजना 'साइबर ग्रामीण' शुरू की गई है। स्वर्ण भारत ट्रस्ट नाम के एक गैर–सरकारी संगठन द्वारा शुरू की गई इस महत्वाकांक्षी परियोजना का उद्देश्य देश के ग्रामीण क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार की सेवाएं उपलबध कराने वाले केंद्र स्थापित करना है। साइबर ग्रामीण के जरिए ग्रामीण क्षेत्रों में इंटरनेट ब्रॉड बैंड का उपयोग करके ग्रामीण अर्थ व्यवस्था को दृढ़ता प्रदान करने के लिए कई तरह की सेवाएं तथा सुविधाएं उपलब्ध कराई जाती हैं इनमें टेलीफोन सुविधा, टेलीमेडिसीन सेवा, दूरस्थ शिक्षा, उच्च गति इंटरनेट, ई–मेल, फुटकर बिक्री, वीडियो कांफ्रेंसिंग, डिजिटल मनोरंजन; सरकारी सेवाएं उपलब्ध कराना और सूचना देना आदि शामिल है।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि ई–गवर्नेंस में सूचना टेक्नोलॉजी का उपयोग करके कई तरह की सेवाएं उपलबध कराई जाती हैं। इसका उद्देश्य इंटरनेट पर आधारित सामुदायिक टेलीफोन केंद्रों या सरकारी विभागों के माध्यम से सरकार के कामकाज के तौर–तरीकों में बदलाव लाना है तथा इसे "प्रक्रिया तथा संज्ञा केंद्रित मामलों की बजाय नागरिक और सेवा केंद्रित मंच का रूप प्रदान करना है।" ❑

(अनुवादित)

"सच्ची लोकशाही केंद्र में बैठे हुए बीस आदमी नहीं चला सकते। वह तो नीचे से हर एक गांव के लोगों द्वारा चलाई जानी चाहिए।"

महात्मा गांधी

ग्रामीण परिदृश्य में उपग्रह संचार

दीक्षा बिष्ट

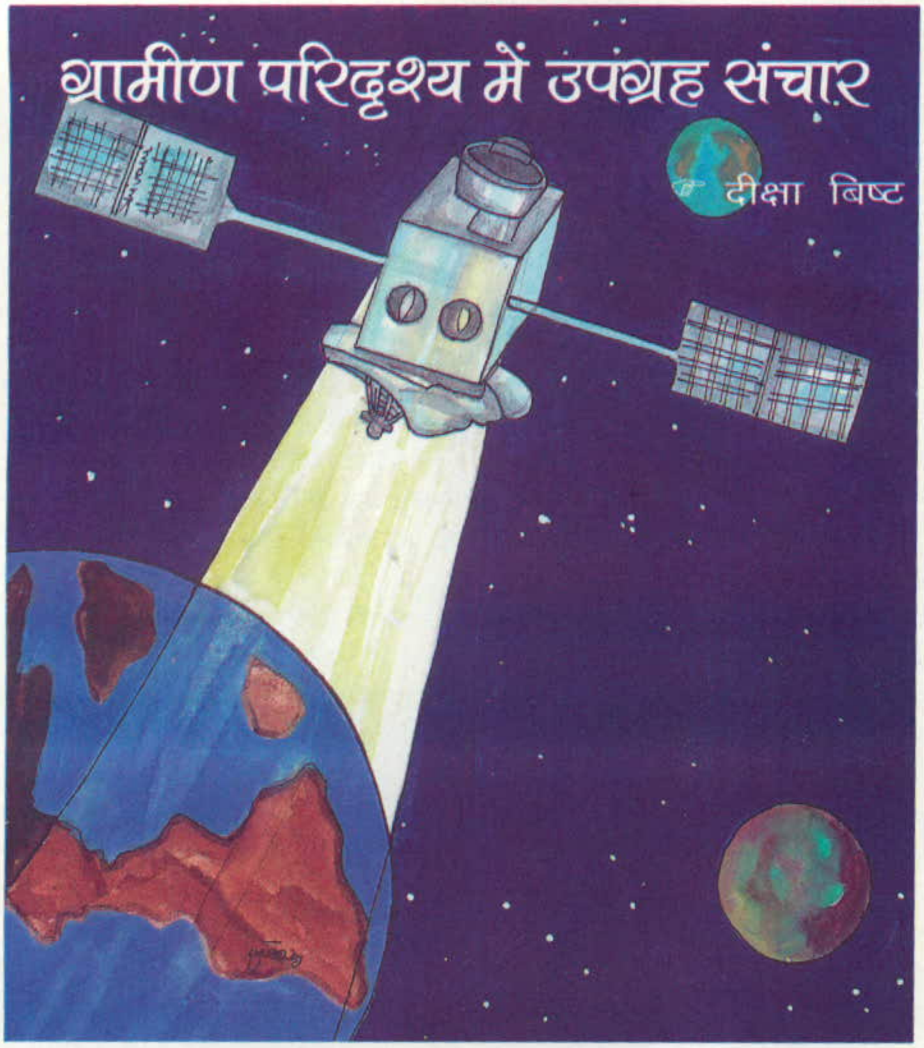

आज के विज्ञान और प्रौद्योगिकी के युग में हर क्षेत्र में चहुंदिश विकास हुआ है। नई–नई प्रौद्योगिकियों के आगमन से हम उत्तरोत्तर प्रगति की ओर बढ़ते चले जा रहे हैं, और जब बात आती है संचार की, तो विकास की तीव्रता और दिनानुदिन परिवर्तनशील प्रौद्योगिकी दांतों तले अंगुली दबाने को मजबूर कर देती है।

यह संचार और सूचना प्रौद्योगिकी का ही कमाल है कि आज हम छोटे से कमरे में बैठकर टेलीविजन के माध्यम से दुनिया–जहान की घटनाओं का लाइव टेलीकास्ट देखते हैं तो सात समुंदर पार बसे अपने सगे–संबंधियों से घर बैठे और जब चाहे चलते–फिरते मोबाइल फोन द्वारा बात कर सकते हैं और इंटरनेट की तो बात ही क्या! भरपूर सुविधाएं दे डाली हैं इस कंप्यूटर ने।

जब बात आई है उपग्रह प्रसारण की तो यहां यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि पूरे देश में गांव–गांव तक फैले ये दुनियाभर के टीवी चैनल, गांव–गांव तक पहुंची टेलीफोन और दूरदर्शन की सुविधा इसी उपग्रह प्रसारण की देन है।

वर्ष 2000 में ही तो हमारे देश ने उपग्रह सेवा के 25 वर्ष पूरे किए हैं। वर्ष 1975 में *साइट (सेटेलाइट इंसट्रक्शनल टेलीविजन एक्सपेरिमेंट)* कार्यक्रम की स्थापना के द्वारा उपग्रह प्रसारण सेवा की शुरुआत हुई थी लेकिन इसकी व्याख्या करने से पूर्व इसके इतिहास की एक झलक पाना भी अत्यंत आवश्यक है।

वैश्विक संचार यानी *ग्लोबल कम्युनिकेशन* के लिए अंतरिक्ष में केंद्र स्थापित करने की पहले पहल कल्पना आर्थर क्लार्क ने की थी। उन्होंने *वायरलैस वर्ल्ड 1945* में प्रस्तुत अपने प्रपत्र में सर्वप्रथम जियोसिंक्रोनस सेटेलाइट की कल्पना को प्रस्तुत किया और बताया कि तीन ऐसे सेटेलाइट वैश्विक संचार सुविधा प्रदान कर सकते हैं। उन्होंने स्पेस स्टेशन के लाभों के बारे में बताया कि यही एक तरीका है जिसके द्वारा संचार की सभी प्रकार की संभावी सेवाओं के लिए संपूर्ण विश्व की कवरेज प्राप्त की जा सकती है।

आर्थर क्लार्क की इस कल्पना को साकार करने का बीड़ा उठाया सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक एवं अंतरिक्ष विज्ञान के जनक डा. विक्रम साराभाई ने, जिन्होंने हमारे देश में उपग्रह संचार की नींव रखी और संचार सेवाओं को देश के सुदूर क्षेत्रों तक पहुंचाया। यह उनकी दूरदर्शिता ही थी कि उन्होंने सूचना एवं संचार तंत्र की पहुंच उन तक बनाई, जिन्होंने कभी समाचार–पत्रों तक की सूरत न देखी थी।

किसी भी नई संचार प्रौद्योगिकी की भांति उपग्रहों में भी अदम्य विकास की क्षमता होती है, सिर्फ एक उपग्रह बिना किसी टेरेस्ट्रियल नेटवर्क की सहायता के पृथ्वी के एक तिहाई भाग तक अपनी पहुंच बना सकता है। उपग्रहों के द्वारा तो विश्व दूरस्थ क्षेत्रों तक हर प्रकार का संचार यानी ध्वनि, आंकड़े तथा दृश्यों के रूप में पहुंचाया जा सकता है।

यूं तो भारत में प्रसारण सेवा की शुरुआत सन् 1924 में निजी रेडियो सेवा की स्थापना के साथ हुई थी और कई उतार–चढ़ावों के बाद सन 1936 में इसे आल इंडिया रेडियो पुनर्नामित करके संचार विभाग के अंतर्गत कर दिया गया।

वर्ष 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद आल इंडिया रेडियो को एक पृथक विभाग के रूप में सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय के अंतर्गत कर दिया गया। वर्ष 1959 में भारत में टेलीविजन का पदार्पण हुआ और सितंबर 1959 में आल इंडिया रेडियो सेवाओं के एक भाग के रूप में दूरदर्शन प्रसारण की शुरुआत हुई। सन् 1961 में दूरदर्शन प्रसारण का स्कूल एजुकेशनल टेलीविजन प्रोजेक्ट के अंतर्गत विस्तार किया गया। लेकिन दूरदर्शन प्रसारण का असली विस्तार सन 1972 में मुंबई में दूसरे टेलीविजन केंद्र के खुलने के साथ हुआ। उसके बाद

लेखिका, राष्ट्रीय विज्ञान संचार संस्थान (सी.एस.आई.आर.) से संबद्ध हैं।

सन् 1973 में श्रीनगर तथा अमृतसर में तथा 1975 में कोलकाता, चेन्नई तथा लखनऊ में टेलीविजन केंद्रों की स्थापना हुई। दूरदर्शन प्रसारण की कवरेज को बढ़ाने के लिए अनेक शहरों में क्षेत्रीय केंद्र भी खोले गए।

वर्ष 1975 दूरदर्शन प्रसारण के विस्तारीकरण में एक मील का पत्थर साबित हुआ, जब इसी वर्ष उपग्रह आधारित दूरदर्शन प्रसारण के लिए एक परीक्षण कार्यक्रम **साइट** (सेटेलाइट इंसट्रक्शनल टेलीविजन एक्सपेरिमेंट) आरंभ किया गया।

इस कार्यक्रम को आरंभ करने का श्रेय भी सुप्रसिद्ध भारतीय अंतरिक्ष वैज्ञानिक डा. विक्रम साराभाई को ही जाता है। इस संबंध में सन् 1969 में, जब वह इंडियन नेशनल कमेटी फॉर स्पेस रिसर्च के अध्यक्ष थे, एक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में प्रस्तुत प्रपत्र में उन्होंने कहा था कि यह राष्ट्रीय कार्यक्रम भारत की 80 प्रतिशत आबादी को टेलीविजन प्रसारण की सुविधा उपलब्ध कराएगा और आगामी दस वर्षों के दौरान यह राष्ट्रीय एकता में तो प्रभावी होगा ही, साथ ही सामाजिक एवं आर्थिक विकास की योजनाओं के कार्यान्वयन तथा इलेक्ट्रॉनिक उद्योगों को बढ़ावा देने में भी सहायक होगा। विशेषरूप से ये अलग–थलग पड़े क्षेत्रों यानी सुदूर ग्रामीण अंचल और पिछड़े क्षेत्रों में बसी विशाल आबादी के लिए भी अत्यंत महत्वपूर्ण साबित होगा।

उन्होंने तभी इस बात को जोर देकर कहा था कि संचार उपग्रह ही भारत में सीधा प्रसारण उपलब्ध कराने में सहायक हो सकते हैं और इनकी पहुंच देश के पिछड़े अविकसित ग्रामीण क्षेत्रों में भी होगी। वास्तव में डा. साराभाई की बात सही सिद्ध हुई।

पहले *जियोसिंक्रोनस सेटेलाइट* (syncom) प्रमोचित किए जाने के साथ ही डा. साराभाई ने आपरेशनल टेलीविजन ब्राडकास्टिंग के लिए अंतरिक्ष संचार पद्धति पर अध्ययन आरंभ कर दिया। *इसरो (इंडियन स्पेस रिसर्च ऑर्गेनाइजेशन), भारत* तथा *नासा (नेशनल एयरोनॉटिक्स एंड स्पेस एडमिनिस्ट्रेशन), अमेरिका* द्वारा संचालित संयुक्त अध्ययन के बाद संपूर्ण देश में उपग्रहों के माध्यम से टेलीविजन कवरेज उपलब्ध कराने की सिफारिश की गई। फलस्वरूप 1968 में भारत

उपग्रह प्रसारण में मील के पत्थर

1975	सेटेलाइट इंस्ट्रक्शनल टेलीविजन एक्सपेरिमेंट (साइट) कार्यक्रम की स्थापना
1978	पाकिस्तान से क्रिकेट मैच का सीधा प्रसारण
1982	राष्ट्रीय कार्यक्रमः उपग्रह नेटवर्किंग द्वारा एशियाई खेलों का सीधा रंगीन प्रसारण
1984	यूजीसी द्वारा देशभर में क्लासरूम की स्थापना
1986	महाराष्ट्र में पहले क्षेत्रीय सेटेलाइट नेटवर्क की स्थापना
1991	सीएनएन द्वारा खाड़ी युद्ध का सीधा प्रसारण
1991	निजी चैनल – स्टार टीवी द्वारा भारत में पांच चैनलों का प्रसारण
1992	निजी चैनल – जी टीवी द्वारा भारत में पहले हिंदी चैनल की शुरुआत
1993	दूरदर्शन द्वारा विशिष्ट उपग्रह चैनलों की शुरुआत
1993	सन टीवी तथा अन्य के द्वारा क्षेत्रीय भाषा के उपग्रह चैनलों की शुरुआत
1995	ट्रेनिंग एंड डवलपमेंट कम्युनिकेशन चैनल (टीडीसीसी) की स्थापना
1997	प्रसार भारती – स्वायत्त भारतीय प्रसारण निगम
2000	इग्नू द्वारा स्थापित ज्ञानदर्शन चैनल

सरकार ने साइट परीक्षण कार्यक्रम के संचालन के लिए स्वीकृति प्रदान कर दी।

इस कार्यक्रम के संचालन के लिए नासा, अमेरिका के एक शक्तिशाली उपग्रह *एटीएस–6* यानी *एप्लीकेशन टेक्नोलॉजी सेटेलाइट* की सहायता ली गई। इस उपग्रह की पृथ्वी पर स्थित ट्रांसमीटरों से सिग्नल प्राप्त करने की तथा सुदूर गांवों में स्थापित एंटीनाओं तक सिग्नल पहुंचाने की क्षमता अभूतपूर्व थी।

सौभाग्यवश एटीएस–6 को सन् 1974 में ही अंतरिक्ष की कक्षा में स्थापित किया गया था और यह अंतरिक्ष संचार में नई प्रौद्योगिकियों के परीक्षण के लिए नासा द्वारा प्रायोजित उपग्रहों की श्रृंखला का अंतिम उपग्रह था।

अंततः एक अगस्त, 1975 को साइट कार्यक्रम की शुरुआत अमेरिका के एटीएस–6 की सहायता से हुई। इसके अपलिंक केंद्र अहमदाबाद तथा दिल्ली में थे। एक अगस्त, 1975 की सायं 6.20 बजे का समय वो रोमांचक क्षण था, जब हमारे देश के 6 राज्यों के लगभग 2,400 गांवों में 2,330 टेलीविजन सेट एक साथ जीवंत हो उठे। उस समय लगभग 4 घंटे तक कार्यक्रम का प्रसारण किया जाता था। यह टेलीविजन प्रसारण केन्या के ऊपर 36,000 किलोमीटर की दूरी पर स्थित उच्च क्षमता के जियोसिंक्रोनस उपग्रह के द्वारा किया जा रहा था। उसी दौरान डा. विक्रम साराभाई इस दुनिया से विदा हो चुके थे। उनकी इस उपलब्धि के बाद ही उन्हें भारतीय अंतरिक्ष के जनक होने की उपाधि प्राप्त हुई।

यही साइट कार्यक्रम बाद में विश्व के सर्वोत्कृष्ट सामाजिक–प्रौद्योगिकीय प्रयोग के रूप में जाना गया। इसी कार्यक्रम के द्वारा अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी की क्षमता के प्रभावी जनसंचार माध्यम के रूप में दर्शन हुए। इसी प्रयोग के द्वारा देश के राष्ट्रीय विकास को प्रोत्साहित करने का अवसर तो मिला ही, साथ ही उपग्रह प्रसारण में सुदूर तथा पिछड़े क्षेत्रों तक टेलीविजन सिग्नल पहुंचाने का अनुभव भी प्राप्त हुआ।

साइट के अंतर्गत होने वाले प्रसारण में शैक्षिक कार्यक्रम, कृषि स्वास्थ्य एवं साफ–सफाई तथा राष्ट्रीय एकता से संबंधित कार्यक्रम प्रस्तुत किए जाते थे। इसी के परिणामस्वरूप भारत विश्व का पहला ऐसा देश बना, जिसने उपग्रह प्रसारण के द्वारा सीधे गांवों तक शैक्षिक दूरदर्शन की पहुंच बनाई।

बाद में साइट कार्यक्रम के प्रभाव का मूल्यांकन करने पर ज्ञात हुआ कि प्रतिदिन प्रत्येक टीवी सेट पर 80 से 100 व्यक्ति कार्यक्रमों का आनंद उठाते थे, जिनमें से 30 प्रतिशत ऐसे व्यक्ति थे जिनका इससे पूर्व कभी भी मास मीडिया से संपर्क नहीं हुआ था। इस मूल्यांकन में यह भी देखा गया कि कृषि तथा शिक्षा संबंधी कार्यक्रमों का तो लाभ

लोगों ने उठाया ही, स्वास्थ्य एवं साफ–सफाई, पोषण आदि से संबंधित सूचनाएं प्राप्त कर सैकड़ों लोगों का जीवन साइट कार्यक्रम की बदौलत बच पाया।

कहना न होगा कि इस साइट कार्यक्रम के कारण भारतीय टेलीविजन परिदृश्य में जो नाटकीय मोड़ आया उसने दूरदर्शन प्रसारण का परिदृश्य ही बदल दिया।

साइट कार्यक्रम द्वारा उपग्रह आधारित दूरदर्शन प्रसारण की सफलता एवं प्रभाव को देखते हुए भारत सरकार ने स्वदेशी घरेलू उपग्रह सेवा इन्सेट श्रृंखला की स्थापना 1982 में की। वर्ष 1985 तक टेलीविजन ट्रांसमीटरों की संख्या 172 थी जो 1995 में 672 तथा 1997 तक 868 तक पहुंच गई।

वर्तमान में आज ट्रांसमीटरों की संख्या लगभग हजार पहुंच गई है। लगभग 7 करोड़ टी वी सैट मौजूद हैं और आज की तारीख में देश के लगभग 65 प्रतिशत क्षेत्र में दूरदर्शन प्रसारण की पहुच बन चुकी है। यह प्रसारण देश की लगभग 80 प्रतिशत आबादी तक पहुंच रहा है।

साइट कार्यक्रम के तुरंत बाद उपग्रह संचार को बढ़ावा देने के उद्देश्य से *स्टेप* यानी *सेटेलाइट टेलीकम्युनिकेशन एक्सपेरिमेंट प्रोजेक्ट* की शुरुआत की गई। इस परियोजना का प्रारंभिक उद्देश्य जियोसिंक्रोनस उपग्रहों का प्रायोगिक उपयोग घरेलू संचार के लिए उपग्रह दूरसंचार, रेडियो नेटवर्किंग तथा टी वी ट्रांसमिशन का परीक्षण करना था। जिसके अनुभव से वैज्ञानिकों ने ऐसी अद्भुत क्षमता प्राप्त की, जिससे 1982 में स्वदेशी आपरेशनल डोमेस्टिक सेटेलाइट सिस्टम इन्सेट की नींव पड़ी और आज यह विश्व की सबसे बड़ी घरेलू संचार उपग्रह प्रणाली है।

10 अप्रैल, 1982 को इन्सेट श्रृंखला और देश के पहले संचार उपग्रह इन्सेट 1–ए के प्रक्षेपण के साथ ही दूरदर्शन के सभी क्षेत्रीय केंद्रों से राष्ट्रीय कार्यक्रम का पदार्पण हुआ। जिसका प्रसारण दिल्ली से अन्य केंद्रों को किया जाता था। नवंबर 1982 में जब देश में एशियाई खेलों का आयोजन किया गया तो शुरुआत हुई रंगीन टेलीविजन प्रसारण की। सन् 1983 में जहां टीवी सिग्नलों की उपलब्धता केवल 28 प्रतिशत आबादी तक थी, वहीं सन् 1985 में दुगुनी तथा 1990 में 90 प्रतिशत से भी ज्यादा हो गई।

वर्ष 1991 में तो और क्रांति आई और भारत में आगमन हुआ अंतर्राष्ट्रीय उपग्रह प्रसारण का, जिसमें पहले–पहल सीएनएन द्वारा खाड़ी युद्ध का सीधा प्रसारण दिखाया गया। इसके बाद *एशिया सेट–1* उपग्रह के माध्यम से *स्टार टीवी* ने भारत में पांच चैनलों का प्रसारण आरंभ किया। सन् 1992 के पूर्वार्द्ध तक लगभग 5 करोड़ भारतीयों की स्टार टीवी कार्यक्रमों तक पहुंच थी। धीरे–धीरे यह संख्या तब और बढ़ती गई, जब देश में केबल टीबी की शुरुआत हुई, जो मशरूम की तरह फैलते–फैलते संपूर्ण देश में जा पहुंचा। उपग्रह दूरदर्शन की बढ़ती लोकप्रियता को देखते हुए अनेक भारतीय उपग्रह आधारित टेलीविजन सेवाएं 1991 और 1994 के मध्य अस्तित्व में आईं, जिसमें प्रमुख था पहला हिंदी उपग्रह चैनल *जी टीवी*। वर्ष 1994 के अंत तक भारत में 12 उपग्रह आधारित चैनल उपलब्ध थे। वर्ष 1996 के अंत तक तो उपग्रह आधारित प्रसारण का परिदृश्य ही बदल गया। बड़ी–बड़ी अंतर्राष्ट्रीय मीडिया कंपनियां भारत आ गईं। उपग्रह प्रसारण की लोकप्रियता तब और बढ़ी जब हिंदी–अंग्रेजी दोनों भाषाओं में कार्यक्रमों का प्रसारण होने लगा। इससे उपग्रह प्रसारण की लोकप्रियता और बढ़ी।

साइट कार्यक्रम से जहां लोगों को मनोरंजक कार्यक्रम देखने को मिले, वहां शैक्षिक कार्यक्रमों को भी बढ़ावा मिला। वहीं इग्नू द्वारा प्रयोग किए जाने वाले *ट्रेनिंग एंड डवलपमेंट चैनल* तथा *ग्रामसैट सिस्टम* से *एड्यूसेट सिस्टम* का विकास हुआ।

शिक्षा मंत्रालय और एनसीईआरटी ने स्कूल ब्रॉडकास्टिंग सिस्टम को *इन्सेट* द्वारा कई राज्यों में स्थापित कर देश के शैक्षिक विकास में योगदान दिया। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) ने भी देश के दूरस्थ क्षेत्रों में उपग्रह आधारित प्रसारण द्वारा कक्षाओं का संचालन किया, तो इग्नू ने भी देश के दूरस्थ क्षेत्रों में उपग्रह आधारित प्रसारण द्वारा कक्षाओं का संचालन आरंभ किया, इग्नू आज अपने शैक्षिणिक चैनल *ज्ञानदर्शन* का सफलतापूर्वक प्रसारण कर रहा है। ट्रेनिंग एंड डवलपमेंट कम्युनिकेशन चैनल नेटवर्क का उपयोग तो कई सरकारें अपने फील्ड स्टाफ को नियमित प्रशिक्षण देने के लिए कर रही हैं।

ग्रामीण विकास में उपग्रह संचार से कितनी सहायता मिली है, के प्रत्युत्तर में स्वयं इसरो के अध्यक्ष डा. कस्तूरीरंगन का कहना है कि इस क्षेत्र में विशाल स्तर पर एक सर्वेक्षण किया गया जिसमें 3600 घरों के 23,175 पारिवारिक सदस्यों को सम्मिलित किया गया और इस सर्वेक्षण को चार चरणों में आठ महीनों के अंतराल पर किया गया तो पाया गया कि सभी लोग कार्यक्रमों के नियमित दर्शक थे और स्वास्थ्य के प्रति लोगों में सर्वाधिक जागरूकता पाई गई। पढ़ने के इच्छुक छात्रों को उपग्रह प्रसारण से भी लाभ मिला है, परंतु देश के दूरस्थ तथा पिछड़े क्षेत्रों में बसे बच्चों को शिक्षित करने की चुनौतियों से निपटने के उद्देश्य से *एज्यूसेट* नामक उपग्रह का प्रक्षेपण किया जाना है। इस क्षेत्र में कार्य पहले से ही आरंभ हो चुका है।

यहां यह कहना अनुचित न होगा कि आगे चाहे कितने ही उपग्रह प्रक्षेपित किए जाएं, कितना ही विकास हो जाए पर उपग्रह प्रसारण आधारित दूरस्थ एवं पिछड़े क्षेत्रों तक प्रसारण एवं संचार सेवा देने वाले *साइट* कार्यक्रम के योगदान को कभी न भुलाया जा सकेगा। और न भूला जा सकेगा डा. विक्रम साराभाई के योगदान को, जिनके कारण ग्रामीण परिदृश्य में उपग्रह संचार की स्पष्ट भूमिका आज भी झलक रही है और भविष्य में भी अपना वर्चस्व बनाए रखेगी। ❑

48 नीलकमल अपार्टमेंट
एच–3, विकासपुरी, नई दिल्ली–110018

"जो व्यक्ति अपने कर्त्तव्य का उचित पालन करता है, उसे अधिकार अपने आप मिल जाते हैं। सच तो यह है कि एकमात्र अपने कर्त्तव्य के पालन का अधिकार ही ऐसा अधिकार है जिसके लिए ही मनुष्य को जीना चाहिए और मरना चाहिए। उसमें सब उचित अधिकारों का समावेश हो जाता है। बाकी सब तो अनाधिकार अपहरण जैसा है और उसमें हिंसा के बीज छिपे रहते हैं।"

महात्मा गांधी

मोबाइल डाकिया योजना
प्रौद्योगिकी की खाई पाटने का प्रयास

☞ अनंत मित्तल

दिन-ब-दिन प्रौद्योगिकीय उन्नति के इस जमाने में भी ऐसा माना जा रहा है कि एक अरब से ज्यादा आबादी वाले भारत देश में आधी से ज्यादा जनसंख्या प्रौद्योगिकी के फायदों से महरूम ही रह जाएगी। इसका कारण यह बताया जा रहा है कि लगभग एक-तिहाई आबादी आज भी निरक्षर है और देश की आधी आबादी के पास नई प्रौद्योगिकी के जरिए अपने जीवनयापन को आसान बनाने या जीवन स्तर सुधारने के लिए क्रय शक्ति ही नहीं है। जाहिर है कि इस आशंका को निर्मूल बनाने के लिए सरकार द्वारा पहल की जानी ही अपेक्षित है। क्योंकि अपने नागरिकों को समतामूलक विकास का मौका उपलब्ध कराना भारतीय संविधान के अनुरूप सरकार की जिम्मेदारी है। अपने इस संवैधानिक दायित्व के निर्वाह के लिए ही केंद्र सरकार ने पिछले साल यानी वर्ष 2002 के दिसंबर माह में 24 तारीख को प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के जन्मदिवस के मौके पर मोबाइल डाकिया योजना शुरू की थी। **यह योजना फिलहाल प्रयोग के तौर पर देश के करीब 10,000 गांवों में ही शुरू की गई है। इन गांवों तक पहुंचने का जिम्मा 2,000 डाकघरों के जरिए ग्रामीण डाकियों को सौंपा जा रहा है। इसके लिए शुरू में पांच करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है।** योजना के अंतर्गत ग्रामीण डाकसेवकों को वायरलैस इन लोकल लूप प्रौद्योगिकी से संचालित होने वाले मोबाइल टेलीफोन उपकरण दिए जा रहे हैं जिनसे वह आबंटित गांवों में डाक पहुंचाने के साथ-ही-साथ बारी-बारी हरेक घर पर पहुंचकर उन्हें परदेस गए अपने सगे-संबंधियों से बात करने की सुविधा प्रदान करेंगे। इससे शहरों और गांवों के बीच बढ़ती जा रही प्रौद्योगिकी की खाई को काफी हद तक पाटने में सहायता मिलेगी। इस फोन उपकरण से वायरलैस इन लोकल लूप के खंभे से अमूमन पांच किलोमीटर के दायरे में बात की जा सकती है। इन सभी फोन उपकरणों पर एसटीडी एवं आईएसडी सुविधा भी उपलब्ध कराई जा रही है।

ग्रामीण डाकिया योजना के अंतर्गत दिए जाने वाले डब्ल्यूएलएल फोन उपकरणों की स्क्रीन पर कॉल का पैसा भी दिखता है, जिससे लोगों को अपनी आर्थिक हैसियत के अनुसार बात करने में सुविधा हो रही है। बातचीत खत्म होने के बाद डाकिया पैसों की रसीद भी देगा और ऐसी हर बातचीत की कुल राशि पर उसे 20 प्रतिशत कमीशन भी मिलेगी। प्रत्येक कॉल पर पांच प्रतिशत शुल्क डाक विभाग को मिलेगा। इस योजना के अंतर्गत गांववालों के लिए आने वाले संदेश डाक सेवक द्वारा फोन पर सुनकर उन तक पहुंचाए जाने का भी प्रावधान है। इसके संदेशवाहक को गांववालों से पांच रुपये प्रति संदेश वसूल करने का अधिकार भी दिया गया है। इस योजना का प्रयोगात्मक दौर पूरा होने पर इसे धीरे-धीरे देश के अन्य डाकखानों के अंतर्गत आने वाले गांवों में भी लागू किया जाएगा। संदर्भ के लिए देश में फिलहाल कुल 1,57,000 डाकखाने हैं। प्रत्येक डाकखाने के अंतर्गत राजस्व वर्गीकरण के हिसाब से मोटेतौर पर चार गांव आते हैं। यह योजना हरियाणा, पंजाब और अंडमान एवं निकोबार के अलावा देश के सभी दूरसंचार क्षेत्रों में लागू की गई है।

लोकसभा में 23 जुलाई, 2003 को संचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी राज्यमंत्री अशोक प्रधान द्वारा दी गई सूचना के अनुसार ग्रामीण संचार सेवक योजना फिलहाल देश में केरल के 13 जिलों, उत्तरांचल के 12 जिलों, मध्य प्रदेश और राजस्थान के 10-10 जिलों, तमिलनाडु और गुजरात के 8-8 जिलों, हिमाचल प्रदेश के 7 जिलों, कर्नाटक और असम के 6-6 जिलों, आंध्र प्रदेश और महाराष्ट्र के 5-5 जिलों, मेघालय, मिजोरम और नगालैंड के

☞ स्वतंत्र पत्रकार

3–3 जिलों, जम्मू एवं कश्मीर तथा त्रिपुरा के 2–2 जिलों और मणिपुर के एक जिले में प्रायोगिक तौर पर लागू की जा रही है।

इस योजना पर सिर्फ सरकार, देश के गांववालों की ही नहीं, बल्कि विश्व बैंक और तमाम देशी–विदेशी दूरसंचार और प्रौद्योगिकीय क्षेत्र की विभिन्न कंपनियों की निगाहें भी टिकी हुई हैं। **यदि यह प्रयोग सफल रहा तो जाहिर है कि गांववालों के लिए सिर्फ संचार की एक सुगम, स्थाई और कारगर प्रणाली ही आकार ग्रहण नहीं करेगी, बल्कि गलाकाट होड़ में फंसी दूरसंचार कंपनियों के लिए एक नए और अपरिमित संभावनाओं वाले विशाल बाजार का भी सृजन हो जाएगा।** उम्मीद जताई जा रही है कि बांग्लादेश ग्रामीण बैंक द्वारा चलाए गए ग्रामीण स्वयं सहायता समूहों के जरिए प्रत्येक गांव को संगठित बैंकिंग प्रणाली से जोड़ने के प्रयोग की तरह ही मोबाइल डाकिये की यह योजना भी अन्य विकासशील देशों के लिए मिसाल बन सकती है। स्वयं सहायता समूहों की स्थापना के प्रयोग को भारत सहित कई अन्य विकासशील देश सफलतापूर्वक अपने–अपने देश में अपना रहे हैं।

सूचना और संचार प्रौद्योगिकी को सर्वजन हिताय इस्तेमाल करने की इस महत्वाकांक्षी परियोजना से यह भी उम्मीद की जा रही है कि इससे गांवों में दूरसंचार सुविधा का बिना कोई स्थाई निवेश किए विस्तार हो पाएगा। उल्लेखनीय है कि शहरों के मुकाबले कई गुना विशाल क्षेत्र, अधिक आबादी और संख्याबल के बावजूद भारत के गांवों में शहरों के मुकाबले टेलीफोन कनेक्शनों की संख्या आधे से भी कम है। देश में चल रहे कुल टेलीफोन कनेक्शनों में से ग्रामीण क्षेत्रों में उपलब्ध टेलीफोन कनेक्शनों की संख्या महज 30.3 प्रतिशत ही है। इस परियोजना से गांववालों को ग्रामीण सार्वजनिक टेलीफोन केंद्र तक का फासला तय करने की जहमत भी नहीं उठानी पड़ेगी। ऐसे केंद्र गांवों से अमूमन 5 से 25 किलोमीटर की दूरी पर स्थित हैं।

सरकारी दावों पर भरोसा करें तो दिसंबर 2002 के अंत तक ही भारत सरकार के उपक्रम भारत संचार निगम लिमिटेड द्वारा 5,03,610 ग्रामीण सार्वजनिक टेलीफोन के जरिए देश के कुल गांवों में से 84 प्रतिशत गांवों तक दूरसंचार सुविधा उपलब्ध कराई जा चुकी है। इसके अलावा निजी क्षेत्र की दूरसंचार कंपनियों द्वारा भी 7,123 ग्रामीण सार्वजनिक टेलीफोन केंद्रों की स्थापना की जा चुकी है। इस प्रकार मार्च 2002 में जहां देशभर में कुल चार लाख 68 हजार गांवों को ग्रामीण सार्वजनिक टेलीफोन केंद्रों से जोड़ा जा चुका था। वहीं उसके बाद के नौ महीनों में दिसंबर 2002 तक ग्रामीण सार्वजनिक टेलीफोन केंद्रों से जुड़ चुके गांवों की संख्या पांच लाख, दस हजार हो चुकी है। इस प्रकार अब लगभग एक लाख गांवों को ही अप्रत्यक्ष टेलीफोन सुविधा मिलनी बाकी है। इसी बीच **गांवों तक सूचना और संचार प्रौद्योगिकी की उपलब्धता को आसान बनाने के लिए दूरसंचार विभाग के सी–डॉट नामक अनुसंधान एवं विकास संगठन ने ऐसे छोटे–छोटे स्वचालित ग्रामीण टेलीफोन एक्सचेंज भी बनाए हैं, जिन्हें बिना वातानुकूलन संयंत्र की सहायता के ही सामान्य तापमान पर स्थापित किया जा सकता है।** उल्लेखनीय है कि ग्रामीण दूरसंचार नेटवर्क के तेजी से विस्तार की राह में टेलीफोन एक्सचेंज को दक्षतापूर्वक चलाने के लिए आवश्यक वातानुकूलन संयंत्र की लागत रोड़ा बनी हुई थी। इस नए एक्सचेंज के निर्माण के बाद अब गांवों में दूरसंचार नेटवर्क के तेजी से फैलने की उम्मीद बंधी है।

दूरसंचार सेवाओं का विस्तार गांववालों के लिए सिर्फ परदेस गए अपने सगे–संबंधियों से जीवंत संपर्क का ही माध्यम नहीं है, बल्कि इससे उनके लिए पढ़ाने–लिखाने, फसल का मुनासिब दाम दिलाने और अपनी पसंद का सामान खरीदने की आजादी पाने की राह भी खुलेगी। टेलीफोन लाइन के जरिए उन तक यह जानकारी पहुंचने में निरक्षरता कतई आड़े नहीं आती। इसका कारण यह है कि जो लोग अक्षर पढ़ना नहीं जानते, उनके लिए इंटरनेट पर चित्रों, बातों और अन्य संप्रेषणीय प्रतीकों के माध्यम से जानकारी के आदान–प्रदान की गुंजाइश बनाई जा सकती है। इसके अलावा देश के हर गांव में अब कम से कम साक्षर व्यक्तियों की संख्या 30 से 40 प्रतिशत तो हो ही गई है। ऐसे में पढ़–लिख सकने की योग्यता वाले व्यक्ति भी इंटरनेट पर उपलब्ध जनोपयोगी जानकारियों को आम ग्रामीणजनों तक पहुंचाने का सशक्त माध्यम बन सकते हैं और उससे जाहिर है कि ग्रामीण विकास का एक नया पन्ना खुल सकता है।

उत्तर प्रदेश और पंजाब के कुछ गांवों में इंटरनेट के अभिनव प्रयोग चल रहे हैं। इन गांवों के लोग इंटरनेट के जरिए रोजमर्रा की अलामतों के इलाज और दवाएं ढूंढने के साथ ही आसपास के शहरों की मंडियों के दाम पर भी निगाह रख रहे हैं, जिससे इन्हें अपनी सब्जी, फल, अनाज, दाल, तिलहन, हरे चारे और दूध वगैरह चीजों के कई गुना बेहतर दाम हासिल हो रहे हैं। इन गांवों के लोग बिचौलियों के शिकंजे से इंटरनेट के कारण छूटने में कामयाब हो रहे हैं। यह परिवर्तन बुंदेलखंड के झांसी और आसपास के जिलों के उन चुनिंदा गांवों में दिख रहा है, जिनमें तारा ढाबे शुरू हो चुके हैं। यह तारा ढाबे दरअसल साइबर कैफे ही हैं। ऐसा ही एक तारा ढाबा झांसी के पुनावाली कलां गांव में जबसे खुला है, तब से गांव के बच्चे गुल्ली–डंडा खेलने की बजाए जीवंत परदे वाली जादुई मशीन की कोठरी को ही घेरे रहते हैं। गांव के किसान सवेरे–सवेरे तारा ढाबे के कंप्यूटर पर इंटरनेट के माध्यम से आसपास के शहरों की मंडियों के भावों की जानकारी ले लेते हैं। उसके बाद सबसे ज्यादा दाम दे रही मंडी में अपनी सब्जी, दूध वगैरह बेचते हैं। झांसी से करीब 40 किलोमीटर दूर बसे पुनावाली कलां के इस तारा ढाबे में अब आसपास के गांवों के लोग भी अपने काम की बातें जानने के लिए पहुंचने लगे हैं। यह ढाबा गांव की ही तीन महिलाओं ने एक स्वयंसेवी संगठन डिवलपमेंट आल्टरनेटिव्स के सहयोगी संगठन ताराहाट डॉट कॉम की मदद से खोला है। गांव में चूंकि फोन लाइन उपलब्ध नहीं है इसलिए यह ढाबे वीसैट के माध्यम से चलाए जा रहे हैं। पुनावाली कलां गांव की तरह ही तारा ढाबे पंजाब के भटिंडा और कपूरथला जिलों के भी कुछ गांवों में शुरू किए गए हैं।

वायरलैस इन लोकल लूप (डब्ल्यूएलएल) और सेटेलाइट एवं मोबाइल फोन टेक्नोलॉजी

तथा जीपीआरएस एवं ब्लूटूथ टेक्नोलॉजी तथा वीसैट जैसी सूचना और संचार प्रौद्योगिकी ने ग्रामीण क्षेत्रों तक इंटरनेट एवं आधुनिक प्रौद्योगिकी पहुंचा देने की नई राह खोल दी है। इनके जरिए इंटरनेट के इस्तेमाल के लिए स्थानीय टेलीफोन लाइन की भी जरूरत नहीं है। साथ ही इनसे इंटरनेट एप्लीकेशन का दायरा भी सामान्य से कहीं ज्यादा विस्तृत हो रहा है। इंटरनेट के प्रसार में ब्राडबैंड ऑप्टीकल फाइबर नेटवर्क से भी काफी मदद मिलने जा रही है। ब्रॉडबैंड कम्युनिकेशन को दूरदराज तक पहुंचाने का एक प्रयास देशभर में फैली तेल एवं गैस की पाइपलाइनों के जरिए हो रहा है। सार्वजनिक क्षेत्र की तेल एवं गैस की कंपनियों इंडियन ऑयल कार्पोरेशन, भारत पेट्रोलियम, हिन्दुस्तान पेट्रोलियम और गैस अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड, गैस की पाइपलाइनें देश के दक्षिणी और पश्चिमी तटों से लेकर भीतरी भागों तक फैली हुई हैं। इन पाइपलाइनों के सहारे–सहारे इन कंपनियों ने ऑप्टिकल फाइबर नेटवर्क स्थापित कर लिया है, जिसमें इन पाइपलाइनों के किनारे–किनारे बसे गांवों और कस्बों के लोगों तक ब्राडबैंड कम्युनिकेशन बिना खास अतिरिक्त लागत के पहुंच ही जाएगा। साथ ही उनके आसपास के कई किलोमीटर के क्षेत्रों तक भी यह नेटवर्क आसानी से फैल रहा है। इससे जाहिर है कि ब्राडबैंड कम्युनिकेशन देश में काफी दूरदराज तक पहुंचेगा जिससे शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, पशुपालन, मछलीपालन, फूल उत्पादन एवं सजावटी पेड़–पौधों तथा रोजगार संबंधी जानकारियां देश के आम किसानों, खेतिहर मजदूरों, दलितों तथा पिछड़ों तक पहुंच पाएंगी।

आधुनिक संचार एवं वैज्ञानिक प्रौद्योगिकी के जरिए गांवों तक स्वास्थ्य, शिक्षा एवं कृषि आदि के स्तर में सुधार अब सिर्फ सपना नहीं है। इंटरनेट और बायोटेक्नोलॉजी यानी जैव प्रौद्योगिकी के तहत मानव के जीनोम का अध्ययन तो पूरा हो ही चुका है अब बस उसके आधार पर जीन की तकनीकी अदला– बदली के जरिए आनुवांशिक बीमारियों एवं शारीरिक खामियों से निजात पाने संबंधी प्रयोग किए जाने की बारी है। तब दिमागी बुखार एड्स, मलेरिया, तपेदिक, हैजा, प्रसव के दौरान होने वाली मौतों आदि से घिरी गांवों की आबादी को इन जानलेवा अलामतों से छुटकारा दिलाना काफी आसान हो जाएगा। इसका अंदाजा विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में बीसवीं सदी में हुए अन्वेषणों के मानव जाति के उत्थान में योगदान से ही लगाया जा सकता है। इसी सदी में हमने विकासशील देशों की गरीब आबादी के सबसे बड़े जानलेवा दुश्मनों प्लेग, चेचक और हैजा जैसी बीमारियों से वैज्ञानिक परिश्रम की बदौलत बने टीकों के बूते छुटकारा पाया है। पोलियो जैसी नामुराद बीमारी के खिलाफ देश में आज भी वैज्ञानिकों की अथक लगन से तैयार किए गए टीके की मदद से अभियान चलाया जा रहा है। प्रौद्योगिकी दरअसल आदतों की तरह हमारी जिंदगी में इस कदर घुलमिल जाती है कि आने वाली पीढ़ियां अक्सर उसके महत्व को समझ ही नहीं पातीं। इस देश में आधुनिक सिंचाई प्रणाली की स्थापना, रासायनिक खाद का उत्पादन एवं प्रयोग और हरित क्रांति इस बात की जीवंत मिसाल हैं। ❑

आई–12, आकाश भारती अपार्टमेंट्स, 29, इन्द्रप्रस्थ विस्तार, नई दिल्ली–110092

KALP ACADEMY
The Citadel of Excellence for the Civil Service Examination
We kalp your dreams into reality.

INTRODUCES
The Most Personalized Coaching*

in

GENERAL STUDIES
POLITICAL SCIENCE ECONOMICS
COMMERCE PUBLIC ADMINISTRATION
PSYCHOLOGY GEOGRAPHY
HISTORY SOCIOLOGY
BOTANY ZOOLOGY
PHYSICS MATHEMATICS
PHILOSOPHY HINDI LIT.
ENGLISH LIT. SANSKRIT LIT.
LAW CHEMISTRY

for

IAS/PCS
UGC/CSIR
NET
2003-04
Batches from Oct. 15, 2003

*Ask Our Counselor "What's This" at

A 38-40,Ansal Building, Commercial Complex
Near Mother Dairy [Safal],Dr. Mukherjee Nagar, Delhi-110009.
Ph : 011-27655825,27655826,20054802
Cell : 0 - 9810565283,9868024975

Abhivyakti/KALP-002

ग्रामीण विकास में स्वयंसेवी संगठनों की भूमिका

☞ प्रतापमल देवपुरा

ग्रामीण विकास में स्वयंसेवी संस्थाएं एक अर्से से अग्रणी भूमिका निभाती आ रही हैं। आज विकास के जो परिणाम हैं, चाहे वे शिक्षा के क्षेत्र में हो या स्वास्थ्य के क्षेत्र में, उनमें स्वैच्छिक संस्थाओं का काफी योगदान रहा हैं। इस तरह के हजारों उदाहरण हैं जो स्वैच्छिक कार्य के इतिहास को गौरवान्वित करते हैं।

ग्रामीण विकास में स्वयंसेवी संस्थाएं एक अर्से से अग्रणी भूमिका निभाती आ रही हैं। इन्होंने जनता के प्रति सेवा, सरोकार और घनिष्ठता के उत्कृष्ट गुणों का परिचय दिया है। इसके अलावा नए कार्यक्रमों को प्रारंभ करने, उनका सफलतापूर्वक क्रियान्वयन करने की क्षमता भी दर्शाई है। इस तरह से जनता के हितों को आगे बढ़ाने का प्रयास किया है। संस्थाओं ने विकास संबंधी कठिन समस्याओं के समाधान के ऐसे तरीके भी सुझाए हैं जिन्हें सरकार को भी मानना पड़ा है। सरकार को ऐसी परियोजनाओं एवं कार्यक्रमों को हाथ में लेने के लिए प्रेरित किया है जिन्हें इन्होंने सफलतापूर्वक संचालित किया था। आज विकास के जो परिणाम हैं, चाहे वे शिक्षा के क्षेत्र में हों या स्वास्थ्य के क्षेत्र में, उनमें स्वैच्छिक संस्थाओं का काफी योगदान रहा है। इस तरह के हजारों उदाहरण हैं जो स्वैच्छिक कार्य के इतिहास को गौरवान्वित करते हैं।

ढांचा

स्वैच्छिक संगठन व्यक्तियों का एक ऐसा समूह होता है जिन्होने स्वयं को एक विधि सम्मत निकाय में संगठित कर लिया है ताकि वे संगठित कार्यक्रमों के माध्यम से सामाजिक सेवाएं प्रदान कर सकें। ये संगठन अपनी ही पहल पर अथवा बाहर से प्रेरित होकर, साथ ही आत्मनिर्भर रहकर गतिविधियां चलाते हैं। ये संस्थाएं लोगों की जरूरतें पूरी करने तथा सार्वजनिक क्षेत्र की प्रसार सेवाओं को एक–दूसरे के करीब लाने का प्रयास करती हैं। ग्रामीण कमजोर वर्गों के न्यायोचित और प्रभावी विकास को अंजाम देने के लिए भी ये संस्थाएं निरंतर प्रयत्न करती रहती हैं।

सभी गैर–सरकारी संगठन स्वैच्छिक संस्थाएं नहीं हैं। कुछ स्वैच्छिक संस्थाओं का उद्देश्य कमजोर लोगों की मदद कर पुण्य कमाना, ख्याति प्राप्त करना अथवा धमार्थ कार्य करना होता है, जबकि कुछ संगठन ज्ञान प्राप्त करने, विकास के रास्ते सुगम बनाने, आत्मनिर्भर बनाने तथा गरिमा एवं स्वाभिमान से जीवन बिताने के अधिकार को मान्यता देकर कार्य करते हैं।

कार्यों का स्वरूप

हमारे देश में अनेक स्वयंसेवी संगठन सभी क्षेत्रों में विकास कार्यों एवं सामाजिक सेवा में भागीदारी निभा रहे हैं। यद्यपि इनकी देशव्यापी गणना एवं विश्लेषण के आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं फिर भी एक अनुमान है कि देश में छोटे–बड़े 6 लाख संगठन बने हुए हैं। इनमें से कुछ संगठन स्थानीय तौर पर कार्य करते हैं।

रोजगार के क्षेत्र में खादी ग्रामोद्योग संघ का नाम उल्लेखनीय है। यह संगठन लोगों को प्रशिक्षण, वित्त प्रबंध, विपणन आदि अनेक सेवाओं में सहयोग करके रोजी–रोटी जुटाने में सहयोग कर रहा है। हाल ही में उभरे किसान मजदूर संगठन ने सूचना के क्षेत्र में बहुत महत्वपूर्ण क्रियाकलाप किए हैं जिनके परिणामस्वरूप राज्य सरकारों ने भी अपने स्तर पर ही पंचायतों में

☞ लेखक, नागरिकता संस्थान विद्याभवन, उदयपुर (राजस्थान) में प्रशिक्षण अधिकारी हैं।

जनसुनवाई की पहल की है।

शिक्षा के क्षेत्र में हजारों की संख्या में संस्थाएं कार्य कर रही हैं। *शिक्षाकर्मी योजना* के माध्यम से राजस्थान के उन दुर्गम स्थानों को चुना गया, जहां आज भी आवागमन के कोई साधन नहीं हैं। वहां स्थानीय लोगों को प्रेरित कर स्थानीय शिक्षक का चयन कर बच्चों के शिक्षण का कार्य होता है। परिणामस्वरूप राज्य सरकार ने भी इस प्रकार के 22 हजार विद्यालय खोले हैं। जिससे गांव–गांव एवं ढाणी–ढाणी में ऐसे स्कूलों की व्यवस्था हुई।

सुलभ इंटरनेशनल द्वारा शौचालय का निर्माण एवं संचालन का प्रयोग भी देश के विभिन्न भागों में काफी सफल रहा। सुलभ शौचालयों के माध्यम से दैनिक जीवन की एक महत्वपूर्ण सुविधा का विकास किया गया है। रेडक्रॉस सोसाइटी ने चिकित्सा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया है और कम लागत पर जरूरतमंद लोगों को चिकित्सा की आधुनिक सुविधाएं उपलब्ध कराई हैं।

जल संग्रहण के लिए भी अनेक संस्थाएं स्थानीय स्तर पर कार्य कर रही हैं। ये संस्थाएं स्थानीय लोगों का सहयोग लेकर वर्षा जल को एकत्रित करने, जल संग्रहण की व्यवस्था करने में महत्वपूर्ण योगदान दे रही हैं। बायफ संस्था ने कुछ क्षेत्रों में रोजगार की दृष्टि से लोगों को आत्मनिर्भर बनाने के लिए स्थानीय कृषि का विकास किया है, पशुपालन में भी मदद की है, जिससे आज लोग आत्मनिर्भर बने हैं।

नागरिकता संस्थान विद्याभवन सोसाइटी ने पंचायतीराज के क्षेत्र में जनप्रतिनिधियों का आवासीय प्रशिक्षण करके इस दिशा में एक नया अध्याय जोड़ा है। यदि हम जनप्रतिनिधियों को बढ़ा देते हैं तो वे ग्रामीण विकास में महत्वपूर्ण योगदान कर सकते हैं। फिर चाहे वे अशिक्षित महिलाएं हों, आदिवासी या पिछड़े हुए हों, सभी प्रशिक्षण प्राप्त करके पंचायती राज के स्वप्न को साकार कर सकते हैं।

स्वैच्छिक संगठन जरूरी क्यों

अनुभव यह बताता है कि विकास कार्यों में सरकारी तंत्र की भूमिका आशानुरूप परिवर्तन नहीं ला सकी है। यद्यपि ग्रामीण पुनर्निर्माण के कार्यक्रमों का सूत्रपात और क्रियान्वन नौकरशाही ही करती है फिर भी गांवों में अनेक गतिविधियों के लिए वे उपयुक्त नहीं हैं जिसके कारण सरकारों को इन कार्यक्रमों को चलाने में सफलता हाथ नहीं लगती है। यदि ये कार्यक्रम स्वैच्छिक संगठनों के द्वारा किए जाते हैं तो सृजनशीलता, तात्कालिकता और नवीनता के गुणों से वे कुशलतापूर्वक समन्वय कर सकते हैं।

> "हमें उन हजारों–लाखों लोगों को, जिनका हृदय सोने का है, जिन्हें देश से प्रेम है, जो सीखना चाहते हैं और यह इच्छा रखते हैं कि कोई उनका नेतृत्व करे, सही तालीम देनी चाहिए। केवल थोड़े से बुद्धिमान और निष्ठावान कार्यकर्ताओं की जरूरत है। वे मिल जाएं तो सारे राष्ट्र को बुद्धिपूर्वक काम करने के लिए संगठित किया जा सकता है तथा भीड़ की अराजकता की जगह सही प्रजातंत्र का विकास किया जा सकता है।"
>
> *महात्मा गांधी*

विकास के कार्यक्रमों को बिना जनभागीदारी के सफल नहीं बनाया जा सकता है। जनभागीदारी प्राप्त करने के लिए स्वयंसेवी संगठन काफी सहायक हैं। ठीक से संगठित प्रयास कमजोर और जरूरतमंद लोगों की सहायता हेतु आवश्यक सुविधाओं को बढ़ाने में काफी हद तक कारगर हो सकते हैं।

स्वैच्छिक संगठनों की भूमिका को अंतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर भी व्यापक रूप से मान्यता प्राप्त हुई है। ये संगठन बहुत हद तक लोगों को सहायता प्रदान करने में सफल हुए हैं। यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि कोई भी विकास कार्यक्रम तब तक सफल नही हो सकता जब तक उनमें वे लोग शामिल न हों, जिसके लिए वे चलाए जा रहे हैं। ऐसे कार्य को स्वैच्छिक संगठन अच्छी तरह से अंजाम दे सकते हैं।

प्रभावी व्यूहरचना

सफल रहने वाली संस्थाओं की प्रमुख विशेषता होती है उनकी कार्यशैली एवं प्रभावी व्यूहरचना। ये लोग कार्यकर्ताओं के चयन में पहली शर्त यही रखते हैं कि उन्हें गांवों में कार्य करना है। उन्हें लोगों की बोलचाल की भाषा आनी जरूरी है और उसे उनके रीति–रिवाज व संस्कृति में घुलमिल कर कार्य करना होगा। केंद्रीय स्तर पर बहुत बड़ा लवाजमा नहीं रखते हैं। कार्यकर्ताओं की कई श्रेणियां नहीं बनाते हैं जिससे ऊपर और नीचे का आभास हो; समानता का व्यवहार रखकर कार्य किया जाता है।

सभी का उठना–बैठना, खाना–पीना एक समान रहता है। समय–समय पर बैठकें आयोजित कर अपनी सफलताओं की कम परंतु असफलताओं पर ज्यादा बातचीत करते हैं। बातचीत के आधार पर नए रास्ते तलाश करके उनकी कार्यप्रणाली विकसित करते हैं। नई पद्धति पर कुछ कार्य कर लेने के बाद पुनः विचार करके उसमें आवश्यक संशोधन कर लेते हैं जबकि इतना लचीलापन राजकीय संस्थाओं में नहीं होता है। हालांकि उनके पास साधनों एवं सूचनाओं का भंडार रहता है। **राजकीय तंत्र के कर्मचारी यह अपेक्षा रखते हैं कि लोग उन तक पहुंचें परंतु संस्थाओं का मामला उलट ढंग से चलता है वे स्वयं लोगों के पास पहुंचकर कार्य करते हैं।**

राजकीय एवं स्वयंसेवी संस्थाओं की कार्यशैली के इस अंतर से ही आज स्वयंसेवी संस्थाओं की साख जमती जा रही है। उनके पास व्यावसायिक नेटवर्किंग है। इन संस्थाओं ने युवाओं के लिए जीविका के नए मार्ग खोल दिए हैं। उनके साथ इंजीनियर, वकील, मैनेजमेंट ग्रेजुएट, तकनीकी शिक्षा प्राप्त युवा वर्ग सभी हैं। ये लोग शोध, डाक्युमेंटेशन को विकास प्रक्रिया में अनिवार्य मानकर कार्य करते हैं।

इस प्रकार स्वैच्छिक संगठन एक तरफ सामाजिक–आर्थिक विकास का कार्य कर रहे हैं, वहीं मनोवैज्ञानिक स्तर पर भावात्मक परिवर्तन लाकर लोगों को अनेक अधिकारों के प्रति ज्यादा संवेदनशील बनाते हैं। साथ ही समाज और सरकार के बीच समन्वय भी स्थापित करते हैं। संस्थाओं के कार्यकर्ता भी आज शिक्षित, प्रशिक्षित नए सूचना माध्यमों

और तकनीक से लैस हैं। इन्हीं कारणों से संस्थाओं की व्यूहरचना कामयाब रहती है।

प्रभावी संचार तंत्र

ऐसी अनेक जनोपयोगी योजनाएं हैं जिन्हें स्वयंसेवी संस्थाएं सुचारू रूप से अंजाम देती हैं। इसके पीछे स्वयंसेवी संस्थाओं की लोगों में पैठ एवं प्रभावी संचार प्रणाली का महत्वपूर्ण योगदान है। संस्थाओं के अधिकांश लोग सेवा भावना से प्रेरित होकर समाजोपयोगी कार्य कर सकते हैं जिनके कार्यकर्ता कार्य करने को तत्पर रहते हैं। परिणामस्वरूप ये लोग जनसहयोग, जनसहभागिता के माध्यम से जनसंपर्क बढ़ाकर गरीब, पिछड़ों एवं जरूरतमंद लोगों को राहत पहुंचा सकते हैं। इन संस्थाओं के व्यवहार एवं कार्यप्रणाली में लचीलापन आ जाता है। ये अपनी कार्यप्रणाली एवं नीतियों में समय–समय पर तेजी से परिवर्तन कर सफलता प्राप्त करते रहते हैं।

पंचायतों के विकास कार्यों में योगदान

पंचायतीराज कानून में अन्य व्यवस्थाओं के अलावा एक महत्वपूर्ण प्रावधान किया गया है कि सभी तरह के विकास कार्यक्रम पंचायतों के द्वारा निर्धारित, संचालित तथा कार्यान्वित किए जाएंगे। ऐसा प्रावधान संविधान की ग्यारहवीं अनुसूची के अनुच्छेद 243 जी के अंतर्गत किया गया है। परंतु इतने बड़े पैमाने पर कार्य करने का अनुभव शायद ही किसी पंचायतीराज संस्था को है और यही सबसे बड़ी चुनौती भी है। इसका एक कारण यह भी है कि अभी तक सरकारी एजेंसियां विकास के कार्य या तो स्वयं करती थीं या ठेकेदारों के माध्यम से करवाती थीं। दूसरी तरफ स्वैच्छिक संस्थाओं को विकास कार्य करने का अनुभव होता है इसलिए वे पंचायतों को अपना सकारात्मक सहयोग दे सकती हैं। आज की स्थिति में यह समय की मांग है कि पंचायत तथा स्वैच्छिक संस्थाएं एक–दूसरे के पूरक के रूप में कार्य करें।

अब हम यह देखें कि ऐसे कौन–कौन से कार्य हैं जिनमें पंचायतें स्वैच्छिक संस्थाओं का सहयोग तथा मदद ले सकती हैं। इन प्रश्नों के जवाब के लिए सर्वप्रथम स्वैच्छिक संस्थाओं की अनुभव क्षमता को ध्यान में रखना पड़ेगा। सामाजिक क्षेत्र में इन संगठनों का बड़ा महत्व है क्योंकि कितने ही सामाजिक कार्य ऐसे हैं जो सरकार नहीं कर सकती है, न ही कानून द्वारा सामाजिक समस्याओं का हल पक्के तौर पर निकाला जा सकता है। सामाजिक क्षेत्र के अलावा अन्य क्षेत्र भी खुले हुए हैं जो स्वैच्छिक संगठनों का कार्यक्षेत्र बन सकते हैं जैसे:–

ग्रामीण साक्षरता एवं शिक्षा; परती सुरक्षा; परती भूमि विकास; आधुनिक प्रौद्योगिकी का उपयोग; गैर–पारंपरिक ऊर्जा का विकास; गांव, घर एवं आसपास की स्वच्छता; सामाजिक वानिकी; भूमि एवं जल परिरक्षण; मूलभूत अधिकारों के प्रति चेतना; टीकाकरण करना; परिवार नियोजन के प्रति चेतना जागृत करना; गांवों में योजनाओं का निर्माण व क्रियान्वयन; जनप्रतिनिधियों को प्रशिक्षण देना; प्राकृतिक आपदाओं जैसे बाढ़, भूचाल, तूफान में पुनर्वास की व्यवस्था; विकलांग मूक–बधिर, नेत्रहीनों का पुनर्वास; सांप्रदायिकता एवं जातीयता को रोकना; महिला विकास; बाल विकास; छुआछूत मिटाना; दहेज प्रथा बंद करना; बाल श्रमिक प्रथा खत्म करना; नशीले एवं मादक पदार्थों का सेवन बंद करना; बंधुआ मज़दूरी खत्म करना; भ्रामक धारणाएं खत्म करना आदि।

पंचायतों के कामकाज में सहयोग के क्षेत्र

अब यह देखा जाए कि वे कौन–कौन से कार्य हैं जिनमें स्वैच्छिक संस्थाओं की मदद आवश्यक होगी एवं यह मदद किस प्रकार मिल सकती है –

जानकारी उपलब्ध कराना : जानकारी को शक्ति माना गया है। जिनके पास ज्यादा जानकारी है, वही अधिक क्षमता और सक्रियता रखता है। इसलिए पंचायतों को भी कई तरह की जानकारियां रखनी पड़ेंगी। विकास के कार्यक्रम, सरकार की नीति, धन की उपलब्धता, संसाधन, आदि जानकारियों को स्वैच्छिक संस्थाएं इकट्ठा कर पंचायतों को बता सकती हैं।

गांव से जिला स्तर की योजना बनाना : पंचायतीराज संस्थाओं में अपने स्तर पर विकास योजनाएं बनाने का प्रावधान है। यह प्रक्रिया सरल नहीं है। अगर पंचायतों के प्रतिनिधि इन कार्यों को करने में सक्षम नहीं होंगे तो फिर सरकारी पदाधिकारी अपनी मर्जी से ही सब तय करने लगेंगे। इस कार्य में स्वयंसेवी संस्थाओं के व्यापक अनुभव का लाभ पंचायतों को मिल सकता है।

योजनाओं का क्रियान्वन : अभी तक सरकारी महकमें काफी हद तक विकास कार्य ठेकेदारों के माध्यम से कराते रहे हैं। इसलिए विकास का पैसा ठेकेदारों की जेब में तथा अफसरशाही की ताम–झाम पर खर्च हो जाता है जबकि स्वैच्छिक संगठनों की सहभागिता एवं व्यापक अनुभव से ये पंचायतों की मदद कर सकते हैं।

मूल्यांकन तथा प्रबोधन : स्वैच्छिक संस्थाएं समय–समय पर परियोजना के विभिन्न चरणों में कार्य का प्रबंधन तथा मूल्यांकन करती हैं ताकि कहीं कुछ ठीक नहीं हो रहा हो तो उसे समय रहते सुधारा जा सके। अतः मूल्यांकन तथा प्रबोधन के कार्यों में भी संस्थाएं मदद कर सकती हैं।

प्रशिक्षण : पंचायतों के ज्यादातर चुने हुए लोग या तो अनपढ़ होते हैं या कम पढ़े–लिखे। पंचायतों के हर कार्य के लिए प्रशिक्षण देकर उन्हें स्वावलंबी बनाया जा सकता है। स्वैच्छिक संस्थाओं के पास प्रशिक्षण की कई विधियां हैं जिससे सभी वर्गों को लाभ मिल सकता है।

तकनीकी विशेषज्ञता : स्वैच्छिक संगठनों के पास कम खर्चीला तकनीकी ज्ञान एवं विशेषज्ञता उपलब्ध होती है। पंचायतें उसे प्राप्त कर सकती हैं। पंचायतों एवं स्वैच्छिक संगठनों को एक–दूसरे के पूरक तथा सहयोगी के रूप में कार्य करना होगा। एक–दूसरे का विश्वास करना होगा। खुलेपन एवं पारदर्शिता से कार्य करने पर ही सफलता मिलेगी।

विशेषताएं

विकास में लोगों की भागीदारी सुनिश्चित करने में ये संस्थाएं प्रभावी भूमिका निभा सकती हैं। स्वयंसेवी संस्थाओं को ग्रामीण विकास के लिए उत्प्रेरक अभिकर्ता के रूप में माना जाता

है क्योंकि ये गरीबी के विकास में विविध भूमिकाएं अदा कर सकते हैं :

- लाभ न मिल पाने वाले समूहों को सामाजिक न्याय दिला सकते हैं। उनमें अधिकारों और कर्त्तव्यों के प्रति जागरूकता पैदा कर सकते हैं।
- ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक पहलुओं में प्रगति को बढ़ावा दे सकते हैं। सरकारी लोगों की अपेक्षा ये संगठन लोगों से नजदीकी संबंध स्थापित कर पाते हैं क्योंकि ये संगठन नियमों/उपनियमों और पद्धतियों से बंधे हुए नहीं होते हैं।
- ग्रामीण गरीबों को विकास प्रक्रिया में भागीदारी के लिए संगठित कर सकते हैं।
- प्रत्येक योजना, उसके उद्देश्य, अपेक्षित लाभ, कार्यप्रणाली आदि के बारे में बेहतर ढंग से समझा सकते हैं।
- गलत धन–प्रवाह को रोकने में सहायक हो सकते हैं।
- लोगों का परंपरागत कौशल बढ़ाने तथा उनमें प्रबंधकीय विशेषज्ञता विकसित करने में सहायक हो सकते हैं।
- राजकीय अधिकारी वर्ग के साथ बैठकर अनेक समस्याओं को बातचीत द्वारा सुलझाने में ये संगठन कारगर भूमिका निभाते हैं।
- ये संगठन स्थानीय वित्तीय संसाधन इकट्ठा करके लोगों को आत्मनिर्भर बना सकते हैं।
- कुछ लाभार्थी बैंकों द्वारा प्रदत्त ऋण का दुरुपयोग करते हैं। स्वैच्छिक संगठन ऐसे लाभार्थियों को ऋण का प्रभावी और उत्तम उपयोग करने के लिए प्रेरित कर मार्गदर्शन कर सकते हैं।

ये संगठन सतत प्रयास, बुद्धि चातुर्य और लोचपूण नवीन कार्य करके ग्रामीण विकास को नई दिशा प्रदान कर सकते हैं। ग्रामीण समुदायों को अपने ही विकास में सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए संगठित, प्रोत्साहित, जागरूक एवं समर्थ बना सकते हैं।

आर्थिक समस्याएं

सबसे बड़ी समस्या स्वैच्छिक संस्थाओं के सामने आर्थिक स्तर पर रहती है। राज्य सरकार की कुछ कानूनी नीतियां भी आर्थिक मदद मिलने में कठिनाइयां उत्पन्न करती हैं। कई विकासशील देश जैसे ब्रिटेन, जापान, अमेरिका, स्वीडन, डेनमार्क, कनाडा आदि के मंत्रालय स्वैच्छिक संगठनों के लिए कुछ धन देते हैं किंतु यह धन सरकार की स्वीकृति से और उन्हीं कार्यों के लिए दिया जाता है जो सरकार द्वारा संयोजित किए जाते हैं। कुछ अंतर्राष्ट्रीय एंजेसियां हैं जैसे डब्ल्यूएचओ, यूनेस्को, यूनिसेफ, यूएनडीपी, आईएलओ, आईएमएफ आदि भी स्वैच्छिक संगठनों को आर्थिक सहयोग देते हैं। यह धन सरकार की निगरानी में विभिन्न परियोजनाओं के लिए दिया जाता है। यह अनुदान स्वास्थ्य, परिवार कल्याण, समाज कल्याण, पर्यावरण, स्त्रियों और बच्चों की शिक्षा, ग्रामीण विकास, विज्ञान और तकनीकी क्षेत्रों में कार्यरत संस्थाओं को दिया जाता है। अब सरकार की नीतियां स्वैच्छिक संस्थाओं को बढ़ावा देती हुई बन रही हैं। केंद्र में मानव संसाधन मंत्रालय और स्थानीय स्तर पर जिला ग्रामीण विकास अभिकरण, जिला परिषद इत्यादि आर्थिक सहयोग देती हैं।

फर्जी स्वयंसेवी संस्थाओं से सतर्कता

यह भी एक सच्चाई है कि अनेक स्वयंसेवी संस्थाओं के नाम पर कई लोग अपनी दुकानें चलाते हैं जिन्हें न तो किसी कार्य का अनुभव होता है और न ही उन पर विश्वास किया जा सकता है। इसलिए पंचायतों को ऐसी फर्जी संस्थाओं से सतर्क रहना पड़ेगा। एक बड़ी समस्या यह है कि बहुत से लोग गैर–सरकारी संगठन का मुखौटा लगाकर सरकारी सहायता को हड़पने के उद्देश्य से स्वैच्छिक संस्थाएं बना रहे हैं, ग्रामीण विकास या सामाजिक विकास उनके लिए गौण हैं। ऐसी संस्थाओं से सावधान रहना जरूरी है।

स्वयंसेवी संगठन ग्रामीण विकास हेतु विविध क्षेत्रों में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। ऐसे संगठनों में निस्वार्थ भाव से कार्य करने वाले व्यक्तियों का होना आवश्यक है। यदि स्वयंसेवी संस्थाएं अपनी ही क्षमताओं व संसाधनों के बलबूते पर डटी रहती हैं तो उनकी साख बनती है और उन्हें जनसहयोग मिलता है।

यदि ग्रामीण युवा मिलकर स्वयंसेवी संगठन बनाएं तो वे अपनी रोजगार की समस्या को हल कर सकते हैं। स्वैच्छिक संस्थाएं छोटी हों या बड़ी, यदि वे गांव के लोगों को एक सूत्र में बांधने का काम करती हैं, तो सरकार एवं समाज को भी उनके प्रयासों को प्रोत्साहित करना चाहिए। ❑

1/सी, शिवाजी नगर (उदियापोल)
उदयपुर–313001 (राज.)

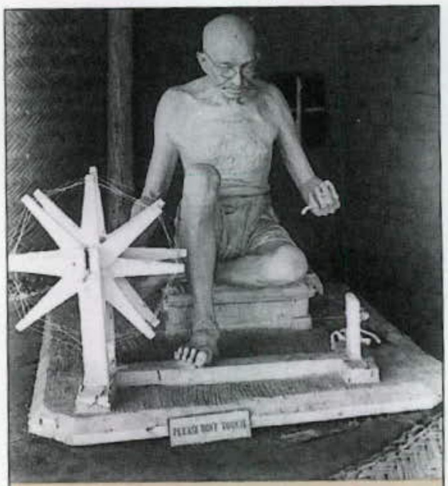

☞ "भारत खुद ही शोषित देशों में से है इसीलिए यदि गांववालों को फिर से अपना स्वत्व प्राप्त करना है तो सबसे स्वाभाविक उपाय यही है कि चरखा और सभी आनुसंगिक उद्योगों का और संबंधित साधनों का पुनरुद्धार किया जाए।"

☞ "सच्चा आनंद तो संघर्ष करने, प्रयत्न करने, संघर्ष के दौरान सामने आने वाले कष्टों को सहने में है; स्वयं विजय प्राप्ति में नहीं है क्योंकि विजय तो ऐसे प्रयत्न में ही समाई रहती है।"

महात्मा गांधी

'सूचना समाज' की चौखट पर ठिठका गांव

☞ सुधेंदु पटेल

"कितनी बड़ी है ये दुनिया
हर चिट्ठी छोटी पड़ जाती है
आदमी के लिए
उतनी–सी है दुनिया
जितनी उसकी चिट्ठी में आती है
क्या होगा उस दुनिया का जो
चिट्ठी से बाहर रह जाती है।"

जनसंचार माध्यमों के व्यापक संजाल के बीच भारत के ग्रामीण समाज की मौजूदा स्थिति पर कवि सवाई सिंह शेखावत की उपर्युक्त पंक्तियां सटीक बैठती हैं क्योंकि जनसंचार के सर्वसुलभ माध्यमों में उभरती दुनिया और मौजूदा गांवों की हालत के बीच वर्षों का फासला अब भी बना हुआ है। जब डाक व्यवस्था नहीं थी तब भी लोग घर–गांव से दूर जाते थे। सगे–संबंधियों तक अपनी राजी–खुशी की खबर पहुंचाते थे। इसी यथार्थ से उपजी कई साहित्यिक रचनाएं आज भी पुराने साहित्य में उपलब्ध हैं। कालीदास के मेघदूत काव्य रचना में विरही यक्ष मेघों के जरिए अपनी पत्नी तक संदेश पहुंचाता है। अपभ्रंश की प्रसिद्ध रचना *संदेश रासक* में अपने प्रिय तक नायिका अपनी व्यथा पथिक के माध्यम से भिजवाती है। *कासिद* फारसी की शायरी में महत्वपूर्ण प्रतीक रहा है जिसका इस्तेमाल उर्दू की कविता में भी होता रहा है। यही संदेश भिजवाने का काम डाक व्यवस्था प्रारंभ होने पर डाकियों ने संभाल लिया था।

संचार माध्यमों में डाकघर व्यवस्था जनसंचार के तमाम माध्यमों के बावजूद आज भी प्रासंगिक है। यह रेखांकित करने वाला तथ्य है कि देश में एक लाख 38 हजार 818 डाकघर सिर्फ ग्रामीण क्षेत्रों में हैं। डाक विभाग ने डाक के पारेषण प्रोसेसिंग तथा वितरण कार्य में रफ्तार लाने के लिए कम्प्यूटरीकरण तथा आधुनिकी–करण की एक नीति भी प्रारंभ की है। आधिकारिक रिपोर्ट के अनुसार भारत में डाक नेटवर्क का विस्तार विशेषरूप से ग्रामीण क्षेत्रों में अतिरिक्त विभागीय शाखा डाकघर प्रणाली के माध्यम से किया गया है। हाल के वर्षों में दूरदराज तथा दूरवर्ती गांवों, जिनमें अभी भी कोई डाकघर नहीं है, बुनियादी डाक सेवाएं उपलब्ध कराने के उद्देश्य से डाक नेटवर्क के तीसरे स्तर अर्थात् पंचायत संचार सेवा केंद्रों की शुरुआत की गई है।

☞ स्वतंत्र पत्रकार

पंचायत संचार सेवा केंद्र डाक टिकटों तथा डाक स्टेशनरी के संग्रहण एवं वितरण की बिक्री पत्रों जैसी कुछ बुनियादी सेवाओं तथा पंजीकृत मदों की बुकिंग आदि के लिए नोडल बिंदु के रूप में कार्य करते हैं। योजना आयोग तथा वित्त मंत्रालय ने सिफारिश की है कि अतिरिक्त विभागीय डाकघर स्कीम को पंचायत संचार सेवा योजना द्वारा बदलने के बारे में विभाग को विचार करना चाहिए क्योंकि इससे कम खर्च में डाक सेवा की अधिक सुभीता सुनिश्चित की जा सकेगी। यह योजना केंद्र से राज्य को शक्तियों के अंतरण की संवैधानिक स्कीम के अनुरूप भी होगी।

समकालीन दौर में डाकिया और उसके काम का बहुआयामी विस्तार हुआ है। संदेश चाहे वह निजी हो या राजकीय या फिर सामाजिक–आर्थिक–वैश्विक हो, पहुंचाने के कई–कई माध्यम हैं। अब तार, टेलीफोन, फैक्स और ई–मेल के जरिए संदेश तत्काल पहुंचाए जा सकते हैं। इतना ही नहीं फैक्स और ई–मेल के माध्यम से तो लिखित, चित्रित, दृश्यात्मक और मुद्रित संदेश का आदान–प्रदान तुरंत कर सकते हैं। संप्रेषण के नए उपायों ने तो अपने में जीवन के प्रायः सभी पक्षों को समेट लिया है वह चाहे शिक्षा हो, मनोरंजन हो या फिर वाणिज्य से लगायत राजकाज ही क्यों न हो। तेजी से बदलता यह सूचना परिदृश्य एक मायने में क्रांति ही है।

इस क्रांतिकारी युग के बावजूद सच है कि 'सूचना समाज' की चौखट पर खड़े भारत के ग्रामीण समाज को आज भी कठिन दौर से गुजरना पड़ रहा है क्योंकि सारी व्यवस्थाओं के बावजूद कुछ ही किलोमीटर की दूरी में डाक पहुंचने में कम से कम तीन दिन लग जाते हैं।

आदतें बदलना आसान नहीं होता। लोग नई व्यवस्था का महत्व समझकर धीरे–धीरे अपनाते हैं। लेकिन यह भी सच है कि भारत में अधिसंख्य लोगों की जिंदगी में कोई बुनियादी बदलाव सामाजिक–आर्थिक संदर्भों में नहीं आया। गांवों के बाजार पर सबकी नजर है। फिर ग्रामीणों की आदतों में बदलाव के लिए योजनाबद्ध तरीके से अभियान, कार्यशालाएं चलाई जा रही हैं। कंपनियों के अधिकारी पंचों, सरपंचों, शिक्षकों व स्वयंसेवी संस्थाओं से मिलकर अपने उत्पादों के लिए कमीशन देकर मानस बनवा रहे हैं। यह वह तबका है जिनकी बातों का गांववालों पर प्रभाव भी पड़ता है। इसीलिए कंपनियों ने इन्हें माध्यम बनाया है क्योंकि देश की 74 फीसदी आबादी गांवों से जुड़ी है। हिंदुस्तान लीवर के 'प्रोजेक्ट शक्ति' ने तो उपभोक्ता वस्तुओं के विपणन का जरिया गांव की औरतों को ही बनाया है। हिंदुस्तान लीवर मध्य प्रदेश में एक ही जिले के 31 गांवों की 48 महिलाओं को प्रशिक्षित करके उन्हें 12 से 18 प्रतिशत कमीशन देकर 1,500 रुपये तक महीना कमाने में मददगार बनी है। प्रोजेक्ट शक्ति पहली बार आंध्र प्रदेश के नलगोंडा जिले में प्रारंभ हुआ था।

जाहिर है बाजार की संभावना तलाशने वाली ये देशी–विदेशी कंपनियां अपने साथ जनसंचार के तमाम माध्यमों को भी गांवों तक ले ही जाएंगी।

दरअसल भूमंडलीकरण जनित 'बाजारवाद' की मंशा ही यही है कि वे हमें अपने उत्पाद की खपत का उपकरण बना दें। वरना जिन उत्पादों की आवश्यकता हमें नहीं है, उन्हें ही वे परोसती हैं। बुनियादी जरूरतों की ही पूरी पूर्ति जहां संभव नहीं हो पा रही हो वहां फुसलाता लालच सीमित ग्रामीण क्रयशक्ति को भी तहस–नहस करने पर अमादा है। यह बाजारवाद सिर्फ आर्थिक स्वायत्तता को ही खंडित नहीं करेगा अपितु भाषा से लेकर मूल्यबोध तक के संस्कार को बदल देगा। प्राकृतिक संसाधनों से उपजा ग्रामीण स्वावलंबन परगाछा संसाधनों का गुलाम बनता जाएगा। उबटन की जगह क्रीम, दातौन की जगह टूथपेस्ट ठीक वैसे ही जैसे दूध की जगह आज गांवों में चाय पहुंच गई है।

यूं रेखांकित करने वाली एक सच्चाई यह भी है कि हजारों सालों के अनुभवजन्य संस्कारों वाले इस देश की महिमा भी अपूर्व है। हमारा समाज एक ही साथ विपरीत ध्रुवीय व्यवहारों को साधने में माहिर है। शायद इसीलिए भारतीय समाज की अजब–गजब और गुंजलक–सी उलझी आधुनिकता को समझना आसान नहीं है। जिस समाज में कंप्यूटर सरीखी अत्याधुनिक चीज दहेज में ली–दी जा सकती हो, गर्मी में सूट–टाई लगाकर शादी होती हो, भयंकर गर्मी में 'टाईधारी' मौसम की सूचना टेलीविजन पर परोसता हो, वाशिंग मशीन का इस्तेमाल दूध मथने के लिए भी होता हो, कंडोम का गुब्बारा बनाते हों, कंप्यूटर से जन्मकुंडलियां बनती हों, मंदिरों में क्रिकेट खेलते हुए देवताओं की झांकी सजाई जाती हो, सेक्सी फिल्मी गीतों की भजन पैरोडी गाई जाती हो – उस समाज को किसी पूर्व निर्धारित मान्यताओं से आखिर कैसे समझा जा सकता है! यहां कुछ भी संभव है। विचार से लेकर आचार तक के मामले में हमारी 'बौद्धिक पाचन शक्ति' असीमित है। ऐसे में नए संचार साधन अभावों के इस देश में फिलहाल विलासिता की चीज भले ही लगते हों किंतु आगत भविष्य में जगह बना ही लेंगे। गांव भी अछूते नहीं रहेंगे।

गौरतलब है कि ऐसी सभी विडंबनाओं के बावजूद जनसंचार माध्यमों के विस्तार से बनता 'सूचना समाज' अंततः शक्ति का ही पर्याय है। और समकालीन जीवन की अनिवार्यता है। हमारे ज्ञान की आधार सामग्री है; विवेकशीलता को दिशा देने वाला कारक भी है बशर्ते सूचनाओं से बनने वाले संसार को हम समझ लें, परख लें।

ऐसी स्थिति में सतत हावी होती जा रही 'सूचना प्रौद्योगिकी' से बेखबर रहना आत्मघाती ही होगा। क्योंकि नई सूचना व्यवस्था का गहरा संबंध नई आर्थिक व्यवस्था से है। इस बात को याद रखना होगा कि कंपनी बहादुर के अंग्रेज कारिंदों ने अपनी बहादुरी से भारत पर कब्जा नहीं जमाया था अपितु ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत के विपुल संसाधनों की तिजारत से ही भारत को जीता था। ऐसी स्थिति में जब केंद्र और राज्य की सरकारें विदेशी पूंजी के लिए पलक–पांवड़े बिछाए खड़ी हैं, नई प्रौद्योगिकी से बचना संभव नहीं है क्योंकि प्रौद्योगिकी के संक्रमण और बाजार की ताकत से नई चीजों का विकास होता है और उससे लोगों का आकर्षण स्वाभाविक ही है। इसलिए विकसित देशों से आई सूचना प्रौद्योगिकी विकासशील भारत के गांवों–शहरों की बुनियादी जरूरतों की पूर्ति में कैसी भूमिका निभाएगी, अंधकार में डूबे गांव मोबाइल, सौर ऊर्जा वाले टेलीफोन–टेलीविजन और कंप्यूटर के सपने के साथ आज भी अपनी बहुत हद तक मौसम

पर निर्भर खेती को कैसे संभाल पाएंगे कि सुरक्षित छत के नीचे दो जून की रोटी है क्योंकि आज भी ज्यादातर लोगों का अपने जीवन को प्रभावित करने वाली घटनाओं पर कोई नियंत्रण नहीं है। ऐसे में जनसंचार के विभिन्न माध्यमों की पहुंच ग्रामीण समाज में फिलहाल तो पूरे तौर पर नहीं हो पाई है। जहां–जहां पहुंची है, वहां निर्विवाद तौर पर लाभकारी ही रही है। जाहिर है एक किसान को मानसून कब आएगा, से लेकर बाढ़ के खतरे की संभावित सूचना समय रहते प्राप्त होना नितांत उपयोगी ही होगा। बीज से लगायत लाभकारी फसलों तक के बारे में सूचनाएं विभिन्न जनसंचार स्रोतों से प्राप्त हो सकती हैं बशर्ते वे सारी सुविधाएं गांवों तक पहुंचें।

वास्तविकता यह है कि हाल ही में भारतीय जनगणना विभाग ने पहली बार 20 लाख लोगों की मदद से सर्वेक्षण करवाकर देश के हर परिवार को प्राप्त सुविधाओं और संपत्ति का जो जायजा लिया है, वह न केवल चौंकाता है अपितु अब तक के दावों की पोल भी खोलता है। यह कि देश में स्कूलों–कालेजों, अस्पतालों की कुल संख्या से कहीं ज्यादा पूजास्थलों (24 लाख) की तादाद है। जहां तक जनसंचार के विविध माध्यमों के उपयोग का सवाल है, यह जानकर अनुमान लगाना कठिन नहीं होगा कि देश में लगभग 50 फीसदी गांव के घरों में मिट्टी के तेल से ही उजाला होता है। सर्वेक्षण से पता चला है कि 52.5 फीसदी भारतीय परिवार अब भी ईंधन के लिए लकड़ी पर ही निर्भर हैं। गांवों में सतत सरकारी प्रयासों के बावजूद बायोगैस का मामूली इस्तेमाल ही होता है। गांवों के 10 प्रतिशत घरों में फसल के अवशेषों का इस्तेमाल बतौर ईंधन होता है। दरअसल गांव में भी कुछ ही लोग ऐसे होते हैं जिनके पास आवश्यकता से अधिक संसाधनों की वजह से खूब साधन– सुविधाएं हैं। दूसरी तरफ बहुत बड़ा तबका ऐसा भी है जिन्हें दो जून की रोटी तक मयस्सर नहीं है। ऐसा देखते हुए लगने लगता है कि यह गैर–बराबरी शायद ही कभी दूर होगी। चंद ही लोग ज्यादा बुद्धिमान होते हैं, अपनी अक्ल और मेहनत से आगे बढ़ जाते हैं। **शेष जो पीछे रह जाते हैं वह सिर्फ जाहिल और काहिल ही नहीं होते हैं वरन् सामाजिक–आर्थिक कुचक्र के सहजता से शिकार हो जाते हैं, क्योंकि वे चतुर नहीं होते हैं। चतुराई उनके प्रारब्ध में ही नहीं होती है।**

रेडियो ग्रामीण इलाकों में न केवल लोकप्रिय है अपितु नितांत उपयोगी भी है। दूसरी तरफ मौसमी बेरोजगारी के दिनों में रोजगार के लिए शहर आने वालों की खासी तादाद सिनेमा के संपर्क में आती है जो एक सशक्त माध्यम है। अच्छे और बुरे दोनों ही अर्थों में वे सिनेमा का लाभ उठाते हैं। शहर और कस्बों के अलावा घूमंतु सिनेमा का चलन भी कम व्यापक नहीं है। आज भी पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश के कई हिस्सों में विशेष अवसर पर घूमंतु सिनेमा की मांग बरकरार है, जहां बिजली नहीं है। इन्हें जेनरेटर से चलाया जाता है।

सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियों की किसी भी टेक्नोलॉजी के फैलाव में बड़ी भूमिका होती है। अन्यथा सब कुछ व्यर्थ ही है। गांव की आबादी का बहुसंख्यक तो आज भी बुनियादी सुविधाओं के लिए तरस रहा है। जब बिजली ही नहीं है तो टेक्नोलॉजी का उपयोग क्योंकर संभव हो। रेडियो के बाद टेलीविजन जनसंचार का वह माध्यम है जो ग्रामीण अंचल में खूब लोकप्रिय हो रहा है। क्योंकि उसमें सुनने के साथ–साथ देखने का आनंद भी प्राप्त होता है। शायद इसीलिए एकमात्र टेलीविजन ही है जो हर पांच ग्रामीण भारतीय परिवार में से एक के पास है। फोन तो सिर्फ 4 प्रतिशत ग्रामीण परिवारों के पास हैं। मोबाइल की पहुंच न के बराबर है। टेलीविजन की व्यापक प्रसार संभावना को नजर में रखते हुए और बिजली की अनुपलब्धता के कारण टीवी सरीखे उत्पादों की मांग में कमी का रोना रोने वाली कंपनियां बिजली की आपूर्ति की सीमा पहचानते हुए अब तक किसी वैकल्पिक ऊर्जा स्रोत से चलने वाले टीवी क्यों नहीं ईजाद कर पाई। क्योंकि यह तो एक सच्चाई ही है कि समूची ग्रामीण आबादी को जनसंचार की समस्त सुविधाएं मुहैया करवाना न तो संभव ही है न व्यावहारिक तौर पर उपयोगी जिला व पंचायत मुख्यालयों तक सुविधाएं उपलब्ध करवाकर शेष गांवों तक चलित वाहनों के जरिए संचार की बढ़ी हुई सुविधाओं को पहुंचाया जा सकता है। ये चलित वाहन जिला मुख्यालयों से गांवों तक आसानी से पहुंच सकते हैं।

भूमंडलीकरण की बयार से उपजी बाजार–वाद की आंधी के कारण देश की राष्ट्रीय व बहुराष्ट्रीय कंपनियां जिस रफ्तार के साथ उपभोक्ता वस्तुओं के बाजार में उतरी हैं, उसमें उन्हें गांवों की ओर मुंह करने को तो विवश होना ही पड़ा है। प्रकाश की गति से तेज विचारों के आदान–प्रदान की सुविधा वाले सूचना समाज के दौर में मनुष्य और बाजार का रिश्ता कहां पहुंचेगा, विदेशी दखल के बढ़ते दौर में लोकतांत्रिक राजनीति का कौन–सा चेहरा बचा रह पाएगा, सरीखे तमाम पहलुओं से कतराकर रह पाना संभव नहीं है। यह सही है कि प्रौद्योगिकीय दृष्टि से नई उपग्रह संचार प्रणाली की मुक्त आकाश तकनीक ने समस्त संचार को एक विश्वगांव में बदल दिया है। सूचना प्रौद्योगिकी नई सदी की क्रांति है, इसे माइक्रो इलेक्ट्रानिक तथा कंप्यूटर तकनीक ने टेलीकम्युनिकेशन के साथ मिलकर जन्म दिया है। सीडी रोम, इंटरनेट, रेडियो, टेलीविजन, प्रेस, फैक्स, टेलीफोन, वेबसाइट ने मिलकर सूचनाओं के मुक्त प्रवाह के जरिए तथाकथित विश्व गांव की परिकल्पना का सृजन किया है। भूमंडलीय गांव की कल्पना औद्योगिक क्रांति के बाद की सबसे बड़ी क्रांति है।

और अंत में यही कि जनसंचार के माध्यमों का सही इस्तेमाल गांवों के विकास की धुरी बन सकता है बशर्ते टेलीविजन और इंटरनेट से प्राप्त जानकारियों के चयन की समझ विकसित हो। मुक्त मंडी, उन्मुक्त व्यक्ति और बेलगाम उपभोग की लालसा से बचना होगा। चाहत की मर्यादा बांधनी होगी। अंध अनुक्रमण की धारा के विपरीत समाज हितकारी सूचनाओं का चयन करना होगा तभी खुशहाल गांव का सपना साकार होगा। अन्यथा मुक्तमंडी, मुक्तव्यक्ति और उन्मुक्त उपभोग की 'डिजीटल आंधी' में हम कबतक अपनी अस्मिता की रक्षा कर पाएंगे! ❑

दीवान हाउस, चाणक्य मार्ग
सुभाष चौक, जयपुर–302002

एक कंप्यूटर साक्षर भारतीय गांव

हाल ही में केरल के मल्लापुरम जिले के चमरावट्टम गांव को देश का पहला 100 प्रतिशत कंप्यूटर साक्षर गांव होने का गौरव हासिल हुआ। यहां सौ प्रतिशत साक्षर से तात्पर्य हर घर में कम से कम एक व्यक्ति को कंप्यूटर की बेसिक जानकारी होने से है। त्रिपरंगोडे पंचायत के अंतर्गत आने वाले इस छोटे से गांव में कुल 850 घर हैं और इन घरों में से प्रत्येक घर में एक व्यक्ति ने बेसिक कंप्यूटर साक्षरता कार्यक्रम पूरा किया है। इन कंप्यूटर साक्षर ग्रामवासियों ने 15 घंटे के प्रशिक्षण माड्यूल के आखिर में एक ऑन लाइन परीक्षा भी उत्तीण की है। प्रशिक्षण प्राप्त करने के पश्चात् अब ये ग्रामवासी एक पर्सनल कंप्यूटर का संचालन करने में सक्षम हैं – वे इंटरनेट सर्फ कर सकते हैं, ई–मेल भेज सकते हैं तथा प्राप्त कर सकते हैं, इंटरनेट टेलीफोनी वॉयस काल कर सकते हैं, पिक्चरों को सृजित और संपादित कर सकते हैं, और विशेष रूप से डिजाइन किए हुए मलयालम भाषा के टूल के प्रयोग के द्वारा टेक्स्ट कंपोज कर सकते हैं।

चमरावट्टम गांव ने जो पहल की है, उसके कदमसार होने के लिए इस सुदूर दक्षिणवर्ती राज्य के इस पहाड़ी जिले के कम से कम चार और गांव कंप्यूटर साक्षरों की सूची में जुड़ने की तैयारी में जुटे हैं। ये गांव हैं: मरकारा, चेलेम्ब्रा, कूटिलांग्डी और माम्पड। इन गांवों के कम्प्यूटर साक्षर होने का प्रमाणपत्र मिलने के साथ ही त्रिपरंगोडे पंचायत को भी पूर्ण रूप से कंप्यूटर साक्षर पंचायत होने का सम्मान मिल जाएगा।

इस अभिनव साक्षरता अभियान की इस पहली सफलता का श्रेय 'अक्षर' नामक उस कार्यक्रम को जाता है जिसके तहत् इन ग्रामवासियों को कंप्यूटर सिखाया गया।

आज से करीब एक वर्ष पहले मालाप्पुरम जिला पंचायत राज्य सरकार के पास लोक योजना पहल के अंतर्गत सात हजार कंप्यूटरों को लीज पर लेने के लिए फंड जारी करवाने गई थी। इसका लक्ष्य पंचायत में स्थित हर जिले की कंप्यूटर टेक्नोलॉजी तक पहुंच निश्चित करवाना था। इसके लिए आवश्यक नगद का प्रबंध करना एक समस्या थी, इसलिए यह प्रस्ताव विभागों के पास लौटकर आ गया। लेकिन बाद में इसे राज्य सूचना प्रौद्योगिकी मिशन के समग्र पर्यवेक्षण के तहत आधिकारिक मंजूरी मिल गई। 'अक्षय' ने अन्य राज्यों में जारी अन्य साक्षरता योजनाओं का अनुसरण करते हुए बेसिक दिशानिर्देशों का पालन किया और अक्षय केंद्र स्थापित किए। ये अक्षय केंद्र हर एक हजार परिवारों और उनके घरों से एक से दो किलामीटर तक की दूरी के निमित्त थे। हर केंद्र को पांच पसर्नल कंप्यूटर दिए गए और हर प्रशिक्षु से 90 मिनट के प्रशिक्षण के लिए दो रुपये शुल्क लिया गया यानी प्रत्येक व्यक्ति को कंप्यूटर कौशल सीखने के लिए कुल 20 रुपये की आवश्यकता पड़ी। और इस प्रकार, हर प्रशिक्षित नागरिक के लिए पंचायत ने अक्षय केंद्र को 120 रुपये जारी किए। बैंकों ने केंद्रों की स्थापना के लिए ऋण मुहैया कराए जिसकी वसूली पंचायत सब्सिडी से होनी थी।

इस कार्यक्रम को बेपनाह सफलता मिली। हर केंद्र ने प्रत्येक दिन कई दौर के प्रशिक्षण आयोजित किए। इसके पीछे भावना यह थी कि लाभार्थी उस समय का चयन कर सकें जो उनके लिए सर्वाधिक उपयुक्त हो। महिलाओं ने दोपहर के सत्र का चुनाव किया जबकि कामकाजी पुरुषों ने देर शाम की क्लासों का। कुछ केंद्रों में रिक्शावालों के लिए विशेष रात्रि पारी का भी आयोजन किया गया। समय की कमी के चलते कड़ी प्रतिस्पर्धा के कारण इन केंद्रों ने पूरे सप्ताह तड़के सुबह से आधी रात तक काम करना जारी रखा। उपयोग में लाया गया प्रशिक्षण मोड्यूल विशेष रूप से विकसित सीडी आधारित कंप्यूटर था, जिसमें मलयालम में कमेंट्री की जाती थी और माउस, की–बोर्ड जैसे विभिन्न टूल्स को समझाने के लिए एनीमेटेड खेलों का प्रयोग किया जाता था। ताज्जुब की बात यह है कि कंप्यूटर क्लास करते समय महिलाएं अपने साथ अपने नवजात शिशुओं को भी रखती थीं।

एक और दिलचस्प बात यह थी कि राज्य आईटी मिशन ने हार्डवेयर निर्माताओं और संभावित अक्षय केंद्र आपरेटरों को एक साथ लाने के लिए एक विशेष कंप्यूटर शो का आयोजन किया था जिसमें 80 प्रतिशत आर्डर लघु उद्योग क्षेत्र के केरल स्थित एसेम्बलरों से प्राप्त हुए। इस प्रकार, अक्षय योजना ने अप्रत्यक्ष रूप से स्थानीय पर्सनल कंप्यूटर उद्योग को भी बढ़ावा दिया। इस प्रयास की एक और उल्लेखनीय बात यह भी रही कि इस महत्वाकांक्षी परियोजना के पीछे जो मुख्य टीम थी, उसमें मात्र 20 युवा उद्यमी शामिल थे। इस टीम को आवश्यक साफ्टवेयर के निर्माण में सूचना प्रौद्योगिकी विकास केंद्र (सीडीआईटी) और केल्ट्रान जैसी एजेंसियों से सहायता प्राप्त हुई।

केरल में कंप्यूटर साक्षरता के फैलाव के वर्तमान में एक साथ दो प्रयोग किए जा रहे हैं। एक तरफ तो अक्षय योजना के दूसरे चरण को विकसित किया जा रहा है जहां ग्रामीण आबादी के उन लोगों की आवश्यकता के अनुरूप नए पाठ्यक्रम बनाए जा रहे हैं जिन्होंने बेसिक कंप्यूटर साक्षरता हासिल कर ली है। दूसरी तरफ, केरल के सभी जिलों मे ऐसी ही परियोजना शुरू करने के प्रयास किए जा रहे हैं। इस परियोजना को एक जनवरी, 2004 से प्रारंभ किए जाने का प्रस्ताव है और यह मालापुरम प्रयोग से 10 गुना बड़ी होगी। राज्य के 65 लाख घरों को कवर करने की महत्ती योजना के वित्तपोषण के लिए वास्तविक राशि विकेंद्रित पंचायत अनुदान से दी जा रही है। यह परियोजना अब तक के सर्वाधिक सफल और किफायती शिक्षण प्रयोगों में से एक साबित हो सकती है। ❑

आर. एन. / 708 / 57
डाक–तार पंजीकरण संख्या : डी.एल. 12057 / 2003–05
आई.एस.एस.एन. 0971–8451, पूर्व भुगतान के बिना आर.एम.एस. दिल्ली में डाक में डालने के लिए लाइसेंस : यू (डी.एन.) –55 / 2003–5

R.N./708/57
P&T Regd. No. DL 12057/2003-05
ISSN 0971-8451, Licenced under U (DN)-55/2003-05 to Post without pre -payment at R.M.S. Delhi.

आप सबके लिए अनूठा उपहार

महात्मा गांधी सी.डी.

इस मल्टीमीडिया सी.डी. में गांधी जी पर 30 मिनट की फिल्म फुटेज, 550 से अधिक चित्र, करीब 15 मिनट की गांधी जी की आवाज और इलेक्ट्रानिक बुक में साठ हजार से अधिक पृष्ठों में विस्तृत सांकेतिका के साथ सम्पूर्ण गांधी वाड्.मय संकलित है।

मूल्य : 2000 रुपये

गांधी जयंती के अवसर पर विशेष छूट

विद्यार्थी	:	10 %
संस्थाएं	:	20 %
थोक विक्रेता	:	33 %

गांधी साहित्य

ऐसे थे बापू, गांधी शतदल, बापू की ऐतिहासिक यात्रा, महात्मा गांधी (चित्रमय जीवनगाथा), *शांतिदूत गांधी, संपूर्ण गांधी वाड्.मय* (97 खंडों में), *नमक आंदोलन, महात्मा गांधी सी.डी.*

विक्रय और अन्य जानकारी के लिए संपर्क करें

पटियाला हाउस, तिलक मार्ग, नई दिल्ली-110001 (फोन : 2338 7069); सूचना भवन, सीजीओ काम्प्लेक्स, नई दिल्ली-110003 (फोन : 2436 7260); हाल नं. 196, पुराना सचिवालय, दिल्ली-110054 (फोन : 2389 0205); कामर्स हाउस, करीम भाई रोड, बालार्ड पायर, मुंबई-400038 (फोन : 2261 0081); 8, एस्प्लेनेड ईस्ट, कोलकाता-700069 (फोन : 2248 8030); राजाजी भवन, बेसेंट नगर, चेन्नई-600090 (फोन : 2491 7673); बिहार राज्य सहकारी बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना-800004 (फोन : 2230 0096); प्रेस रोड, तिरुअनंतपुरम-695001 (फोन : 2330 650); 27/6, राममोहन राय मार्ग, लखनऊ-226001 (फोन : 2208 004); प्रथम तल, 'एफ' विंग, कैंद्रीय सदन, कोरामंगला, बंगलौर-560034 ((फोन : 2553 7244); अंबिका काम्प्लेक्स, प्रथम तल, पालदी, अहमदाबाद-380007 (फोन : 2658 8669); नौजान रोड, उजान बाजार, गुवाहाटी-781001 (फोन : 2516 792); ब्लाक नं. 4, गृहकल्प काम्प्लेक्स, एम. जे. रोड, नामपल्ली, हैदराबाद-500001 (फोन : 2460 5383); पीआईबी, 80, मालवीय नगर, भोपाल-462003 (फोन : 2556 350); पीआईबी, सीजीओ काम्प्लेक्स, 'ए' विंग, ए.बी. रोड, इंदौर (म.प्र.)(फोन : 2494 193); पीआईबी, बी-7/बी, भवानी सिंह मार्ग, जयपुर-302001 (फोन : 2384 483)

वेबसाइट : www.publicationsdivision.nic.in
ई-मेल : dpd@sb.nic.in एवं dpd@hub.nic.in

श्री उमाकांत मिश्र, निदेशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली–110001 द्वारा प्रकाशित और मुद्रित।
मुद्रक : अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स प्रा. लि., डब्ल्यू–30 ओखला इंडस्ट्रीयल एरिया–II, नई दिल्ली–20 : सहायक संपादक : ललिता खुराना